एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

S1

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

पाठ्य पुस्तक विकास समूह
पत्र–S-1
(समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
	श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, बिहार, पटना
	डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
समन्वयक	डॉ० स्नेहाशीष दास, विभाग प्रभारी, विद्यालय शिक्षा विभाग, एस,सी,ई,आर, टी, पटना
लेखक समूह	श्री इंद्रजीत कुमार सिंह , प्रभारी प्राचार्य, पी०टी०ई०सी० शाहपुर, पटोरी, समस्तीपुर
	डॉ० संजीव कुमार, व्याख्याता, डायट सोनपुर, सारण
	श्री अभय कुमार सिंह, प्रभारी प्राचार्य, डायट सोनपुर, सारण
	श्री कुमार रमण जी, व्याख्याता, डायट फारबिसगंज, अररिआ (प्रतिनियुक्त , पी०टी०ई०सी०,मनहरा सुखासन, मधेपुरा)
	डॉ० चन्दन श्रीवास्तव, सहायक प्राध्यापक, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया
समीक्षक	डॉ० शाजिया फातमा, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय, समस्तीपुर
	डॉ० सत्येन्द्र बहादुर सिंह, प्रभारी प्राचार्य, पी०टी०ई०सी०, मैरवा, सिवान
भाषा समीक्षक	डॉ० प्रेम कुमार , व्याख्याता, पी०टी०ई०सी० , बंगरा, सारण

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	समकालीन भारतीय समाज की चुनौतियाँ और शिक्षा	4-29
2	शिक्षा के समकालीन मुद्दे	30-47
3	शिक्षा के राजनैतिक एवं संवैधानिक संदर्भ	48-74
4	शिक्षा और सामाजिक अपेक्षाएँ	75-99
5	विद्यालय और शिक्षा नीतियाँः शिक्षा की समकालीन समझ के संदर्भ में	101-121
6	संदर्भ सूची	122

इकाई–1

समकालीन भारतीय समाज की चुनौतियाँ और शिक्षा

मानव प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है, जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। शिक्षा के द्वारा मानव की इन जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन से किया जाता है और उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।

यह कार्य मानव के जन्म से ही उसके परिवार एवं समाज के द्वारा अनौपचारिक रूप से तत्पश्चात विद्यालय भेजकर औपचारिक रूप से प्रारंभ कर दिया जाता है। विद्यालय के साथ–साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ न कुछ सिखाया जाता है और सीखने–सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी जीवन पर्यन्त चलता रहता है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने–सीखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है।

एक संसाधन, अवसर तथा मूल्य के रूप में शिक्षा अपरिहार्य है। अतः सब को शिक्षित करने की परिकल्पना वर्त्तमान समय में अत्यावश्यक है। यद्यपि लगभग सभी जाति, क्षेत्र, वर्ग, लिंग तथा धर्म के बच्चे विद्यालय शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तथापि गुणवत्तापूर्ण विद्यालय शिक्षा तक उनकी समता मूलक पहुँच तथा उनमें उनकी भागीदारी समस्याग्रस्त है। एक तरफ समाज में व्याप्त असमानता तथा वंचना ने शिक्षा के समान अवसरों को प्रभावित किया है वहीं दूसरी ओर विद्यालय की अंतः क्रियात्मक प्रक्रिया में भी असमानता, वंचना तथा वर्चस्व जैसी विभेदीकृत गतिविधियां अंतर्निहित है। इस इकाई में विविधता, असमानता तथा वंचना की अवधारणा तथा उसकों संचालित करने वाली विचारधारा तथा सत्ता वर्चस्व एवं प्रतिरोध की समीक्षायी समझ के माध्यम से समाजशास्त्रीय चेतना तथा दृष्टिकोण का निर्माण करेंगे। विद्यालय में तथा उसके सापेक्ष व्याप्त विषमता से निपटने के लिए समानता, समता, समावेशीकरण तथा सामाजिक न्याय पर आधारित नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्रयासों की समीक्षा करेंगे।

उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- विविधता एवं असमानता के अंतर को स्पष्ट कर पाएंगे।
- समाज में सत्ता, वर्चस्व व प्रतिरोध की भूमिका को असमानता एवं वंचना के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट कर सकेंगे।
- समता व समानता की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सामाजिक न्याय की प्रतिस्थापना में शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- वंचना की अवधारणा, कारकों एवं प्रकारों को समझ पाएंगे।
- असमानता के प्रमुख आधारों को रेखांकित कर सकेंगे।

1.विविधता, असमानता तथा वंचना

आम बोल–चाल की भाषा में जब भिन्न–भिन्न प्रकार की चीजें, जीव और प्राणी एक साथ रहते हैं तो इसे विविधता कहते हैं। अर्थात विभिन्न प्रकार के प्राणियों का सह अस्तित्व ही विविधता है। आपने अपने आसपास एक सुंदर बगीचा या उद्यान देखा होगा। बगीचा इसलिए खूबसूरत नहीं होता है कि उसमें एक ही तरह के फूलों के पेड़ लगे होते हैं, बल्कि वह खूबसूरत इसलिए होता है कि उसमें विभिन्न प्रकार के सजावटी पौधे एवं फूलों के पौधे लगे होते हैं। विभिन्न रूप, रंग और आकार के यह पौधे बगीचे के सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं। यह सुंदरता यदि कश्मीर के शालीमार बाग में देखने को मिलती है तो दूसरी ओर दिल्ली में राष्ट्रपति भवन के उद्यान में भी यह नजर आता है। अगर विविधता न हो तो जीवन नीरस हो जाएगा।

करीब दो सौ वर्ष या उससे पहले जब रेल, हवाई जहाज, बस और कार हमारे जीवन का हिस्सा नहीं था तब भी लोग संसार के एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा करते थे। वे पानी के जहाज में, घोड़ा या ऊंट पर बैठकर जाते या फिर पैदल चलकर। अक्सर ये यात्राएं खेती और बसने के लिए नई जमीन की तलाश में या फिर व्यापार के लिए की जाती थी क्योंकि यात्रा में बहुत समय लगता था। इसलिए लोग नई जगह पर अक्सर काफी लंबे समय तक ठहर जाते थे। इसके अलावा सूखे और अकाल के कारण भी कई बार लोग अपना घर छोड़ देते थे। उन्हें जब पेट भर खाना तक नहीं मिलता था तो वह नई जगह जाकर बस जाते थे। कुछ लोग काम की तलाश में और कुछ युद्ध के कारण घर छोड़ देते थे।

लोग जब नई जगह में बसना शुरू करते थे तो उनके रहन–सहन में थोड़ा बदलाव आ जाता था। कुछ चीजें वे नई जगह की अपना लेते थे और कुछ चीजों में वे पुराने ढ़र्रे पर ही चलते रहते थे। इस तरह उनकी भाषा, भोजन, संगीत, धर्म आदि में नए और पुराने का मिश्रण होता रहता था। उनकी संस्कृति और नई जगह की संस्कृति में आदान–प्रदान होता और धीरे–धीरे एक मिश्रित यानि मिली–जुली संस्कृति उभरती ।

अगर अलग–अलग क्षेत्रों का इतिहास देखें तो हमें पता चलेगा कि किस तरह विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों ने वहां के जीवन और संस्कृति को आकार देने में योगदान किया है। इस तरह से कई क्षेत्र अपने विशिष्ट इतिहास के कारण विविधता संपन्न हो जाते हैं। लोग अलग–अलग तरह की भौगोलिक स्थितियों में किस प्रकार सामंजस्य बिठाते हैं उससे भी विविधता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए समुद्र के पास रहने में और पहाड़ी इलाकों में रहने में बड़ा फर्क है। न केवल वहां के लोगों के कपड़ों और खानपान की आदतों में फर्क होगा, बल्कि जिस तरह का काम वे करेंगे, वे भी अलग होंगे। शहरों में अक्सर लोग यह भूल जाते हैं कि उनका जीवन उनके भौतिक वातावरण से किस तरह गहराई से जुड़ा हुआ है। ऐसा इसलिए कि शहरों में लोग विरले ही अपनी सब्जी या अनाज उगाते हैं। वे इन चीजों के लिए बाजार पर ही निर्भर रहते हैं।

आइए भारत के दो भागों लद्दाख और केरल के उदाहरण के जरिए यह समझने की कोशिश करें कि किसी क्षेत्र की विविधता पर उसके ऐतिहासिक और भौगोलिक कारकों पर क्या असर पड़ता है।

लद्दाख भारत के उत्तर में पहाड़ियों में बसा एक रेगिस्तानी इलाका है। यहां पर बहुत ही कम खेती संभव है, क्योंकि इस क्षेत्र में बारिश बिल्कुल नहीं होती और यह इलाका हर वर्ष काफी लंबे समय तक बर्फ से ढ़ँका रहता है। इस क्षेत्र में बहुत ही कम पेड़ उग पाते हैं। पीने के पानी के लिए लोग

गर्मी के महीनों में पिघलने वाली बर्फ पर निर्भर रहते हैं। यहां के लोग एक खास किस्म की भेड़ पालते हैं जिससे पश्मीना ऊन मिलता है। लद्दाख के लोग बड़ी सावधानी से इस ऊन को इकट्ठा करके कश्मीर के व्यापारियों को बेच देते हैं। मुख्यतः कश्मीर में ही पशमीना शालें बुनी जाती है। यहां लोग दूध से बने पदार्थ जैसे मक्खन चीज (खास तरह का छेना) एवं मांस खाते हैं हर एक परिवार के पास कुछ गाय, बकरी और याक होती है।

केरल भारत के दक्षिणी पश्चिमी कोने में बसा हुआ राज्य है। यह एक तरफ समुद्र से घिरा हुआ है और दूसरी तरफ पहाड़ियों से। इन पहाड़ियों पर विविध प्रकार के मसाले जैसे काली मिर्च, लौंग, इलायची आदि उगाए जाते हैं। इन मसालों के कारण यह क्षेत्र व्यापारियों के लिए बहुत ही आकर्षक बना।

असमानता एवं वंचना

हम 21वीं सदी के भारतीय होने पर गर्व करते हैं जो एक बेटा पैदा होने पर खुशी का जश्न मनाते हैं और यदि एक बेटी का जन्म हो जाए तो शांत हो जाते हैं,यहाँ तक कि कोई भी जश्न नहीं मनाने का नियम बनाया गया है। यह लैंगिक असमानता का एक उदाहरण है।

वर्तमान जाति व्यवस्था भी असमानता का एक और उदाहरण है। इस व्यवस्था में समाज को अलग–अलग समूहों में बाँटा गया था। इस बंटवारे का आधार था कि लोग किस–किस तरह का काम करते हैं। लेकिन आज लोग जिस जाति में पैदा होते हैं उसे बदल नहीं सकते एवं अपने पुश्तैनी कार्यों को ही अपना लेते हैं।

वर्तमान में असमानता ही देश की सबसे बड़ी समस्या है। सामाजिक असमानता, आर्थिक असमानता, शैक्षिक असमानता, क्षेत्रीय असमानता और औद्योगिक असमानता ही देश को विकसित बनाने में सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है। सामाजिक असमानता के कारण ही आज समाज में आपसी प्रेम, भाईचारा, मानवता, इंसानियत और नैतिकता खत्म होता जा रहा है।

आर्थिक असमानता के कारण ही आज समाज में अमीरों और अरबपतियों की संख्या तो बढ़ रही है परंतु समाज के गरीब लोग या तो जिस हाल में थे आज भी वहीं पर खड़े हैं या नहीं तो और गरीब ही होते जा रहे हैं।

जब हम विविधता को विविध ना मानकर कर असमान मान बैठते हैं तो जाति, धर्म, वंश, संप्रदाय एवं लिंग आदि के पर समाज के एक बड़े वर्ग को उनके कई अधिकारों से वंचित कर देते हैं या उनके अंदर एक भाव पैदा कर देते हैं जिससे वह यह मान बैठता है कि यह कार्य या अधिकार उसका नहीं है इसी भाव को वंचना कहते हैं।

आइए अब हम विविधता, असमानता एवं वंचना के अवधारणा तथा शैक्षिक संदर्भ को दो **दृष्टांतों के द्वारा** समझते हैं–

दृष्टांत एकः–

फूलपुर गांव में हरिमोहन नाम का एक माली रहता था। उसके पास एक बड़ा बगीचा था जिसमें तरह तरह के फूल लगे हुए थे। विभिन्न प्रकार के फूलों से लदा हुआ बगीचा किसी का भी मन मोह लेता था। बगीचे के बीच एक चबूतरा था। गांव वाले तथा राहगीर वहां आराम के लिए बैठा करते थे। बगीचे में बैठना उन्हें अत्यंत शांति प्रदान करता था। हरिमोहन को अपने बगीचे पर नाज था। एक बार एक राहगीर ने जो बगीचे में आराम के लिए बैठा था हरिमोहन से कहा वाह कितने सुंदर फूल हैं यहां! कितने मनमोहक! बाकी सब फूल तो ठीक हैं लेकिन गुलाब के फूल की बात ही कुछ और है!

आपके बगीचे की शान है गुलाब! हरिमोहन ने कहा कि– हां आप सही कह रहे हैं पर मैं बाकी फूलों की देखभाल करने के चक्कर में गुलाब के पौधों पर कम ही ध्यान दे पाता हूं नही ंतो ये फूल और भी बड़े हुए होते, और भी ज्यादा फूल इनमें लगे होते। लेकिन अब मैं जरूर इन पर विशेष ध्यान रखूंगा। राहगीर तो आराम करके चला गया परंतु हरिमोहन का मन बेचैन हो गया। वह लागातार यही सोच रहा था कि आज तक उसने गुलाब के पौधों पर विशेष ध्यान क्यों नहीं दिया? उन गुलाब के पौधों पर जो उसके बगीचे की शान है। अन्य पौधों से उसे चीढ़ होने लगी। उसे यह लगा कि व्यर्थ में ही उसने बाकी बेकार लगने वाले फूलों के पौधों पर अपना समय जाया किया। अब वह जरूर गुलाब के पौधों पर ही विशेष ध्यान देगा।

उस दिन के बाद से हरिमोहन गुलाब के फूलों पर विशेष ध्यान देने लगा। उन पौधों की देखभाल में दिन–रात लगा रहता, उनके फूलों को निहारता और खुश हो जाता। पर इस लगाव ने उसे बाकी सारे पौधों की देखभाल से धीरे–धीरे दूर कर दिया। बाकी पौधे धीरे–धीरे सूखने लगे। उन्हें ना तो ठीक ढ़ंग से पानी मिल पाता और ना ही खाद। अब बगीचा पहले जैसा नहीं रहा। गुलाब के पौधों के अलावा पूरा बगीचा उजार लगने लगा। एक दिन एक दूसरा राहगीर जो हरिमोहन के पहचान का था अपनी थकान मिटाने के लिए बगीचे के चबूतरे पर बैठा। हरिमोहन भी जो गुलाब के पौधों को पानी दे रहा था आ कर उस राहगीर के पास बैठकर हालचाल पूछने लगा। तभी राहगीर ने हरिमोहन से पूछा कि तुम्हारा बगीचा इतना उजाड़ क्यों हो गया? इस बगीचे की सुंदरता तो दूर–दूर तक प्रसिद्ध थी पर आज इसे देखने पर बहुत दुख हो रहा है। केवल गुलाब के पौधों को छोड़कर बाकी सभी पौधे इतने मुरझाए वह सूखे क्यों है? वहाँ की जमीन भी सूखी हुई लगती है, ऐसा लगता है कि यहां महीनों से पानी तक नहीं दिया गया। तुम्हारे बगीचे के चंपा, चमेली, रातरानी कितने प्यारे लगते थे। हाय वे सब सूख गए! अरे क्या हुआ? कैसे हो गया यह सब? राहगीर की बातों को सुनकर माली गहरी सोच में पड़ गया। उसे अब बहुत पछतावा होने लगा। वह मन ही मन सोचने लगा कि उसने ऐसा कैसे कर दिया? हाय! उसका इतना सुंदर दिखने वाला बगीचा आज उजाड़ हो गया। गुलाब का फूल छोड़कर सभी सुंदर फूल के पौधे सूख गए। वह निर्दयी व मूर्ख है। उसे अब लगने लगा कि बगीचे का सही सौंदर्य सभी फूलों के पौधों से था ना कि सिर्फ गुलाब के पौधे से। उसने संकल्प किया कि वह फिर से अपने बगीचे में सभी फूलों के पौधों जिसे पहले वह संतान की तरह मानता था की सेवा कर उसके खोए हुए सौंदर्य को वापस लाएगा। उस दिन से हरिमोहन सभी पौधों की सेवा में लग गया।

दृष्टांत दोः–

बिहार के मधेपुरा जिले के तुनियाही गांव में एक उत्क्रमित मध्य विद्यालय है। विद्यालय में आसपास के करीब 200 विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। एक समय की बात है– विद्यालय के छठी कक्षा की जिम्मेदारी कक्षा शिक्षक गुड्डू सर के पास थी। गुड्डू सर गणित विषय पढ़ाते थे और अपने विषय के बहुत जानकार थे। वर्ष के प्रारंभ में कुछ नए विद्यार्थी छठी कक्षा में प्रवेश लिए। उन विद्यार्थियों में गांव के अति मलिन बस्ती का भी एक विद्यार्थी था जिसका नाम भोला था। गुड्डू सर वैसे तो तेजतर्रार शिक्षक थे पर वे थोड़ा कड़क थे। मलिन बस्ती के विद्यार्थी भोला का गणित में प्रदर्शन थोड़ा कमजोर था। जब भी गुड्डू सर कक्षा को कोई सवाल हल करने के लिए देते भोला से अक्सर गलती हो जाती। उस गलती पर गड्डू सर भोला को बहुत भला बुरा कहते। कई बार उसके बस्ती की शिकायत भी करते । वह भोला को यह एहसास दिलाते कि वह उस बस्ती का होने के कारण गणित ही क्या कोई भी विषय पढ़ने लायक नहीं है। भोला को बहुत बुरा लगता वह अकेले में रोता पर किसी से नहीं कहता। उसका समूचा अस्तित्व उसे धिक्कारता। उसकी आँखों के आगे बस्ती की तस्वीर दौड़ने लगती। वह खुद को कोसता। धीरे–धीरे वह अत्यंत हीन भाव से ग्रस्त रहने लगा। अब वह दोस्तों के बीच नहीं बैठता, कक्षा में किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं देता, हमेशा शांत व उदास रहता, जैसे वह हंसना ही भूल गया हो।

भोला भले ही गणित में कमजोर था परंतु हिंदी विषय में काफी रूचि रखता था। हिंदी के शिक्षक खुर्शीद आलम उसे बहुत मानते थे क्योंकि भोला इतनी कम उम्र में बहुत अच्छी कविताएं लिखता था। लेकिन कुछ दिनों से भोला के इस बदले रूप को देखकर उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। वह भोला जो उन की कक्षा में हमेशा बढ़–चढ़कर हिस्सा लेता था सभी प्रश्नों का उत्तर देता था ऐसा क्या हुआ कि एकदम बोलना ही बंद कर दिया। खुर्शीद सर बालमन की समझ रखते थे, अतः उन्होंने कक्षा में भोला से यह बात पूछना उचित नहीं समझा। उन्होंने यह तय किया कि मध्याह्न अवकाश में वे भोला से बात कर जरूर इस स्थिति के कारणों का पता लगाएगें मध्याह्न अवकाश की घंटी बजी खुर्शीद सर ने भोला को अपने पास बुलाया और उसकी उदासी के कारण पूछने लगे। पहले तो भोला टालता रहा पर जब सर ने उसे पूरा विश्वास दिलाया कि वे उसकी चर्चा कहीं नहीं करेंगे तब वह वास्तविक स्थिति बताते हुए रोने लगा। खुर्शीद सर ने उसे बहुत समझाया कि वह अपने विद्यालय ही नहीं बल्कि संकुल के सभी विद्यालयों के विद्यार्थियों में भी बहुत खास है। वह इस उम्र में जैसी कविताएं लिखता है वैसी बड़े–बड़े लोग नहीं लिख पाते। और वह ऐसी कविताएं इसलिए लिख पाता है क्योंकि वह अपनी बस्ती के सभी कष्टों को बहुत नजदीक से देखा है। उसकी बस्ती ने उसे हीन नहीं वरन श्रेष्ठ कवि बनाया है। इस प्रकार खुर्शीद सर ने भोला को बहुत देर तक समझाया व उसके गणित वाले सर को समझाने की भी बात कही। सर की बातों को सुनने के बाद भोला का मन हल्का हुआ। जो बस्ती उसे हीनता का बोध करा रही थी वही बस्ती अब उसके सोचने और लिखने के लिए एक विषय के रूप मे दिखने लगी। वह सपने में डूब गया। वह सोचने लगा कि वो जब एक बड़ा लेखक बनेगा तब समाज व सरकार का ध्यान उस बस्ती की ओर जरूर ले जाएगा। अपने कमाए हुए पैसों से वह बस्ती के सारे कष्टों को दूर करेगा। भोला इन्हीं विचारों में खो गया।

इधर खुर्शीद सर गुड्डू सर के पास गए। उन्होंने भोला द्वारा लिखी गई कविताओं को पढ़कर गुड्डू सर को सुनाया। गुड्डू सर आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने कहा कि इतने छोटे बच्चो द्वारा लिखी गई इतनी अच्छी कविताएं मैंने नहीं देखी थी मैं अपने आप पर बहुत ही शर्मिंदा हूं कि विद्यालय के इतने होनहार विद्यार्थी को मैंने बहुत भला बुरा कहा है। मैंने उसे उसकी बस्ती के नाम पर बहुत कुछ उल्टा सीधा कह दिया। मुझे अब बहुत पछतावा हो रहा है। चलिए उससे मैं माफी मांगूंगा। दोनों शिक्षक एक साथ चल दिए। रास्ते में ही उन्हें भोला मिल गया। गुड्डू सर ने भोला से कहा कि मुझे माफ कर दो मुझसे गलती हो गई। इतनी अच्छी कविताएं लिखने वाले विद्यार्थी को जो हमारे विद्यालय के लिए गौरव है मैंने क्या–क्या नहीं कह दिया। आज मुझे बहुत बड़ी सीख मिली है कि सभी विद्यार्थी के अंदर कोई न कोई विशेष क्षमता है। उसे पहचानने की जरूरत है। गुड्डू सर ने भोला को गले से लगा लिया। भोला अब खुशी से भर गया।

हमारी संपूर्ण प्रकृति तमाम विविधताओं से भरी पड़ी है। भिन्न प्रकार के जीवों, पेड़ पौधों, नदी नालों, स्थलाकृतियों आदि के रूप में यह विविधता ही प्रकृति का सौंदर्य है। हमारा समाज भी भिन्न–भिन्न रंग, क्षमता, प्रकृति, भाषा, वेशभूषा, खानपान, आचार व्यवहार, आस्था, धर्म, संप्रदाय आदि से संबंधित विविध व्यक्तियों व समुदायों से समृद्ध है। यही विविधता हमारे समाज की खूबसूरती है। हमारे समाज में विद्यमान विभिन्न समुदाय और लोगों की क्षमताएं व खासियत अलग–अलग हैं। एक लोकतांत्रिक सत्ता और व्यवस्था की यह भूमिका होनी चाहिए कि इन विविध जनों व समुदायों के विकास करने व एक बेहतर जीवन जीने की व्यवस्थाओं को बिना भेदभाव के सुलभ कराए। परन्तु हमारे समाज ने मानव सम्यता के विकास क्रम में सत्ता व व्यवस्था के भिन्न–भिन्न रूपों को देखा व उन वर्चस्व वादी तत्वों के अनुरूप जीने को बाध्य हुआ। शताब्दियों तक सुविधाविहीन, धन, प्रतिष्ठा व ताकत से महरूम एक बड़े वर्ग को सुविधा युक्त बेहतर व सम्मानित जीवन जीने की व्यवस्थाओं से दूर रखा गया। सुविधाओं से वंचित किए जाने का आधार बना जन्म का कूल, लिंग, निवास, स्थान, भाषा, आस्था व मान्यताएं, धर्म व संप्रदाय आदि। ये आधार जो मूल रूप से विविधताएँ हैं। इसके कारण किसी वर्ग व

व्यक्ति विशेष को विकास करने के लिए जरूरी मौलिक सुविधाओं से वंचित किए जाने से ही असमानता जन्म लेती है।

इस प्रकार असमानता सत्ता व वर्चस्ववादी ताकतों के प्रत्यक्ष या परोक्ष व्यवहार द्वारा विकास के साधनों के असमान वितरण से उत्पन्न हुई वह स्थिति है जिसमें एक ही समाज में भिन्न–भिन्न जन व समुदाय विकास की विभिन्न अवस्थाओं में रहने को बाध्य होते हैं। दूसरे ढ़ंग से देखा जाए तो असमानता, सत्ता व वर्चस्व वादी ताकतों का व्यवहार भी है और समाज की स्थिति भी विकास हेतु आवश्यक सुविधाओं से वंचित होने तथा इस असमानता के व्यवहार के कारण व्यक्ति व समुदाय के अंदर वंचन का भाव जन्म लेता है और वह स्थिति जिसमें वंचित व्यक्ति जीता है वंचना के रूप में जाना जाता है। सूक्ष्मता से देखा जाए तो वंचन व्यक्ति तथा समुदाय दोनो स्तर पर दो प्रकार से हो सकता है। व्यक्ति तथा समूह के अंदर वंचन का भाव इस कारण से भी हो सकता है कि वह जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रहा हो और इस संघर्ष के बावजूद भी उनसे वंचित हो या शारीरिक और मानसिक रूप से इतना अक्षम हो कि सामान्य सुविधाओं के उपलब्ध होने के बावजूद भी उसका उपयोग ना कर पाए। इस प्रकार के वंचन को वास्तविक वंचना (Absolute Deprivation) कहा जा सकता है। वंचन का दूसरा भाव इस कारण से भी उत्पन्न हो सकता है कि व्यक्ति या समूह किसी दूसरे व्यक्ति या समूह की अपेक्षा भौतिक संसाधनों, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अन्य किसी भी कारण से अपने आप को वंचित महसूस कर रहा हो। वंचन के इस भाव को सापेक्षिक वंचन (Relative Deprivation) कहा जाता है।

इस प्रकार वंचन को मोटे तौर पर चार प्रकार से देखा जा सकता है– 1. वास्तविक वैयक्तिक वंचना (Absolute Individual Deprivation) 2. सांपेक्षिक वैयक्तिक वंचना (Relative Individual Deprivation) 3. वास्तविक सामुदायिक वंचना (Absolute Fraternal Deprivation) 4. सापेक्षिक सामुदायिक वंचना (Relative Fraternal Deprivation) |

अब आइए विविधता, असमानता तथा वंचना की शैक्षिक संदर्भों में पड़ताल करें। हमारे देश में विविधताओं की भरमार है। कई मान्यताओं, विश्वासों, लोक परंपराओं, पद्धतियों, रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा तथा अन्य कई सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं वाले लोग इस देश में निवास करते हैं। शिक्षा के संस्थानों में मौजूद लोग भी इसी विविधता को धारण किए होते हैं। अतः हमें शिक्षायी वातावरण में अवश्य विविधताओं का सम्मान करना चाहिए। क्योंकि विविधता इस समाज की पूंजी है, इसका सौंदर्य है जिसको सजाना शिक्षा का दायित्व होना चाहिए। आप अपने विद्यालय जीवन में निरंतर इस प्रकार की विविधताओं का अनुभव करते होंगे। कल्पना कीजिए कि दो भिन्न आर्थिक स्थिति, वेशभूषा, खान–पान या लोक परंपरा वाले विद्यार्थियों में कोई शिक्षक भेदभाव करना व असमान व्यवहार करना शुरू कर दे तो किस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होगी? क्या यह स्थिति किसी विद्यार्थी के विकास व उसके आत्म–संप्रत्यय के निर्माण को प्रभावित नहीं करेंगी। आपका उत्तर निश्चित ही हाँ होगा। आप संभवतः यह उत्तर देंगे कि असमान व भेदभाव पूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों के अंदर वंचना का भाव आएगा, तथा यह भाव अवश्य ही उनके विकास को प्रभावित करेगा। संभवतः उन विद्यार्थियों में तंत्र के खिलाफ विद्वेष पैदा होगा जो आगे चलकर उनके व्यक्तित्व की प्रकृति को निर्धारित करेगा। अतः एक शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह ऐसे शिक्षायी माहौल का निर्माण करें जिसमें विविधताओं का सम्मान हो, किसी भी प्रकार की असमानता का व्यवहार न हो तथा एक समावेशी वातावरण में बच्चों को विकास करने का अवसर मिले।

उपर्युक्त बिंदुओं को हम दृष्टांतों के माध्यम से भी समझने का प्रयास करते हैं। दृष्टांत एक के माध्यम से हमने यह समझा कि माली हरिमोहन के भेदभाव पूर्ण व्यवहार का अन्य फूलों के पौधों पर क्या असर पड़ता है। दो राहगीरों के हरिमोहन पर पड़ने वाले प्रभाव का भी हम परीक्षण करते हैं।

दृष्टांत दो में हमने यह समझा की विविधता के कारण भोला के साथ शिक्षक गुड्डू सर के भेदभाव पूर्ण व्यवहार का कितना बुरा प्रभाव पड़ा। एक शिक्षक के दायित्व को खुर्शीद आलम के चरित्र के माध्यम से हम समझ सकते हैं। उपर्युक्त दोनों दृष्टांत विविधताओं के सम्मान, व्यवहार की समानता व वंचना के भाव से मुक्ति के मार्गों को स्पष्ट करते हैं।

2.समाज में सत्ता, वर्चस्व और प्रतिरोध

सत्ता, वर्चस्व और प्रतिरोध समेकित अंतःक्रियाओं का नाम है। मानवीय सभ्यता की शुरूआत से ही सत्ता मनोवृति के रूप में मानव व्यवहार श्रृंखला में शामिल हो गई है। जे. सी. जौहरी के अनुसार सत्ता भी एक मनोवृति है, जो मनुष्य के व्यवहार में परिलक्षित असंख्य अलग–अलग हुए अनुभवों के कारण हुई असंख्य अलग–अलग इच्छाओं के जोड़ के कारण नहीं बल्कि स्वाभाविक रूप में और लगातार मनुष्य सत्ता की इच्छा करता है। मनुष्य अपनी इसी वृत्ति के कारण आजीवन संघर्ष और द्वंद में जीता है। उसकी दो इच्छाएं हमेशा साथ–साथ चलती है। पहली स्थायित्व जिसका अगला चरण प्रभुत्व में परिवर्तित होता जाता है। दूसरा किसी भी प्रकार के दबाव या प्रभुत्व का प्रतिरोध। स्वच्छंदता मनुष्य की आदिम चेतना रही है। वह किसी भी प्रकार के बंधन से मुक्त रहना चाहता है। परंतु स्थायित्व और प्रभूत्व की इच्छा उसे दूसरों पर अपने वर्चस्व को स्थापित करने की प्रेरणा देता है। फलतः एक अनवरत चलने वाले संघर्ष की उत्पत्ति होती है। वर्चस्व और प्रतिरोध के इसी द्वंद पर मार्क्स अपना पक्ष रखते हुए कहते हैं ''आज तक का अस्तित्वमान समस्त समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है।''

कार्ल जे फ्राईडरिक ने कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट एंड डेमोक्रेसी में सत्ता को किसी प्रकार के मानव संबंध के वर्णन से जोड़ा है। यही सत्ता और सत्ता विमर्श का मूल है। यह मानवीय संबंधों की व्याख्या करने का सफल औजार है। मिशेल फूको सत्ता का स्पष्टीकरण देते हुए कहते हैं ''सत्ता हम क्या हैं ,उसका निर्धारण करती है।" एक ही वाक्य में फूको सत्ता के संपूर्ण चरित्र का उद्घाटन कर देते हैं कि सत्ता मूलतः अस्तित्व मूलक शब्द है। यही अस्तित्व स्थायित्व पाकर वर्चस्व में परिणत हो जाता है। मिशेल फूको फिर कहते हैं–सत्ता वह मूलभूत तत्व है जो संसार की प्रत्येक वस्तु में बराबर रूप में विद्यमान है।"

अर्थात यहाँ यह कहना होगा कि प्रत्येक व्यक्तित में सत्ता, अस्तित्व मूलक प्रवृत्ति में तो है ही, साथ ही प्रत्येक मनुष्य में सत्ता वर्चस्व की आकांक्षा के रूप में भी पलती है। तात्पर्य यह है की वर्चस्व और प्रतिरोध दोनों साथ–साथ चलते और पलते हैं।
अंतोनियों ग्राम्शी भी इस विचार से सहमत होते हुए लिखते हैं–''प्रत्येक मनुष्य चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, वर्चस्व के प्रभाव से युक्त होता है। हालांकि हर मनुष्य का अलग–अलग उद्देश्य पूर्ण जीवन होता है, जो कि अन्य से अलग होता है। परंतु सामाजिक स्तर पर वह सांस्कृतिक वर्चस्व का हिस्सा होने से बच नहीं सकता, और जब कोई मनुष्य सामाजिक संरचना में शामिल है वह समाज में अंतर्निहित सांस्कृतिक वर्चस्व को समझने में उसके प्रतिकार में असमर्थ है।

हिंदी का सत्ता विमर्श अंग्रेजी के पावर डिस्कोर्स का पर्याय है। पावर को हम शक्ति के रूप में समझते हैं। साधारण रूप में सत्ता वह आचरण है जिसके आधार पर कोई भी अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। सत्ता एक विशेष प्रकार का औचित्यपूर्ण प्रभाव भी है। सत्ता शक्ति का संस्थापक एवं विधिक रूप है। यह उस समय उत्पन्न होती है जब शासक और शासित में संबंध स्थापित होता है। साधारण अर्थ में सत्ता निर्णय लेने की वह शक्ति है जो दूसरों के कार्यों को प्रभावित करती है। हर्बर्ट साइमन ने इसे निर्णय लेने की शक्ति ही कहा है। यूनेस्को की 1955 की रिपोर्ट के अनुसार–'सत्ता वह शक्ति है जो कि स्वीकृत, सम्मानित, ज्ञात एवं औचित्यपूर्ण होती है।' इसे अनेक विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित भी किया है–

1. बायर्सटड के अनुसार– "सत्ता शक्ति के प्रयोग का संस्थात्मक अधिकार है स्वयं शक्ति नहीं।"
2. बीच के अनुसार– "दूसरों के कार्यों को प्रभावित एवं निर्देशित करने के औचित्यपूर्ण अधिकार को सत्ता कहते हैं।"
3. रोवे के अनुसार– "सत्ता व्यक्ति या व्यक्ति समूह के राजनीतिक निश्चयों के निर्माण तथा राजनीतिक व्यवहारों को प्रभावित करने का अधिकार है।"
4. बर्नार्ड बारबर के अनुसार– "सत्ता औचित्यपूर्ण शक्ति है।"

5. ई. एफ. कोल्टर के अनुसार– "सत्ता वह क्षमता है जिससे कोई घटना हो सकती है जो उस क्षमता के बिना नहीं होती।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सत्ता राज्य के शासकों द्वारा संचालित राज्य की शक्ति है जो औचित्यता व पूर्णता पर आधारित है।

सत्ता के दो प्रमुख घटक है– 1. शक्ति 2. वैधता

जब शक्ति को जनता का औचित्यपूर्ण समर्थन मिल जाता है तो इसे वैधता प्राप्त हो जाती है।

शक्ति को किसी व्यक्ति, समूह या संस्था द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति समूह व संस्था से उसके चाहने या न चाहने के बावजूद भी अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य कराने की क्षमता के रूप में समझा जा सकता है। व्यक्ति, समूह या संस्था कई प्रकार से शक्ति का अर्जन करते हैं। या तो प्रारंभ से ही परंपरागत रूढ़ियों, आस्था, मान्यताओं या अपने परिवेश द्वारा अर्जित संसाधनों के माध्यम से शक्ति के स्रोतों यथा धन, बाहुबल तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए वर्चस्व के संघर्ष के माध्यम से या फिर प्रायोजित ढंग से धन, बाहुबल या प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए वर्चस्व के संघर्ष में ऊपर जाकर यह शक्ति अर्जित करते हैं। इस शक्ति के माध्यम से संसाधनों पर कब्जा तथा उसके उपयोग को नियंत्रित करने में हस्तक्षेप भी प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार की शक्तियाँ जिम्मेदारियों के बजाय अपने लाभ के अर्जन तथा संसाधनों के समान वितरण के बजाय संसाधनों पर कब्जा की ओर ही उन्मुख होती है जिसके कारण एक बड़ा वर्ग सम्मान पूर्वक जीवन जीने के आवश्यक संसाधनों से भी वंचित हो जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति, समूह या संस्था द्वारा संसाधनों पर कब्जा तथा उसके उपयोग को सुनिश्चत करने का सामर्थ्य ही वर्चस्व है। जब कई शक्ति केंद्रों के बीच इस वर्चस्व का संघर्ष बढ़ जाता है तब एक ऐसे केंद्र की आवश्यकता पड़ती है जो सभी के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। और इस हेतु जब किसी क्षेत्र की विभिन्न शक्तियाँ किसी एक केंद्र पर अपनी शक्तियों को विसर्जित करती है अर्थात अपनी शक्तियों को उस केंद्र द्वारा उपयोग किए जाने का अधिकार प्रदान करती है तब वह शक्ति केंद्र सत्ता का रूप धारण करता है। इस प्रकार सत्ता विधिक शक्ति का केंद्र है। सत्ता का स्वरूप किस प्रकार का है यह इस बात से निश्चित होता है कि उस सत्ता में अपनी शक्तियों को विसर्जित करने वाले केंद्र कौन से हैं। और इसी बात से यह ज्ञात होता है कि सत्ता का चरित्र कैसा होगा। सत्ता की बात करने के पूर्व शक्ति के दो रूपों को समझना आवश्यक है। एक वास्तविक शक्ति जिसके बारे में ऊपर चर्चा की गई है और दूसरी आभासी शक्ति जिसमें सिद्धांततः तो शक्ति प्रतीत होती है परंतु वह वास्तविक रूप में शक्ति का केंद्र नहीं होता। परंतु उन आभासी शक्तियों के संयोजन से बनी सत्ता वास्तविक रूप में उन शक्तियों का उपयोग करती है साथ ही वह नैतिक रूप से उन आभासी शक्ति केंद्रों के प्रति स्वयं को उत्तरदायी मानती है। यह प्रश्न अलग है कि वह सत्ता उत्तरदायी होती है या नहीं। लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत सत्ता इसका एक उदाहरण है जिसमें सिद्धांततः शक्ति वहां के नागरिकों में निहित होती है परंतु उसका वास्तविक उपयोग सत्ता के द्वारा किया जाता है। लोकतांत्रिक सत्ता द्वारा इस शक्ति का उपयोग लोक कल्याण के लिए, वहां के नागरिकों के उत्थान के लिए संसाधनों के समान व समुचित वितरण के लिए व सभी को सम्मानपूर्ण व बेहतर जीवन जीने के साधनों को उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है। परंतु जब सत्ता लोक कल्याण के काम से विमुख होकर वर्चस्ववादी ताकतों को पुष्ट व तुष्ट करने में लग जाती है तब एक बड़े वर्ग तक मूलभूत संसाधनों की पहुंच उस का प्रमुख उद्देश्य नहीं रह जाता और ऐसे में सुविधाओं से वंचित समूह के अंदर प्रतिरोध जन्म लेता है। प्रतिरोध का मूल कारण संसाधनों का असमान वितरण, लोक–संसाधनों का बिना लोक की इच्छा के वर्चस्ववादी ताकतों के दबाव में दोहन तथा लोक का शोषण आदि है। प्रतिरोध का उद्देश्य निर्णयकारी प्रक्रियाओं व संसाधनों के वितरण में वंचित वर्ग की सहभागिता को सुनिश्चत करना है। किसी भी समाज में वर्चस्ववादी ताकतों वंचित वर्ग में प्रतिरोध को ही जन्म देती है। सत्ता का चरित्र जब लोक कल्याणकारी होता है तब प्रतिरोध की

संभावनाएं कम होती है परंतु जब सत्ता वर्चस्ववादी ताकतों के समर्थन में लोकहित से विरत होने लगती है तब यह प्रतिरोध वर्चस्ववादी ताकतों के साथ–साथ सत्ता के प्रति भी शुरू हो जाता है।
अब आइए सत्ता वर्चस्व तथा प्रतिरोध को कुछ दृष्टांत के द्वारा समझें–

दृष्टांत तीन–

निम्नलिखित दशाओं पर ध्यान दें–

दशा एक–

- प्राचीन भारत की स्थिति।
- भारत में राजतंत्र।
- गाँव में वर्ण व जाति व्यवस्था, उच्च वर्ण का वर्चस्व।
- वर्ण, जाति व्यवस्था व धार्मिक नियमों के खिलाफ आम जनता का प्रतिरोध।
- शिक्षा की गुरूकुल पद्धति जहां अधिकतर उच्च वर्ण व जाति के विद्यार्थी।

दशा दो–

- आजादी के पहले भारत की स्थिति।
- भारत ब्रिटेन का उपनिवेश, रानी का शासन।
- गाँवों में जमींदारों का वर्चस्व।
- आम जनता का अंग्रेजों के पिट्ठू जमींदारों व अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ प्रतिरोध।
- गाँव के विद्यालय में ज्यादातर जमींदार तथा अगड़े वर्ग के विद्यार्थी।

दशा तीन–

- 1950 के दशक में भारत की स्थिति।
- भारत एक आजाद देश, लोकतंत्र की स्थापना।
- गाँव में जमींदारों की स्थिति कमजोर हुई, परंतु सूद पर पैसा देने वाले साहूकारों का वर्चस्व।
- आम जनता का जमींदारों व साहूकारों के खिलाफ प्रतिरोध।
- गाँव के विद्यालय में अगड़े वर्ग के साथ–साथ पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों की मौजूदगी।

दशा चार–

- वर्तमान भारत की स्थिति।
- भारत समाजवाद, धर्म निरपेक्षता तथा लोकतंत्र के मूल्यों के अनुरूप विकसित होने वाला देश।
- गाँव में पुराने वर्चस्व की समाप्ति, वोट की क्षमता के अनुरूप विभिन्न वर्गों का वर्चस्व।
- सरकारी नीतियों और व्यवस्थाओं को लागू न करने वाले अधिकारियों व भ्रष्ट जनों के खिलाफ प्रतिरोध।
- गाँव के विद्यालय में ज्यादातर पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों की मौजूदगी, विद्यालय में समावेशी वातावरण का विकास।

दृष्टांत चार–

निम्नलिखित स्थितियों पर ध्यान दें–

स्थिति एक–

- छत्तीसगढ़ के सुकमा क्षेत्र में जंगल से घिरे इलाके का एक गांव।
- माओवादी लड़ाकों का वर्चस्व।

- माओवादियों द्वारा वहां की आम जनता को लोकतांत्रिक सरकार के खिलाफ हथियार उठाने के लिए निरंतर प्रेरित किया जाना, सरकार के खिलाफ झूठे आधारों पर प्रतिरोध का माहौल बनाया जाना।
- सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार।

स्थिति दो–

- बिहार के जमुई क्षेत्र का एक गांव।
- गाँव के सभी लोगों में काफी मेल जोल, मुखिया का सीमित रूप में वर्चस्व।
- कभी–कभी सरकारी सुविधाओं को देरी से जनता के बीच पहुँचाने के कारण मुखिया के खिलाफ प्रतिरोध।
- विद्यालय में सभी वर्गों के विद्यार्थी, विद्यार्थियों का पढ़ाई के साथ–साथ सरकारी सुविधाओं की प्राप्ति पर भी ध्यान।

स्थिति तीन–

- पटना नगर।
- सभी लोग अपने अपने रोजगार में व्यस्त, दबाव बनाने हेतु जनता का एक मंच पर आना अर्थात समूह व संगठन जैसे दबाव समूह।
- बिजली, पानी, सफाई आदि मुद्दों पर संगठित प्रतिरोध।
- सरकारी विद्यालय में ज्यादातर आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के विद्यार्थी, गाँव की अपेक्षा पढ़ाई पर अधिक ध्यान ।

उपर्युक्त दोनों दृष्टांतों के माध्यम से हम सत्ता, वर्चस्व एवं प्रतिरोध की अवधारणा को समझ पाते हैं। दृष्टांत तीन के माध्यम से हमने यह समझा कि विभिन्न दौड़ में सत्ता अपनी विकास यात्रा के दौरान किस प्रकार वर्चस्व व प्रतिरोध के स्वरूप को निश्चित करती है तथा उसका विद्यालयी वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। दृष्टांत तीन में हमने देखा कि चार दशाओं में या तो प्राचीन भारत की स्थिति हो या आजादी के पहले भारत की स्थिति अथवा 1950 के दशक में भारत की स्थिति हो या वर्तमान भारत की स्थिति प्रत्येक दशा में किसी न किसी की सत्ता मौजूद होती है। प्रत्येक दशा में जिनकी भी सत्ता वर्तमान में होती है उनके कुछ नजदीकियों या चाहने वालों का वर्चस्व होता है। इसके कारण वे सभी अपनी भागीदारी या हिस्सेदारी से अधिक प्राप्त करना चाहते हैं। जिसके फलस्वरूप अधिकांश वर्ग अपने अधिकारों से वंचित रह जाता है। यही वंचित वर्ग अपनी भागीदारी नहीं प्राप्त करने के कारण मौजूद सत्ता का प्रतिरोध एवं आगे चलकर सत्ता में परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। दृष्टांत चार के माध्यम से हमने यह समझा कि सत्ता के एक स्वरूप होने के बावजूद भी विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार वर्चस्व व प्रतिरोध का स्वरूप भिन्न–भिन्न है। हमने यह भी देखा कि वहां के विद्यालयों पर इस स्थिति का क्या प्रभाव पड़ता है।

सत्ता के प्रकार

सत्ता वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है। इसको क्षेत्रीय, प्रशासनिक एवं राजनीतिक दृष्टि से कई भागों में बाँटा जा सकता है। विभिन्न स्रोतों के अनुसार सत्ता के विविध रूप हो जाते हैं। सत्ता की औचित्यपूर्णता के अनुसार मैक्स वेबर ने आधुनिक राज्य में सत्ता के तीन प्रकार बताये है––

1. परंपरागत सत्ता (Traditional Authority)
2. कानूनी विवेकपूर्ण या तर्कसंगत सत्ता (Legal/Rational Authority)
3. करिश्माई सत्ता (Charismatic Authority)

परंपरागत सत्ता

यह सत्ता परंपरागत शक्ति ढांचे से जन्म लेती है। जब प्रजा या अधीनस्थ कर्मचारी अपने शासक या वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा या आदेशों का पालन करते हैं तो वह परंपरागत सत्ता होती है। ऐसा करना एक परंपरा बन जाती है। इस सत्ता का आधार यह है कि जो व्यक्ति या वंश आदेश देने का अधिकार रखता है वह प्रचलित परंपरा पर ही आधारित होता है। इस प्रकार की सत्ता में प्रत्यायोजन अस्थाई और स्वेच्छाचारी होता है। राजतंत्र में इसी प्रकार की सत्ता प्रचलित होती है। प्रशासनिक दृष्टि से अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा स्वेच्छापूर्वक आंख बंद करके पालन किया जाता है।

कानूनी विवेकपूर्ण सत्ता

इस सत्ता का आधार शासक या प्रशासनिक अधिकारी का राजनीतिक पद होता है। आधुनिक नौकरशाही इसी प्रकार की सत्ता को प्रकट करती है। इसमें प्रत्यायोजन स्थाई व बौद्धिक होता है। इसमें कुर्सी या पद का सम्मान किया जाता है, व्यक्ति का नहीं। इसमें औपचारिक संबंधों का महत्व समझा जाता है। इसमें समस्त कार्य–व्यवहार कानून की परिधि में ही किया जाता है। इसमें संवैधानिक नियमों के अनुसार प्रशासनिक व राजनीतिक पद का प्रयोग किया जाता है। कोई भी व्यक्ति कानून से बड़ा नहीं होता। इस प्रकार की सत्ता का आधार कानून का शासन होता है।

करिश्माई सत्ता

जब जनता या अधीनस्थ कर्मचारी अपने शासक या वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा का पालन उनकी व्यक्तिगत छवि के कारण करते हैं तो वह सत्ता करिश्माई सत्ता होती है। इस प्रकार की सत्ता में वरिष्ठ की आज्ञा का पालन उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर किया जाता है। इस प्रकार के सत्ता में अनुयायी अपने नेता के कहने पर कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। उनके लिए नेता के शब्द वेद–वाक्य हैं। इस प्रकार की सत्ता धार्मिक और युद्ध के क्षेत्र में अधिक प्रभावी रहती है। यह सत्ता विशेष परिस्थितियों की उपज होती है।

सत्ता की शक्ति का उपयोग व प्रयोग सरकार करती है। अतः जब हम सत्ता के संदर्भ में बात करते हैं तो वस्तुतः हम सरकार के बारे में बात कर रहे होते हैं। सामान्यतया सत्ता या सरकार की प्रकृति वर्चस्व व प्रतिरोध के स्वरूप का निर्धारण करती है। अर्थात भिन्न–भिन्न प्रकार की सरकार वाले तंत्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के वर्चस्ववादी ताकत व प्रतिरोध विद्यमान होते हैं। एक राजतंत्रात्मक व्यवस्था में वर्चस्ववादी ताकतों के रूप में राजपरिवार से जुड़े लोग ऊंचे घराने के प्रभावशाली लोग हो सकते हैं जबकि जनतंत्र में इसकी गुंजाइश कम है। जहां राजतंत्रात्मक व्यवस्था में प्रतिरोध का स्वरूप राजशाही के खात्मे के लिए हो सकता है। वहीं लोकतंत्र में यह प्रतिरोध संविधान में वर्णित अधिकारों की वास्तविक प्राप्ति के लिए हो सकता है। अतः सरकारो के विविध रूपों में वर्चस्व व प्रतिरोध के भी विविध रूप पाए जाते हैं। यहां विभिन्न प्रकृति की सरकार के कुछ रूपों को प्रस्तुत किया जा रहा है। इन विविध प्रकृति की सरकारों के अंतर्गत वर्चस्ववादी ताकतों व प्रतिरोधात्मक प्रवृत्तियों के संदर्भ में एक शिक्षक द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है क्योंकि यह चिंतन उसे एक बेहतर शिक्षा ही वातावरण विकास की जमीन तैयार करने में सहायक होगी।

सरकारों के विविध रूप निम्नलिखित हैं

1ण लोकतंत्र (DEMOCRACY)

जनता की सरकार। वैसी सरकार जिसे जनता चुनती है। यह दो प्रकार की हो सकती है–
पहला– प्रत्यक्ष लोकतंत्र जिसमें जनता सीधे राष्ट्राध्यक्ष या सरकार का चयन करती है तथा
दूसरा– अप्रत्यक्ष लोकतंत्र या प्रतिनिधित्वपूर्ण लोकतंत्र जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है तथा प्रतिनिधि मिलकर सरकार बनाते हैं व राष्ट्राध्यक्ष चुनते हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण स्वीट्जरलैंड है जबकि अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण भारत है।

2ण गणराज्य (REPUBLIC)

वैसी व्यवस्था जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है तथा प्रतिनिधि मिलकर सरकार बनाते हैं व राष्ट्राध्यक्ष चुनते हैं। यह वस्तुतः अप्रत्यक्ष लोकतंत्र या प्रतिनिधित्वपूर्ण लोकतंत्र ही है। चूंकि वास्तविक लोकतंत्र या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र सभी दशाओं में संभव नहीं हो पाता है अतः गणराज्य व्यवस्था ही आज लोकतंत्र व्यवस्था के रूप में जानी जा रही है। गणराज्य या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का उदाहरण भारत है।

3. वास्तविक राजतंत्र (ABSOLUTE MONARCHY)

वैसी व्यवस्था जिसमें राजा या रानी शासन करते हैं जिसे शासक कहा जाता है। सभी शक्तियां शासक में ही नीहित होती है। कुछ वर्षों पूर्व तक भूटान इसका उदाहरण था।

4. सीमित राजतंत्र (LIMITED MONARCHY)

वैसी व्यवस्था जिसमें राजा या रानी का शासन प्रतीक रूप में होता है जबकि वास्तविक शक्ति जनता द्वारा चुनी गई सरकार में निहित होती है। यह व्यवस्था राजतंत्र व गणतंत्र के मिश्रण के रूप में विकसित हुई परंतु वर्तमान में गणतंत्र प्रधान बन गयी, क्राउन या राजा या रानी प्रतीक मात्र रह गए। वर्तमान उदाहरण यूनाईटेड किंग्डम (ब्रिटेन) है।

5. अभिजात्य तंत्र (ARISTOCRACY)

इस व्यवस्था के अंतर्गत कुछ सुविधा संपन्न, शिक्षा प्राप्त व तथाकथित अभिजात्य वर्ग के लोगों द्वारा शासक या सरकार का चयन किया जाता है। प्राचीन यूनान में यह व्यवस्था थी इसे कुछ लोगों का शासन या अल्प तंत्र भी कहा जाता है।

6. सैनिक शासन या सैनिक तानाशाही (MILITARY DICTATORSHIP)

इस व्यवस्था में सत्ता का अधिग्रहण सेना वा सेना प्रमुख द्वारा कर लिया जाता है जिसके कारण राज्य की शक्ति सेना के कब्जे में रहती है। बर्मा देश इस व्यवस्था का उदाहरण है।

7. तानाशाही (DICTATORSHIP)

इस व्यवस्था में सत्ता पर किसी एक व्यक्ति या एक समूह का कब्जा हो जाता है जिसके द्वारा शासन किया जाता है। इसके उदाहरण के रूप में क्यूबा के फिदेल क्रास्तो, जर्मनी के हिटलर आदि का नाम प्रमुख है।

8. लोकतांत्रिक गणराज्य (DEMOCRATIC REPUBLIC)

सामान्यतया साम्यवादी देशों ने अपनी शासन व्यवस्था को लोकतांत्रिक गणराज्य का नाम दिया है। परंतु वास्तव में यह लोकतांत्रिक व गणराज्य से भिन्न एक दल का शासन होता है। उत्तरी वियतनाम तथा चीन इसके उदाहरण है।

9. अराजकता (ANARCHY)

यह कोई व्यवस्था नहीं है वरन व्यवस्थाहीनता की स्थिति है, कानून व न्याय का नितांत अभाव है, सत्ता व सरकार की घोर असफलता से उत्पन्न स्थिति है। वर्तमान में आईएसआईएस के कब्जे वाले सीरिया व ईराक के इलाके अराजकता के उदाहरण हैं।

10. धर्मतंत्र (THEOCRACY)

इस व्यवस्था में किसी धर्म या संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप धर्म या संप्रदाय के अधिकारियों व पुजारियों द्वारा शासन व्यवस्था चलाई जाती है। वर्तमान में इस व्यवस्था का उदाहरण वेटिकन सिटी है।

3.समता, समानता और सामाजिक न्याय के लिए शिक्षाः अवधारणा आवश्यकता एवं अवरोध

हम विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र भारत में निवास करते हैं। किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के

केंद्र में वहां के नागरिकों की बेहतरी होती है। नागरिकों से आशय सभी नागरिकों से है चाहे वह शहर का हो या गांव का अमीर हो या गरीब, अगड़ा हो या पिछड़ा, शिक्षित हो या अशिक्षित, आस्तिक हो या नास्तिक सभी के प्रति समान भाव रखते हुए सभी की बेहतरी के लिए निरंतर कार्य करना ही स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व व न्याय के सिद्धांतों पर आधारित एक समाजवादी, धर्म निरपेक्ष व लोकतांत्रिक गणराज्य का दायित्व है। अतः लोकतांत्रिक राष्ट्र का दायित्व विकास के एक ऐसे प्रतिमान को देना है जिसमें हाशिए पर जी रहे समाज के अंतिम व्यक्ति की बेहतरी भी शामिल हो। अर्थात विकास की बयार से समाज का कोई भी वर्ग, समुदाय व व्यक्ति अछूता न हो।

शिक्षा में समता एवं समानता की अवधारणा

हमारी शिक्षा व्यवस्था के लिए समता एवं समानता अहम मुद्दे हैं। आमतौर पर एक सामान्य व्यक्ति समता और समानता का प्रयोग समान अर्थों में करता है पर वास्तविकता कुछ और है। आइए हम दो चित्रों के माध्यम से समता एवं समानता को समझने का प्रयास करते हैं–

चित्र–1

चित्र–2

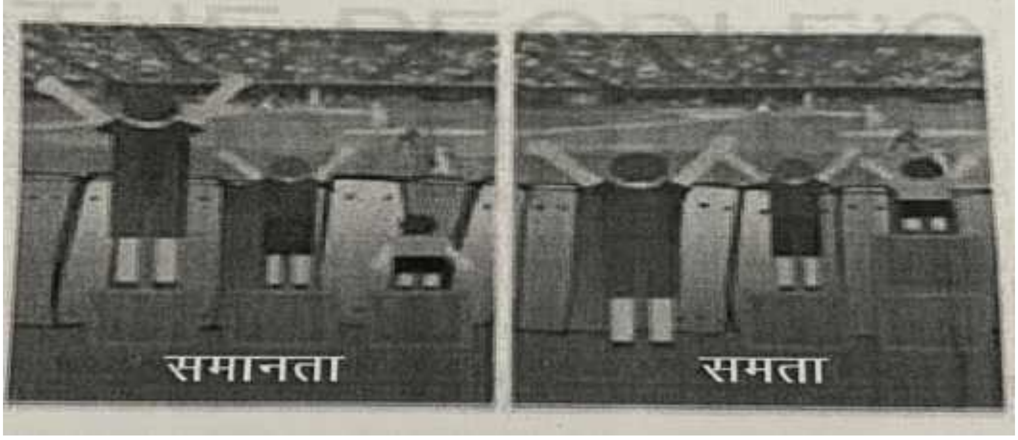

यहाँ हमे चित्र–1 को देखने से पता चलता है कि एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सबको समान अवसर मिल रहे हैं। अर्थात चयन के लिए सभी को एक समान अवसर प्रदान किए जा रहे है। यहां पर हम देखते हैं कि सफल घोषित करने के लिए सबको समान परीक्षा देनी पड़ रही है। अर्थात समानता विद्यमान है। अब विचारणीय बिन्दु है कि क्या हमें ऐसी समानता की आवश्यकता है क्या ? क्या इस प्रकार की समानता से हमारी समस्याओं का समाधान संभव है? यह संपूर्ण है या कुछ छूट रहा है ? जी हाँ ,जो कुछ भी छूटा हुआ घटक है वे ही समता लागू कराने के लिए हमें सोचने पर मजबूर करते है।

अब चित्र–2 को देखते हैं तो पाते हैं कि इसके पहले भाग में समानता की भावना को दिखलाया गया है। जिसमें सबों के साथ समानता का व्यवहार किया गया है। परिणाम स्वरूप जिसे आवश्यकता नहीं थी एवं जिसे काफी अधिक आवश्यकता भी सबको एक तराजू पर रखते हुए समान सुविधाएं आपूर्ति की गई, हुआ यह कि एक को बिना जरूरत तो दूसरे को जरूरत के हिसाब से काफी कम प्राप्त हुआ। चित्र के दूसरे भाग जहां समता को प्रकट किया गया है जिसमें गैर बराबरी को समाप्त करते हुए सब के लिए समान लक्ष्य की प्राप्ति का उद्देश्य रखा गया है।

'समानता' शब्द का अर्थ संतुलन, समरूपता और एकरूपता है या सभी तरह से समान जबकि 'समता' का अर्थ औचित्य का सिद्धांत है। प्रायः समता का प्रयोग समानता से संबंधित सिद्धांत के समानार्थी किया जाता है समता शैक्षिक प्रतिरूपों, कार्यक्रमों तथा रणनीतियों एक लोकतांत्रिक राज्य का प्रधान लक्ष्य है। समता एक आदर्श अवस्था है,एक दर्शन है जिसकी प्राप्ति का साधन समानता है। समानता, समता की स्थापना के भाव से किया गया व्यवहार है। समता साध्य है और समानता साधन।

आम आदमी 'समता' एवं 'समानता' इन दोनों शब्दों को अधिकतर ही एक दूसरे का पर्यायवाची समझते हैं। पर इनकी वास्तविकता तो इससे कुछ अलग ही है।

'समानता' का शाब्दिक अर्थ है – बराबर। व्यापाकता में समानता' का अर्थ होता है – संतुलन और एकरूपता या 'सभी तरह से समान (बराबर)'। जैसे कि हम कहते हैं शिक्षा की प्राप्ति समाज के सभी लोग चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या लिंग के हों, सबों को समान अधिकार प्राप्त है। कानून सबों के लिए समान है। यहाँ भाव है कि सबों के लिए एक बराबर है।

जबकि 'समता' का प्रयोग प्रायः समानता से संबंधित सिद्धान्त के समानार्थी किया जाता है। 'समता' का सामान्य अर्थ–सबों को एक जैसी परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि सभी को एक जैसा ही बना दिया जाए, सबों को एक जैसा घर उपलब्ध कराया जाए, सबों को एक जैसी मजदूरी/पारिश्रमिक दिया जाए।

जहाँ 'समानता' का अर्थ समान अवसर, समान व्यवहार, समान जिम्मेवारी/साझेदारी से है, अर्थात् सबों को बराबरी के स्तर पर रखने से है, वहीं दूसरी ओर 'समता', एक व्यापक शब्द है, जो न्याय और निष्पक्षता के आधार पर समान परिस्थितियाँ उत्पन्न करने पर बल देता है।

'समता' शैक्षिक प्रतिरूपों, कार्यक्रमों तथा रणनीतियों के विविध प्रकार की ओर इंगित करता है, जो उचित हो सकता है परन्तु आवश्यक रूप से समान नहीं।

आइये 'समता' और 'समानता' को और अधिक समझने के लिए हम निम्न कुछ उदाहरणों पर विचार करते हैं।

उदाहरणार्थ :–

(i) एक फुटबॉल टीम के सभी ग्यारह (11) खिलाड़ियों को जर्सी एवं जूते को उपलब्ध कराया जाना है। इसका वितरण दो तरह से हो सकता है। यदि समानता को आधार बनाये तो सबों को हमें एक ही साईज के जूतें एवं जर्सी प्रदान कर देने होगें। यहाँ हमें अलग अलग पैरों के जूते साईज एवं अलग–अलग शारीरिक कद अनुरूप जर्सी साईज का ख्याल छोड़ना पड़ता है।

दूसरी ओर सभी खिलाड़ियों के पैरों एवं शरीर के अनुरूप जूते एवं जर्सी के साईजों को ध्यान रखते हुए किया गया वितरण समता आधारित वितरण होगा।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि–समानता का मतलब आवश्यकता या किसी अन्य व्यक्तिगत अन्तर की परवाह किये बिना सभी के साथ समान (बराबर/ Equal) व्यवहार किये जाने से है। दूसरी ओर समता का मतलब है कि हर किसी को सफल होने के उदेश्य से न्यायोचित ढंग से एक जैसी/समान परिस्थितियाँ प्रदान करना। इसे हम कुछ और उदाहरणों से समझ सकते हैं:–

(ii) कार्य स्थल पर सभी कर्मचारियों को उनके कार्य प्रदर्शन में अन्तर के बावजूद समान वेतन, बोनस, प्रोन्नति प्रदान किया जाना समानता आधारित है, जबकि इन्हीं कर्मचारियों को उनके कार्य प्रदर्शन, विशेषज्ञता आधार पर वेतन, पुरस्कार, प्रोन्नति जैसी व्यवस्था प्रदान करने की सोच समता आधारित है।

(iii) किसी परिवार में रह रही किशोरियों, गर्भवती सहित स्तनपान कराने वाली सभी महिलाओं को उनके पोषण संबंधी अलग–अलग आवश्यकताओं के बावजूद एक ही बराबर/एक ही मात्रा में भोजन दिया जाना समानता आधारित है, जबकि गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं एवं किशोरियों को उनके आहार आवश्कयता के आधार पर अधिक पौष्टिक और अतिरिक्त मात्रा में भोजन दिये जाने का विचार समता आधारित है।

(iv) स्कूल/कक्षा में सभी छात्रों को शिक्षक द्वारा समान ध्यान और समान प्रयास करना या सभी छात्रों के लिए उनके परीक्षा ग्रेड, अंक और कक्षा/स्कूल के प्रदर्शन के बावजूद अतिरिक्त कक्षाओं की व्यवस्था करने जैसे व्यवहार समानता आधारित व्यवहार हैं।

दूसरी ओर अकादमिक रूप से कमजोर छात्र पर विशेष ध्यान देना, उनके लिए अतिरिक्त कक्षा में लगवाना ताकि उसकी मौजूदा शैक्षिक उपलब्धि के अन्तर को कम किया जा सके और उसकी शिक्षा और कक्षा के प्रदर्शन में सुधार हो सके, ऐसा व्यवहार शिक्षा क्षेत्र में समता आधारित है।

इस तरह से हम पाते हैं कि समता एवं समानता में अन्तर होता है।

समता एवं समानता में अन्तर :–

समता (Equity)	समानता (Equality)
(i) 'समता' का अर्थ निष्पक्षता एवं न्याय से संबंध रखता है। (ii) समता = निष्पक्षता + न्याय । यह तर्कसंगत और न्यायोचित निर्णय लेने से संबंधित है। (iii) समता व्यक्तिगत जरूरतों एवं आवश्यकता पर केन्द्रित है। इस प्रकार इसे आवश्यकता आधारित दृष्टिकोण के रूप में भी जाना जाता है। (iv) समता लोगो को वही देने के बारे में है, जिसकी उन्हें आवश्यकता है। (v) समता को 'सकारात्मक भेदभाव' करना कहा जा सकता है। यह निष्पक्ष परिणाम प्राप्ति हेतु अनुपातिक प्रतिनिधित्व (जाति, लिंग, वर्ग आदि द्वारा) को संदर्भित करता है। (vi) समता, समानता तक पहुँचने का साधन है। (vii) समता व्यक्तिपरक है। यह अलग–अलग व्यक्तियों एवं अलग–अलग स्थितियों में भिन्न होता है। यह वैयक्तिक भिन्नताओं और विविधता का सम्मान करती है। (viii) समता गुणवत्ता आधार पर चीजों को सही ठहराती है।	(i) समानता का अर्थ समान अवसर समान पहुँच, समान व्यवहार, समान साझेदारी और विभाजन अर्थात सबों की बराबरी के स्तर पर रखना है। (ii) समानता = समानता(और कुछ नहीं) ,2=2 आम= आम यह मुख्य रूप से तर्कसंगत होने या न होने के बावजूद सभी के साथ समान व्यवहार करने के बारे में हैं। (iii) समानता का अर्थ– यह सुनिश्चत करना कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन और प्रतिभा का अधिकतम लाभ उठाने का समान अवसर मिले। (iv) समानता लोगो या समाज की आवश्यकता से प्रभावित नही होती है। समानता सभी लोगों को उनकी आवश्यकता और माँग अनुरूप पूर्ति नहीं कर पाती है। (v) समानता 'नकारात्मक भेद भाव' को जन्म दे सकती है। यह प्रतिनिधत्व में अनुपातिकता का पालन नहीं करता है। (vi) समानता प्रक्रिया का परिणाम/अंतिम परिणाम/अंतिम लक्ष्य हैं। (vii) यह सबों के लिए बराबर होता है। समानता वैयक्तिक भिन्नता और विविधता को पर्याप्त महत्व नहीं देती। (viii) समानता चीजों को मात्रा आधार पर सही ठहराती है।

अब यह विदित सत्य है कि यदि समता एक प्रक्रिया है तब समानता इसका परिणाम है। शिक्षा में समानता का मतलब लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, आर्थिक–स्थिति के आधार पर अन्तर/विभेद **नहीं** किये जाने से है। इनमें अन्तर किये बिना हर योग्य व्यक्ति के लिए शैक्षिक अवसरों की समान उपलब्धता है।

'समता' का अर्थ हैं समाज के प्रत्येक व्यक्ति के अवसरों की उपलब्धता में निष्पक्षता।

शैक्षिक समता का अभिप्राय–

असमानता और शोषण पैदा करने वाले सभी कारकों को समाप्त करने के बाद प्रत्येक व्यक्ति को शैक्षिक अवसरों की समान और उचित उपलब्धता से होता है। शैक्षिक समता का बढ़ता हुआ महत्व इसलिए भी है क्योंकि अब पहले से कहीं अधिक शिक्षा का व्यक्तिगत स्तर भावी जीवन की गुणवत्ता से सीधे संबंधित

हो गया है। यद्यपि शिक्षा में असमानता से बचना एक चुनौती है तथा सामाजिक, आर्थिक स्तर, प्रजाति, लिंग या निर्योग्यता के कारण व्याप्त असमानता को रोका भी जा सकता है।

शिक्षा में समता एवं समानता की आवश्यकताः– विविधता से भरे भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में तो समता मूलक समाज की स्थापना, समावेशी विकास/न्याय के साथ विकास की संकल्पना शुरू से ही रही है।

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसारः–

''लोकतंत्र केवल ये प्रदान करता है कि सभी पुरूषों को अपनी असमान प्रतिभा के विकास के समान अवसर मिलने चाहिए''।

आज के भारत में भी शिक्षा का परिदृश्य असमान है। जाति, वर्ग, लिंग, क्षेत्र के नाम पर मतभेद इस बात के उदाहरण है। यद्यपि आजादी के बाद से आज तक सभी क्षेत्रों में विकास हुआ है, शिक्षा में भी विकास हुआ है, परन्तु अभी और भी विकास अपेक्षित है। देश भर में क्षेत्रीय पृष्ठभूमि, जाति, लिंग आधार पर विषमता दिखती है। बिहार राज्य को भी राष्ट्रीय विकास दर के साथ समानता कायम रखने में शिक्षा में कई तरह से और प्रयास करने की जरूरत है।

आईये हम विचार करें कि 'समता' और 'समानता' की आवश्कता क्यों है?

(i) अधिकार हेतुः–

शिक्षा जिसे कि सार्वभौमिक मानव अधिकार माना गया है और इसी क्रम में 'शिक्षा के अधिकार' और गैर–भेदभाव के सिद्धान्तों की आवश्यकता है।

(ii) लोकतंत्र के लिए आवश्यकः–

एक लोकतांत्रिक समाज के दौरान, समान अधिकार एवं अवसरों की समानता प्रदान की जाती है। इसलिए शिक्षा में समता और समानता की आवश्यकता है क्योंकि लोकतंत्र के दौरान किसी भी लोग या सभी लोगों के लिए शिक्षा के माध्यम से ही लोकतांत्रिक संस्थानों की सफलता सुनिश्चत होती है।

(iii) राज्य के आर्थिक विकास हेतु आवश्कताः–

इसकी आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि शिक्षा में समता एवं समानता प्रदान किये बिना आर्थिक विकास में निर्दिष्ट सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है।

(iv) आधुनिकीकरणः–

समता एवं समानता के विरोध में हम सामाजिक प्रगति की कल्पना नहीं कर सकते हैं फलस्वरूप आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने में दिक्कतें होगी एवं वैश्विक स्तर पर हम पिछड़ते जायेगें। इसलिए इसकी आवश्यकता है।

(v) सामाजिक न्याय को बल :–

सामाजिक न्याय की बात और वह भी समता/समानता के भाव बिना किया जाना कितना अर्थपूर्ण होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। दरअसल सामाजिक न्याय की बुनियाद ही सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। इसके मुताबिक किसी के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए, परन्तु

ऐसी विषमता समाज में व्याप्त है। अतः हमारी शिक्षा व्यवस्था में समता/समानता के भाव को विकसित करने की आवश्यकता है।

(vi) सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता को विकसित करने की आवश्यकताः–

न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की ओर बढ़ने में समानता के इन तीनों (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक) आयामों को लक्षित करने की आवश्यकता है।

(vii) समानता सुनिश्चत करने में शिक्षक, विद्यालय एवं पाठ्यचर्चा के रूप में आवश्यकता :–

- पूरे विद्यालय में पक्षपातपूर्ण अभिवृत्ति (लैंगिक, धार्मिक, आर्थिक भेद) को रोक कर समता को बढ़ावा की आवश्यकता।
- समावेशी कक्षा वातावरण का निर्माण कर असमानता दूर करने का प्रयास करने की आवश्यकता।
- पाठ्यचर्या का निर्माण सर्वसाधारण के लिए होना चाहिए। इसमें सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को भी पाठ्यचर्या में समान रूप से सम्मिति करने की आवश्यकता होने चाहिए।

(viii) विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों से शैक्षिक विषमता दूर करने के लिए पहल की आवश्यकत :–

भारत में शैक्षिक अवसरों की समता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा कई प्रयासों की आवश्यकता हैः–

यथा– संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप सभी बच्चों को अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रदान किये जाने की आवश्यकता।

⇒ बिना भेदभाव के नामांकन लेने एवं उन्हें शिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता।

⇒ बाल वाटिका (नर्सरी)/आंगनबाड़ी केन्द्रों पर शिक्षा एवं उनके देखभाल की प्राथमिकता दिये जाने की जरूरत।

⇒ पिछड़े/अलाभान्वितों को छात्रवृत्ति/अर्थ सहयोग की अपेक्षा।

⇒ बालिका शिक्षा पर विशेष जोर दिये जाने की जरूरत।

⇒ समानता के मानक तथा स्तर को समझने के लिए सूचकों के विकास की आवश्यकता।

⇒ विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन का निरीक्षण करते रहने की आवश्यकता।

⇒ जरूरतमंद व्यक्तियों/समूहों के लिए प्रभावी गतिविधियों तथा अभियान चलाये जाने की जरूरत।

इस प्रकार शिक्षा में समानता की प्राप्ति के लिए संपूर्ण मानव समाज समेत सभी हितधारकों को शिक्षा में सम्मिलित करने की आवश्यकता है। विशेषतः विद्यालय, प्रशासन, शिक्षक, समुदाय के सदस्यों संबंधित सरकारों, गैर–सरकारी संगठनों तथा स्थानीय और राज्य प्रशासन को सम्मिलित होना चाहिए तथा पूरे मन से कार्य करना चाहिए।

शैक्षणिक समता एवं समानता के अवरोध

एक लोकतांत्रिक राज्य का मूल उद्देश्य असमानता को दूर करना है। इसे दूर करने का सबसे उपयुक्त तरीका शिक्षा है। अतः सरकारों को इसकी उपलब्धता सबों के लिए करनी होती है। सरकारें ऐसा करने का लगातार प्रयास भी कर रही है। भारत के संविधान के तहत कई प्रावधान है, जो

शैक्षणिक अवसर में समानता प्रदान करते हैं। संविधान का अनुच्छेद 21A– प्रत्येक प्रारंभिक बच्चों (उम्र 6–14) को प्रारंभिक शिक्षा का समान अवसर प्रदान करता है। अनुच्छेद 26–शैक्षिक अवसरों की समानता के संबंध में प्रावधान करता है कि शिक्षा एक मौलिक अधिकार है एवं कोई भी शैक्षणिक संस्थान किसी भी छात्र को जाति, वर्ण, धर्म या उनमें से किसी के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं कर सकता है। साथ ही अनुच्छेद 46 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लिए विशेष शिक्षा एवं आर्थिक हितों का प्रावधान करता है।

उक्त संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद आज की शिक्षा में शैक्षिक विषमतायें दिखती है। शैक्षिक समता के मार्ग में जो बाधाएँ वर्तमान में परिलक्षित हो रही है, वे कई प्रकार के हैं। कुछ बाधाएँ तो स्कूल/विभाग स्तर के हैं, तो कुछ माता–पिता/परिवार स्तर के, तो कुछ तो सामाजिक वातावरण की देन है। बाधाएँ कुछ इस प्रकार से हैः–

(i) गरीबीः–

गरीब बच्चों को उतने अवसर नहीं मिल पाते हैं, जितने कि एक आर्थिक समृद्ध परिवार के बच्चे को। हालाकि इन गरीब बच्चों को प्रोत्साहित किया जाता है, फिर भी समान स्तर तक लाने में बाधाएँ तो आती है। शैक्षिक अवसर में पिछड़े छात्र रोजगार के अवसर में भी पिछड़ जाते हें और इस तरह से गरीबी का दुष्चक्र शुरू हो जाता है।

(ii) लैंगिक भेदभावः–

वर्तमान सरकारें (केन्द्र, राज्य) इसे दूर करने का कई प्रयास कर रही है। इसके बावजूद पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में आज भी लड़कियों के साथ सामाजिक भेद–भाव व्याप्त है। शैक्षिक प्रगति पथ में यह एक प्रमुख बाधा है।

(iii) शारीरिक अक्षमताः–

दिव्यांग बच्चों के शिक्षा हेतु कई प्रयासों के बावजूद इन्हें मुख्यधारा मे लाना एक चुनौती है।

(iv) बालश्रमः–

आर्थिक उपार्जन हेतु अपने परिवार से सदस्यों को कार्य सहायता प्रदान करने में बच्चों की संलिप्तता से उनका स्कूलों से छीजन होता है एवं उनको उपलब्धि स्तर में गिरावट से शैक्षिक प्रगति पथ बाधित होता है।

(v) निजी एवं सरकारी शिक्षण संस्थानों के मानकों में दिखता अन्तरः–

सरकारी और निजी विद्यालयों के सुविधा मानकों में भारी असमानता दिखती है। जहाँ एक ओर पूरी सुविधा है, वही दूसरी ओर सामंजन वाली व्यवस्था है। इतना ही नहीं निजी संस्थानों को प्राथमिकता देना शुरू कर दिया है। यह उन संस्थानों के शिक्षण शुल्क से निर्धारित होता है। इस असमानता से गरीब व पिछड़े पृष्ठभूमि के छात्रों को अवसर की वह समता प्राप्त नहीं हो पाती है।

आधारभूत संरचना का अन्तर तो ऐसा है कि आम लोगों का आकर्षण निजी संस्थानों की ओर ही रहता है। जहाँ एक ओर निजी विद्यालयों में खेल–कूद, तकनीकी नवाचार (ICT,कम्प्यूटर शिक्षा, विज्ञान प्रयोग, डिजीटल प्रयोगशाला, ऑन लाइन शिक्षण व आकलन आदि) को बढ़ावा दिया जा रहा है, वही सरकारी स्कूलों/संस्थानों में इसकी पर्याप्त उपलब्धता नहीं है। हालाँकि इस पर भी सरकारों के प्रयास जारी है, परन्तु इसमें कुछ और समय लगने की उम्मीद है।

(vi) ग्रामीण बनाम शहरी विद्यालय भेद के रूप में बाधाः–

ग्रामीण एवं शहरी विकास के स्तरों में अन्तर स्पष्ट दिखता है। भारत एवं बिहार राज्य में भी देखा गया है कि महत्वपूर्ण विकास पहल शहरों में होती है, जो महानगरीय/नगरीय क्षेत्र में एकदम नई, अत्याधुनिक शैक्षणिक सुविधाओं की स्थापना को प्रोत्साहित करती है। शहरी शिक्षण संस्थानों में बेहतर साज–सज्जा, बेहतर सुविधाएं, पेयजल, शौचालय स्वच्छता, खेल–कूद सुविधा

पर्याप्त दिखती है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। यहाँ तक कि इन क्षेत्रों में पदस्थापित शिक्षक भी शहरों में पदस्थापन को लेकर प्रयासरत रहते हैं। फलतः असमान शैक्षिक उपलब्धि एवं शैक्षिक भेद परिलक्षित होता है।
उक्त सारी वाध्यताओं को दूर करते हुए शैक्षिक समता को प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि सरकारें प्राथमिकता सुनिश्चत कर इसे दूर करने का प्रयास कर भी रही है।

4.सामाजिक न्याय की अवधारणा

आईये पहले हम न्याय को जानते हैं। यह (Justice) /न्याय शब्द लैटिन भाषा के **jus** शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है– बाँधना या जोड़ना। इस प्रकार न्याय से तात्पर्य उस सामाजिक व्यवस्था से है जिसमें व्यक्ति, समुदाय तथा समूह एक सूत्र में बँधे होते हैं। किसी व्यवस्था को बनाए रखना ही न्याय है, क्योंकि कोई भी व्यवस्था किन्ही तत्वों के एक दूसरे के साथ जोड़ने के बाद ही बनती है।
जे. एस. मिल के अनुसार :–
''न्याय उन नैतिक नियमों का नाम है जो मानव–कल्याण की धरणाओं से संबंधित है तथा इसलिए जीवन के पथ–प्रदर्शन के लिए किसी भी नियम से अधिक महत्वपूर्ण है।''
रफल के शब्दों में :–
''न्याय उस व्यवस्था का नाम है जिसके द्वारा व्यक्तिगत अधिकार की रक्षा होती है और समाज की मर्यादा भी बनी रहती है।''
न्याय के विभिन्न आयाम इस तरह से होते हैं–

(a) नैतिक न्याय
(b) कानूनी न्याय
(c) राजनीतिक न्याय
(d) आर्थिक न्याय
(e) सामाजिक न्याय

भारत एक लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य है जिसका मूल लक्ष्य भी 'सामाजिक न्याय' के साथ विकास करने का है। सामाजिक न्याय से आशय एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना है जिसमें सामाजिक–आर्थिक विषमतायें न्यूनतम हो, समावेशी समाज हो और संसाधनों का वितरण सर्वमान्य स्वीकृति के आधार पर हो।
सामाजिक न्याय का उद्देश्य राज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक समता उपलब्ध कराना है। समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याण हेतु व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आजादी आवश्यक है। भारत एक कल्याणकारी राज्य है और यहाँ सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य लैंगिक, जातिगत, नस्लीय एवं आर्थिक भेदभाव के बिना सभी नागरिकों की मूलभूत अधिकारों तक समान पहुँच सुनिश्चत करना है।
भारतीय राज व्यवस्था में उदारवादी राजनीति लोकतन्त्र के साथ–साथ समाजवादी आदर्शों को भी अपनाया गया है और इसे ध्यान में रखते हुए ही संविधान की प्रस्तावना में 'सामाजिक' आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय' का उल्लेख किया गया है।
भारत के संविधान में संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से संविधान के भाग–III में मौलिक अधिकारों के रूप में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को भाग IV में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत सामाजिक न्याय को सुनिश्चत किया है।

'सामाजिक न्याय' शब्द को कठोर प्रतियोगिता के विरूद्व कमजोर, बूढ़े, गरीबों, महिलाओं, बच्चों, दिव्याँगों और अन्य वंचितों को राज्य द्वारा संरक्षण के अधिकार के रूप में परिभाषित समाज को 'सर्व समावेशी समाज' के रूप में परिवर्तन में एक मार्गदर्शक का कार्य करता हे।

वर्तमान भारतीय समाज ''सामाजिक न्याय'' (Social Justice) की भावना पर आधारित है। प्राचीन भारतीय समाज में वर्ग भेद होने के कारण समाज में असमानता आ गई थी। ऊंच–नीच की भावना फैल गई थी। समाज में एक वर्ग दलित एवं शोषित वर्ग के रूप में बन गया था। उन्हें सामाजिक न्याय मिलना असंभव हो गया था। समाज का उच्च वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त था। अन्य वर्ग उपेक्षित रह गए थे। अस्तु संविधान में सामाजिक न्याय की व्यवस्था की गई है। सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था में वर्ग, जाति, वंश, लिंग, अन्य स्थान आदि का भेद नहीं होता है। किसी व्यवस्था की यह प्रवृत्ति ही समावेशीकरण कहलाती है। जिसमें विकास की मुख्यधारा से सभी वर्गों समुदायों व व्यक्तियों को जोड़े जाने की व्यवस्था की जाती है।

सामाजिक न्याय की माँग रहती है कि समाज के सुविधाहीन वर्गों को अपनी सामाजिक–आर्थिक असमर्थता पर काबू पाते हुए अपने जीवन–स्तर में सुधार करने के योग्य बनाया जाए। गरीबी स्तर से नीचे जीवन जी रहे सुविधावंचित वर्गों, विशेष रूप से निर्धन के बच्चों, महिलाओं और निःशक्त व्यक्तियों की सहायता की जाए और इस प्रकार शोषण विहीन समाज की स्थापना की जाए।

सामाजिक न्याय का आदर्श एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित एवं विकसित करके लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने की परिकल्पना करता है।

''न्यायपूर्ण समाज वह है, जिसमें परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर एक करूणा से भरे समाज का निर्माण करे''।

सामाजिक न्याय की अवधारणा में एक व्यक्ति के नागरिक अधिकार तो होते ही है, साथ ही सामाजिक समरसता/समानता के अर्थ भी शामिल रहते हैं। ये निर्धनता, निरक्षरता, छुआछूत, स्त्री–पुरूष विभेद, निम्न जीवन स्तर जैसे संवेदनशील मुद्दों को इंगित करता है। मुख्य बात यह होती है कि नागरिक–नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति में कोई भेद न हो। सभी को विकास के बराबर अवसर उपलब्ध हो। संसार की सभी आधुनिक न्याय प्रणाली प्राकृतिक न्याय की कसौटी पर खरा उतरने की कोशिश करता है, अंतिम लक्ष्य होता है कि समाज के सबसे कमजोर तबके का हित सुरक्षित हो सके, अन्याय न हो।

सामाजिक न्याय सिद्धान्त :–

सामाजिक न्याय निम्न प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित है।

(i) संसाधनों तक समान पहुँच :–

कोई समाज अपने नागरिकों के लिए भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन जैसी सेवाओं को पेश करता है। पर इन तक असमान पहुँच के कारण हताशा होती है। उदाहरणार्थ– उच्च, उच्च–मध्यम वर्ग के धनी परिवारों के व्यक्ति अच्छे संस्थानों में शिक्षा हासिल कर, उच्च आय वाले रोजगार हासिल करने में आगे रहते हैं, जबकि निम्न वर्ग के लोगो में निराशा हाथ लगती है।

(ii) समता का सिद्वान्त :–

यह हरेक नागरिकों को एक जैसी परिस्थितियाँ प्रदान करने पर जोर देता है।

(iii) भागीदारी का सिद्धान्त :–

भागीदारी का अभिप्राय यहाँ समाज में हर किसी को अपनी राय और चिंताओं को बोलने के लिए आवाज उठाने के मौके दिये जाने से है। किसी भी निर्णय लेने में उनकी भूमिका होती है, जो उनके आजीविका को प्रभावित करती है।

सामाजिक अन्याय तब होता है जब एक बड़े समूह की इच्छाओं के विरूद्ध छोटा समूह अपने हित अनुरूप निर्णय ले लेता है।

(iv) विविधता का सिद्धान्त :–

विविधताओं को जानना, सांस्कृतिक अन्तरों को जानते हुए नीति बनाना, निर्णय लेना इसके अन्तर्गत आता है।

(v) मानवाधिकार :–

मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय का एक दूसरे से जुड़े बिना कोई अस्तित्व ही नही है। मानवाधिकार उन समाजों के लिए मौलिक है जो व्यक्तियों और सरकारों, संगठनों और व्यक्तियों के नागरिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और कानूनी अधिकारों का सम्मान करते हैं। अगर वे इन अधिकारों को बनाए रखने में विफल रहते है, तो उन्हें जिम्मेवार ठहराया जाना चाहिए।

उक्त सभी आयाम सामाजिक न्याय के अन्तर्गत आते हैं।

सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा

भारतीय संविधान में शैक्षिक अवसरों के समानता की चर्चा की गई है, जिसकी मुख्य वजह यह है कि शिक्षा के विकास द्वारा हम विभिन्न वर्गों के बीच मौजूदा अंतराल को दूर करना चाहते हैं। सामाजिक न्याय की अन्तर्गत यह जरूरी है कि ऐसे विभेद नहीं हो। तो कहना होगा कि शिक्षा ही वह औजार है, जो हमें सामाजिक न्याय दिला सकने मे सबसे महत्वपूर्ण है।

- समाज में सार्वभौमिक, अनिवार्य, निःशुल्क से समाज की गतिशीलता प्रभावित होती है, क्योंकि शिक्षा व्यक्ति में जागरूकता लाती है। यह आगे की शिक्षा/उच्च शिक्षा रोजगार या जीवकोपार्जन से अर्थ उपार्जन में बहुत मदद करती है, जिससे व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार होता जाता है, जिससे सामाजिक न्याय की धारणा को बल मिलता है।
- प्रारंभिक शिक्षा से उत्पन्न रूझान से व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार पाठ्यक्रम चयन कर अपना स्तर बढ़ा सकते हैं। इसके लिए सरकारें विविधता भरे पाठ्यक्रम को प्रोन्नत करती रहती है।
- शिक्षा से सामाजिक सशक्तिकरण को बल मिलता है, इसके परिणामस्वरूप गरीबों, शोषित वर्गो में जागृति आती है एवं भ्रष्टाचार कम होते हैं।
- शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण लाकर व्यक्ति के समग्र विकास में सहायक होती है। इससे व्यक्ति के नैतिक, चारित्रिक, राष्ट्रीय मूल्यों का विकास, समाज सेवा भाव, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता, सर्वधर्म समभाव जैसे मूल्यों के विकास में सहायता मिलती है और सामाजिक सौहार्द कायम कर सामाजिक न्याय को प्रोन्नत करने मे मदद भी।
- शिक्षा में व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग होता है और इसके परिणाम स्वरूप एक सजग समाज बनता है, ये कि सामाजिक न्याय हेतु जरूरी होता है।

  जैसे– बालिका शिक्षा से महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागृति लाना, पुरूष वर्चस्व को कम कर पाना।

  - शोशण के विरूद्व आवाज लगाना।
  - अपने कर्तव्यों को करना एवं अधिकारों के अतिक्रमण को रोकना।
  - भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया जाना।

- राजनीतिक चेतना आना। आदि।

उक्त सबों से साामाजिक न्याय की धारणा को बल मिलता है।

- अच्छी शिक्षा के आधार पर सरकार के प्रयासों से सुविधा वंचितों को उन्नयन एवं सशक्तिकरण संभव हो पा रहा है, जो कि सामाजिक न्याय दिलाने में अत्यन्त ही प्रभावी कदम है। सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग जिसे सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को सशक्त करने का अधिकार है के द्वारा अनूसूचित जाति, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग, ट्रांसजेण्डर व्यक्तियों, वरिष्ठ नागरिकों को सशक्त करने का अधिकार प्राप्त है, ने अपने कार्यक्रमों और योजनाओं के माध्यम से एक समावेशी समाज बनाने का प्रयास करता रहा है। प्रारंभिक स्तर की शिक्षा, माध्यमिक/उच्च माध्यमिक/उच्च शिक्षा के आधार पर विभिन्न तरह की छात्रवृत्तियाँ प्रदान कर, कोंचिंग प्रदान कर, कौशल प्रशिक्षण देकर इन्हें उच्च प्रतिष्ठित संस्थानों या रोजगारों के प्रति जागरूक बनाया जा रहा है। सामाजिक न्याय अन्तर्गत यह एक अच्छा कदम है।
- सामाजिक न्याय के अन्तर्गत समानता/समता/निष्पक्षता/अवसरों की समान उपलब्धता/समावेशी विकास का लक्ष्य मूलभूत शर्त होता है। हम समता मूलक समाज की ओर तभी बढ़ सकते हैं जब बेहतर समावेशीकरण हो। शिक्षा इसमें आवश्यक पहल करती है। यह अच्छी शिक्षा से ही संभव है कि लोग एक दूसरे के विकास के लिए सोचे। आज हम देखते हैं कि समाज का कोई वर्ग विकास की मुख्यधारा से बहुत दूर है, तो उसके लिए विशेष प्रावधान की आवश्यकता होती है। अतः यदि सामाजिक रूप से पिछड़े, अति पिछड़े तबके के भेदभाव को दूर नहीं किया जाता है तो समरस समाज के स्थापना में यह एक बड़ा अवरोधक होगा। अतः अच्छी शिक्षा के द्वारा एक समरस समाज की स्थापना एवं सामाजिक न्याय में मदद मिल सकेगी।
- इस प्रकार से सामाजिक न्याय की अवधारणा पर काम करने/करवाने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि अच्छी शिक्षा ही सामाजिक न्याय की अवधारणा का बेहतर ढंग से क्रियान्वयन करा सकती है।

सामाजिक न्याय में बाधक कारक

आज समाज में व्याप्त विषमताओं का विश्लेषण करें तो पायेगें कि ऐसे कई कारक है जो सामाजिक न्याय के सुनिश्चितता में बाधक है। इन बाधक कारकों का कुप्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है।

आईये इन प्रमुख कारकों पर विचार करते हैं, जो निम्न है :–

(i) जाति व्यवस्था :–

यह ऐसी कु–व्यवस्था है जिसमें लोगों ने अपने–अपने जाति व्यवस्था/मानदण्ड से दूसरों को निम्नतर आंकना शुरू कर दिया है। इससे विरोधी समूहों में बँटी सामाजिक व्यवस्था स्पष्ट रूप से दिखती है, फलतः सामाजिक अन्याय उजागर होता है।

(ii) परस्पर विरोधी सामाजिक मनोवृत्तियाँ :–

समाज के समपन्न वर्ग द्वारा श्रमिकों/मजदूरों अपने से नीचे स्तर के लोगों का शोषण, सार्वजनिक सम्पति का दुरूपयोग करना आदि ऐसे सामाजिक मनोवृत्तियाँ है, जिससे सामाजिक अन्याय बढ़ता है और असंतुष्टत–समूहों द्वारा विद्रोह होता है।

(iii) अत्यधिक जनसंख्या :–

ज्यादा आबादी और सीमित संसाधन की वजह से स्वार्थ की भावना पनपती है, जिससे सामाजिक न्याय में बाधा आती है।

(iv) सांप्रदायिक संघर्ष :–

आज का समाज विभिन्न धर्म, भाषा, जाति–प्रजाति, विभिन्न मत–मतान्तरों के आधार पर बहुत सारे छोटे एवं बड़े वर्गों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक वर्ग एक दूसरे का विरोध करता है तथा अपने सदस्यों के हितों के संरक्षण के अपना सर्वोच्च लक्ष्य मानता है। इसका परिणाम यह दिखता है कि लोगों में परस्पर प्रेम, उदारता, बन्धुत्व जैसे गुणों का अभाव हो गया है। यह सभी दशाएँ सामाजिक न्याय में बाधक है।

(v) राजनैतिक दलबन्दी :–

आज बहुत से राजनीतिक दल जब क्षेत्र आधार पर, जाति विशेष आधार पर, भाषा आधार पर, नीति निर्माण में, सुविधा विस्तार में पक्षपात करते दिखते हैं तो समाज का संपूर्ण संतुलन बिगड़ जाता है तथा सामाजिक न्याय को धक्का लगता है।

(vi) सामाजिक कुरीतियाँ :–

कुरीतियाँ सामाजिक परिवर्तन के बाधक तत्व है, इससे विकास रूकता है, फलस्वरूप असंतोष गहराता है एवं सामाजिक अन्याय बढ़ता है।

(vii) ग्रामीण सामुदायिक जीवन का खराब होना :–

औद्योगिकीकरण, पश्चिमीकरण के कारण शहरीकरण को मिलते बढ़ावे से गाँवों की परंपरागत संरचना लगभग टूट सी गई है, इसके व्यवहारों पर नियंत्रण रखने का कोई प्रभावी साधन नहीं दिखता है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण–शहरी के रूप में विभेद बढ़ा है एवं इससे सामुदायिक जीवन का ह्यस हुआ है।

उक्त सभी कुछ प्रमुख बाधक तत्व है जिससे सामाजिक न्याय में बाधा आती है। इससे सामाजिक अन्याय बढ़ता है और परिणामस्वरूप अपराध में वृद्धि, निर्धनता, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलने लगता है, साथ ही भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। बेरोजगारी, तनाव, निराशा, असंतोष, आन्दोलनकारी, प्रवृत्तियों के साथ–साथ जातिवाद, भाई–भतीजावाद के रूप में कुप्रवृत्तियाँ बढ़ती चली जाती है।

अच्छी शिक्षा व्यवस्था से ही इन बाधाओं के मुक्ति मिल सकती है।

सरांशतः एक लोकतांत्रिक राज्य समतामूलक समाज की स्थापना के लिए अपने सभी नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार करता है। अर्थात राज्य की दृष्टि में सभी नागरिक समान है। किसी भी नागरिक के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार न हो, उसे समान रूप से विकास के अवसर प्राप्त हो ताकि प्रत्येक वर्ग, समुदाय, धर्म, संप्रदाय, लिंग, जाति, क्षेत्र आदि से संबंध रखने वाले नागरिकों को सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके इसकी व्यवस्था करना राज्य का दायित्व है। सामाजिक न्याय राज्य द्वारा बनाई जाने वाली नीतियों के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। सामाजिक न्याय का संबंध सिर्फ किसी विधिक मामले में न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार पर प्राप्त न्याय मात्र से ही नहीं है। वरन उससे कहीं आगे एक व्यक्ति या समुदाय चाहे वह हाशिए पर ही क्यों ना जी रहा हो के मूलभूत अधिकारों की संरक्षा, उसके मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उसे सम्मान पूर्वक जीवन जीने की दशाओं को विकसित करने से भी है। सामाजिक न्याय संसाधनों पर सबके हक को पोषित करता है तथा उन संसाधनों का सभी के लिए सदुपयोग कर सबके विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने का पक्षधर है। अतः सामाजिक न्याय का स्थान राज्य द्वारा निर्मित–नीतियों से भी ऊंचा है। चूंकि नीति सामाजिक न्याय प्रदान करने की नियत से ही निर्मित होती है अतः नीति व न्याय के द्वंद में नयाय का पक्ष ही सबल प्रतीत होता है। इसी कारण न्यायालयों में न्याय दिए जाने की व्यवस्था है ना कि नीति अनुरूप निर्णय दिए जाने की। अतः कोई नीति सामाजिक न्याय की प्राप्ति में बाधक है या साधक, इस आशय से सदा उसका निरीक्षण व परीक्षण होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति सभी का

अधिकार है तथा समाज व विशिष्ट रूप में राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि सभी को सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो यह सुनिश्चत करे। सभी को सामाजिक न्याय की प्राप्ति तभी संभव है जब राज्य एक समतामूलक समाज की दिशा में आगे बढ़े। और एक राज्य, समतामूलक समाज की दिशा में तभी आगे बढ़ सकता है। जब समाज की मुख्यधारा में व विकास की विभिन्न व्यवस्थाओं में सभी का समावेश हो। अर्थात समावेशीकरण के माध्यम से ही एक समतामूलक समाज की दिशा प्रशस्त होगी तथा सभी को सही मायने में सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो पाए इस दिशा में हम आगे बढ़ सकेंगे। इस पूरी प्रक्रिया के लिए यह पूर्व आवश्यक है कि राज्य सभी के प्रति समानता का व्यवहार करे। इस समानता के व्यवहार का लक्ष्य समता की स्थिति की प्राप्ति है। अतः यदि पिछड़े, अति पिछड़े तबके के लिए विशेष व्यवस्था नहीं किया जाए तो वह गैर बराबरी को मिटाकर समरस समाज की स्थापना में एक बड़ा अवरोधक होगा। अतः हमारे संविधान में इस आशय हेतु विशेष प्रावधान किए गए हैं। राज्य द्वारा संपूर्ण समाज के समरस विकास व समता की स्थिति की प्राप्ति के लक्ष्य से किया गया यह विभेद( ) विधेयात्मक या धनात्मक विभेद (Positive Discrimination) कहलाता है।

एक तरफ जहां समानता के व्यवहार के आधार पर समावेशीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक न्याय प्रदान करने हेतु एक समतामूलक समाज की स्थापना की ओर निरंतर अग्रसर हो रहा है। वहीं कुछ वर्चस्ववादी ताकतों, सत्ता के विविध केंद्रों व दबाव समूहों द्वारा इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से अवरोध भी पैदा किया जाता रहा है। क्षेत्र, भाषा, जाति, वर्ग, लिंग, संप्रदाय, रहन–सहन, खान–पान आदि तमाम आधारों पर इन विभेदकारी ताकतों द्वारा समाज में एक खाई पैदा की जा रही है और एक समतामूलक समाज की स्थापना में निरंतर अवरोध पैदा किया जा रहा है। यहां हमें यह समझ लेना होगा कि गैरबराबरी को पोषित करने वाली कोई भी व्यवस्था एक समरस समाज के विकास के लिए घातक है। भारत जैसे लोकतंत्र के नागरिक होने के नाते हमसे संविधान के अनुरूप आचरण ही अपेक्षित है। शिक्षा उपर्युक्त अवरोधों को दूर करने हेतु सर्वाधिक प्रबल साधन है। अतः शिक्षा (वास्तविक शिक्षा ना कि लिखने पढ़ने का ज्ञान) सभी जनों तक पहुंच पाए ऐसी व्यवस्था अत्यंत ही आवश्यक है।

हमने इस इकाई के अन्तर्गत समुदाय व व्यक्ति की विविधता को जाना। हमने यह भी जाना कि समाज में विविधता के कारण असमानता का व्यवहार किस प्रकार होता हे तथा उससे वंचना का भाव कैसे जगता है। सत्ता तथा वर्चस्ववादी ताकतों के विविध रूपों को जाना साथ ही प्रतिरोध के प्रमुख कारणां व स्वरूपों पर भी हमने विचार किया। एक आदर्श स्थिति के रूप में समता व उसकी प्राप्ति हेतु राज्य द्वारा किए गए समानता के व्यवहार को भी हमने समझा। धनात्मक विभेद की आवश्यकता पर भी विचार किया। हमने सामाजिक न्याय की प्राप्ति में समावेशीकरण की भूमिका को समझा तथा शिक्षा किस प्रकार सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सहायक है इस पर विचार किया। समग्रता में हमने विभिन्न सामाजिक मुद्दों के आलोक में शिक्षा के विविध पहलुओं पर विमर्श किया।

प्रश्न संग्रह

- समकालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की चुनौतियाँ क्या है ? व्याख्या करें।
- विविधता, असमानता तथा वंचना से आप क्या समझते है ? उदाहरण के साथ स्पष्ट करें।
- वंचना से आप क्या समझते है ? इनके प्रकारों का उल्लेख करें।

- समाज में सत्ता, वर्चस्व तथा प्रतिरोध की अवधारणा को स्पष्ट करें।
- सत्ता क्या है ? इनके विविध रूपों की चर्चा करें।
- "समता साध्य है और समानता साधन है" इस कथन को स्पष्ट करें।
- समाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करें। सामाजिक न्याय के लिये धनात्मक विभेद क्या है ?
- समाजिक न्याय की आवश्यकता क्यों है ? सामाजिक न्याय के अवरोधकों पर चर्चा करें।
- अन्तर स्पष्ट करें :–
  (i) विविधता एवं असमानता
  (ii) सत्ता एवं वर्चस्व
  (iii) वास्तविक वंचन एवं सापेक्षिक वंचन
  (iv) समता व समानता

ICT कार्यः–

- भारत का संविधान समानता के बारे में क्या कहता है? क्या आपको लगता है कि सभी लोगों को समान होना चाहिए? इसपर एक रिपोर्ट तैयार कर इसकी सॉफ्ट प्रति अपने शिक्षक को जमा करें।
- वंचना के कुछ उदाहरणों को संग्रहित करें। सरकार द्वारा हो रहे पहल पर एक रिपोर्ट तैयार करते हुए अपने साथी ई–मेल करें।

संदर्भ

1. J.C. Agrawal :- Develpment of Education
2. K .K Bhatia, and C.L Narang, (2001-2002), Philosophical and Sociological bases of Education, Tondon Publication, Ludhiana, India.
3. UGC released report "Higher education is India at a glance"
4. J.S. Rajput :- Indian Education in times of global change.
5. मदान, पूनमः गर्ग सुषमा (2015) भारत में शिक्षाः स्थिति, समस्यायें एवं मुद्दे, अग्रवाल पब्लिकेशन
6. नायक, जे०पी० (1972)–इक्वालिटि एण्ड क्वांटिटि : दि इलूसिव ट्रिंगल इन इंडिया एजुकेशन, नई दिल्लीः एलाईड

e- संदर्भ :–

http://www.teach for india.org
http://www.pratham.org
http://www.makeadiff.in
http//:www.cry.org
https://ncert.nic.in>khps104

इकाई–2

शिक्षा के समकालीन मुद्दे

प्रस्तुत इकाई में हम आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन पर विमर्श किया जाएगा एवं शिक्षा पर इसके प्रभावों की चर्चा होगी। सामाजिक परिवर्तन क्या है एवं शिक्षा पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, उसे अवगत होगें। साथ ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं उनके आवश्यक तत्वों की भी चर्चा की जायेगी। समान विद्यालय प्रणाली एवं उनके अवरोधक तत्वों पर भी विशेष चर्चा होगी। इस इकाई के अंतर्गत अभिवंचित वर्ग के शिक्षा के प्रावधानों पर भी विमर्श हो सकेगा। अभिवंचित वर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जातियों के बच्चों, सभी लड़कियों एवं अल्पसंख्यकों के बच्चों के लिए शिक्षा के नीति, कार्यक्रम एवं योजनाओं से अवगत कराया जाएगा।

आइये क्रमवार उक्त विषयवस्तु को विस्तार पूर्वक जानने के कोशिश करते हैं।

उद्देश्यः–

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आपः–

- आधुनिकीकरण का अर्थ जानेंगे
- वैश्वीकरण का अर्थ को जानेंगे
- निजीकरण की अवधारणा जान सकेंगे
- शिक्षा को निजीकरण एवं उदारवादी दृष्टिकोन के परिप्रेक्ष में समझ पाएँगे
- अभिवंचित वर्गों के बच्चों के लिए शिक्षायी प्रावधानों से अवगत हो पाएँगे
- समान स्कूल प्रणाली एवं इसके लिए बनें आयोग की महत्वपूर्ण अनुशंसाओं को जानेंगे
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के आवश्यक तत्वों पर अपनी जानकारी बढ़ा पाएँगे

1. आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा

वर्तमान विश्व विज्ञान और तकनीकी प्रगति के कारण निरंतर परिवर्तनशील है। औद्योगिकीकरण के बाद आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण ने सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्र कर दिया। सामाजिक परिवर्तन एक शाश्वत प्रक्रिया है लेकिन वर्तमान समय में संचार क्रांति और ज्ञान के विस्फोट ने सामाजिक परिवर्तन की दर में काफी गति प्रदान कर दी है। आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और सामाजिक परिवर्तन एक दूसरे से संबंद्ध है। इन परिवर्तनों ने व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक परिस्थितियों एवं संबंधों का परिवर्तन लाने का कार्य किया है। आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और सामाजिक परिवर्तन का शिक्षा पर अपना व्यापक प्रभाव रहा है।

आधुनिकीकरण का अर्थ समाज के प्रत्येक स्तर पर गतिशीलता जिसमें विज्ञान एवं तकनीक पर आधारित समाज के ढ़ांचे में परिवर्तन है। यह वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत उद्योग और शहरीकरण को बढ़ावा देने का कार्य किया जाता है। इसमें तकनीकी विकास पर भी बल दिया जाता है। आधुनिकीकरण में नगरीकरण में वृद्धि, एकल परिवार, समानता, स्वतंत्रता तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। इस प्रक्रिया में प्राचीन प्रथाओं, रूढ़ियों तथा मूल्यों का विरोध होता है तथा नये विचारों को स्वीकार किया जाता है जिससे सामाजिक सरंचना में परिवर्तन आता है। आधुनिकीकरण सिर्फ भौतिक संस्कृति में परिवर्तन नहीं है बल्कि आदर्श, मूल्य, विश्वास एवं जीवन शैली में भी परिवर्तन होता है।

आधुनिकीकरण से समाज में परिवर्तन होता है। शिक्षा तथा आधुनिकता परस्पर सह संबंधित है। जिस प्रकार शिक्षा आधुनिकीकरण प्राप्त करने में सहायक है, उसी प्रकार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में एक बेहतर शिक्षा प्रणाली का विकास होता है जिसमें व्यक्ति विविध क्षेत्रों तथा सामाजिक, आर्थिक,

राजनैतिक, तकनीकी आदि क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। आधुनिकीकरण से शिक्षा के उद्येश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, शिक्षक की भूमिकाओं में बदलाव होता है। शिक्षा में तकनीक का प्रयोग बढ़ता है। इससे लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करने के साथ–साथ तकनीकी विकास होता है।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का अर्थ है, राष्ट्रीय, घरेलू अर्थव्यवस्थाओं का विश्व के अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ना। इस स्थिति में वस्तुओं, सेवाओं कच्चा माल, पूंजी, प्रौद्योगिकी, उत्पादन के साधनों आदि का बिना किसी प्रतिबंध के स्वतंत्र रूप से विश्व के देशों में प्रवाह होता है। इसके परिणामस्वरूप कोई भी औद्योगिक इकाई या सेवा क्षेत्र के लिए कोई भी संरक्षिता घरेलू बाजार नहीं रह जाता है बल्कि उसे बाजार के लिए विश्व औद्योगिक इकाईयों के साथ प्रतियोगिता करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में तकनीकी संसाधनों से विकसित क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध होगी यह घरेलू अद्योग धंधों को नष्ट करके बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बढ़ावा देती है। इससे अमीरी और गरीबी की खाई और अधिक बढ़ी है। यह वह आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें समृद्ध और अधिक समृद्ध होंगे और गरीब और अधिक गरीब।

वैश्वीकरण के मूल में सूचना तकनीक का विस्फोट और जैव तकनीक का तेजी से प्रसार छिपा है। इसके आगमन से भोतिकता की ओर रूझान तेजी से बढ़ा है ऋण आधारित अर्थव्यवस्था को गति मिली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमायें दूत संप्रेषण और परिवहण के साधनों के कारण सिकुड़ गई है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पर्यावरणीय पक्ष को प्रभावित कर रही है। जिसका समारत्मक और नकारत्मक दोनों प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में संख्यात्मक वृद्धि हुई है। इसके कारण शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम में काफी बदलाव आया है। उच्च स्तर के शिक्षण संस्थानों की स्थापना हो रही है। शिक्षा के क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा का विकास होने के साथ शिक्षक की भूमिकाओं में बदलाव हुआ है। वैश्वीकरण के कारण शिक्षा का व्यापार तेजी से बढ़ा है। साथ ही साथ परंपरागत शिक्षा और मूल्यों को गहरा आघात लगा है। भारत में संस्कृत भाषा की उपेक्षा हुई है।

वैश्वीकरण विश्व को एक बाजार के रूप में देख रहा है, जबकि विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की आवश्यकता है। इसके कारण स्थानीय संस्कृति और विरासत की लगातार अपेक्षा हो रही है।

सामाजिक परिवर्तन

समाज निरंतर परिवर्तनशील है। समाज में विद्यमान आदर्श, आवश्यकतायें एवं उसके कर्त्तव्य, मूल्य समय और जरूरत के अनुसार बदलते रहते हैं। समाज जीवित व्यक्तियों का समूह है जो विचारों मूल्यों व गतिविधियों में हमेशा गतिशील रहता है। यह गतिशीलता परिवर्तन का कारण बनती है। सामाजिक परिवर्तन में निम्नांकित परिवर्तनों को स्थान मिलता है।

(क) सामाजिक संरचना में परिवर्तन
(ख) सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन
(ग) सामाजिक संस्थानों में परिवर्तन
(घ) समाज के सदस्यों के जीवन में परिवर्तन

समाजिक परिवर्तन समाज में रह रहे लोगों के विचारों, मूल्यों अभिवृत्तियों, मान्यताओं तथा प्रकृति में व्यापक स्तर पर परिवर्तन है जब व्यक्तियों में परिवर्तन होता है तो सामाज स्वतः परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि यह समाज की कार्यविधि को प्रभावित करता है। सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संरचना तथा कार्यशैली में परिवर्तन को समाहित करता है।

शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित करता है। जब शिक्षा द्वारा सामूहिक विचार परिवर्तित होते हैं तब सामाजिक परिवर्तन होता है। शिक्षा ने व्यक्तियों की स्थिति, दृष्टिकोण, रहन–सहन, खान–पान,

रीति–रिवाजों पर असर डाला और इससे समाज का स्वरूप बदला। शिक्षा अनसंख्या को संसाधन के रूप में बदलने और इसके वृद्धि पर नियंत्रण का प्रयास करती है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करती है।

2.शिक्षा में गुणवत्ता का सवाल

गुणवत्ता शिक्षा का आशय उन गुणों का समावेश करना है जिससे छात्रों में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति भली भांति हो सके।
जब किसी कार्य में उस कार्य से संबंधित सभी गुणों का (व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक) समावेश होता है तो उसे कार्य की गुणवत्ता के रूप में देखा व समझा जाता है यही पहलू शिक्षा में भी होता है। हम शिक्षा में गुणवत्ता की बात करते हैं तो हम ऐसी शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण मानेंगे जो छात्रों को उस शिक्षा का लाभ पहुंचाए।
गुणवत्ता शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा से है जो अपने निर्माण के उद्देश्यों का भली भांति निर्वहन करें। शिक्षा में प्रायः उसी शिक्षा का समावेश होता है जो शिक्षा शिक्षण–अधिगम में छात्रों की रूचि एवं क्षमताओं को समझे और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करें और छात्रों को जीविकोपार्जन योग्य बनाये।
सबके लिए शिक्षा (ग्लोबल मॉनीटरिंग रिपोर्ट 2005 के अनुसार) गुणवत्ता युक्त शिक्षा हेतु दो सैद्धांतिक विशेषताओं का होना आवश्यक है–
पहला– सीखने वाले का संज्ञानात्मक विकास को लक्ष्य बनाना हर शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य होना चाहिए और दूसरा– सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि शिक्षा की भूमिका का निर्धारण उत्तरदायित्व पूर्ण नागरिकों में मूल्यों व अभिवृद्धि का विकास व उसके सृजनात्मक एवं संवेगात्मक विकास पर बल देने के संदर्भ में होना चाहिए। गुणवत्ता यह निर्धारित करती है कि बच्चे कितना और कितनी अच्छी तरह से अपने व्यक्तित्व व सामाजिक विकास हेतु सीख पाते हैं। विभिन्न शिक्षा सम्मेलन में भी शिक्षण शास्त्रीय पद्धति के विकास पर बल दिया गया है क्योंकि शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया द्वारा होता है। पाठ्यक्रम को जीवन बनाया जा सकता है, जिससे कक्षा में क्या पढ़ाया गया है। इसके गुणवत्ता का निर्धारण होता है।
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु कुछ तत्वों की आवश्यकता है 6A वे आवश्यक तत्व निम्न है–

1. आकलन (Assessment) :– शिक्षा व्यवस्था का निरंतर आंकलन करने से शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर सुधारने में मदद मिलती है
2. स्वायत्तता (Autonomy) :– स्कूलों में सुधार हेतु गुणवत्ता सुधार आवश्यक है। इसका तात्पर्य विद्यालयों को संसाधनों के प्रयोग हेतु स्वायत्तता देने से है ताकि वे अपने विद्यालय को प्रतिद्वन्द्रितापूर्ण तरीके से सुधार सकें।
3. उत्तरदायित्व (Accountability) :– स्वायत्तता व उत्तरदायित्व एक दूसरे से संबंधित है। जबाबदेही कार्य व शैक्षिक उपलब्धि पर सकारत्मक प्रभाव डालती है। इसके अन्तर्गत अच्छी शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व अधिकारियों, पर्यवेक्षक, प्रधानाघ्यापक, शिक्षक व छात्रों की सामुदायिक सहभागिता पर निर्भर कर दिया जाता है तथा उन्हें संसाधन के उपयोग व विद्यालयी क्रियान्वयन के उत्तरदायित्व सौंप दिये जाते हैं। इस प्रकार जबाबदेही विद्यालय के प्रधानाचार्य, अभिभावक, पर्यवेक्षकों व सीनीय अधिकारियों के प्रति भी अपने विद्यालय में अधिगम वातावरण में सुधार करती है। फलतः शिक्षा में गुणवत्ता आती है।
4. शिक्षक पर ध्यान (Attention To Teacher) :– एक बेहतर शिक्षक अधिगम प्रक्रिया में मूल्यों को भी शामिल कर लेता है। कौशल, विषय ज्ञान और कार्य के प्रति समर्पण गुणवत्ता सुधारने में पर्याप्त मदद करती है।
5. पूर्व बाल्यावस्था विकास पर ध्यान (Attention To Early Children Development) :– पूर्व बाल्यावस्था विकास शैक्षिक सफलता को बढ़ाते है।
6. संस्कृति पर ध्यान (Attention To Culture) :– संस्कृति शिक्षा की गुणवत्ता का एक अहम हिस्सा है। वे विद्यालय जो छात्रों के अधिगम हेतु मातृभाषा का प्रयोग करते है वहाँ छात्रों की उपस्थिति और विकास बेहतर होती है।

हम कह सकते है कि गुणवत्तायुक्त शिक्षा का व्यवहारिक अर्थ बच्चों द्वारा बौद्धिक, भावात्मक एवं

मनोदैहिक क्षेत्र की विभिन्न दक्षताओं को अर्जित करना है। गुणवत्तायुक्त शिक्षा की रूपरेखा निम्नांकित क्षेत्रों विभाजित की जा सकती है। इन्हें गुणवत्ता के सूचक भी कहा जा सकता है।

1. भौतिक साधन **(Physical Resource)**
2. प्रक्रिया **(Process)**
3. मानव संसाधन **(Human Resource)**
4. विशय वस्तु **(Content)**
5. तकनीक **(Technology)**

शिक्षा में गुणवत्ता से संबंधित विभिन्न कारकों में गुणवत्ता

1. गुणवत्ता अधिगम कर्त्ता (Quality Learner)– गुणवत्ता अधिगमकर्त्ता से हमारा तात्पर्य बच्चों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक स्वास्थ्य से है।
2. गुणवत्तापूर्ण पाठ्यचर्या (Quality Learning Enviroment)– गुणवत्तापूर्ण अधिगम वातावरण से तात्पर्य विद्यालय में भौतिक मनोवैज्ञानिक तथा समस्त सुविधायें सम्मिलित है।
3. गुणवत्तापूर्ण पाठ्यचर्चा (Quality Curriculam)– विद्यालय में पढ़ाये जाने वाली विशय वस्तु ऐसी होनी चाहिए जिसकी समझ विद्यार्थियों को अपनी दिन–प्रतिदिन के जीवन से संबंधित समस्याओं को हल करने में मदद कर सके। पाठ्यचर्या निर्धारित शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्ति के साधन के रूप में निर्मित किया जाता है। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बालकों के सर्वांगीण विकास में मदद करें।
4. गुणवत्तापूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया (Quality Teaching Learning Process)– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का सुचारू और संतुलित क्रियान्वयन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए आवश्यक है।
5. गुणवत्ता परिणाम/उत्पाद (Quality Outcomes)– विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में शैक्षिक उपलब्धि ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षार्थियों का भाषायी ज्ञान एवं मूलभूत अंकगणितीय से क्रियाओं का ज्ञान ही आरम्भिक शिक्षा में गुणवत्ता का सूचक है।

शिक्षा में गुणवत्ता : चुनौतियाँ

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से हमारा अभिप्राय शिक्षा में बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता तथा प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से है। विगत दो दशकों में अधिकांश विद्यालयों में सशक्त बुनियादी ढाँचे का विकास किया गया। अनेक कोशिशों के बावजूद अभी भी बहुत सारे छात्र ऐसे हैं जो कक्षानुरूप निर्धारित दक्षता प्राप्त नहीं कर पाए है। प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्रों में तमाम प्रयासों के बावजूद गुणवत्ता शिक्षा एक चुनौती बनी हुई है। मुख्य चुनौतियां निम्न है–

(क) आधारभूत संरचना से सम्बन्धित चुनौतियां

1. विद्यालय भवन का अभाव
2. शौचालय का अभाव
3. पेयजल का अभाव
4. खेल मैदान एवं सामग्रियों का अभाव

(ख) शिक्षक संबंधित चुनौतियाँ

1. शिक्षक–छात्र अनुपात में कमी
2. बहुकक्षीय शिक्षण
3. शिक्षक गुणवत्ता की कमी
4. शिक्षार्थी संबंधी चुनौतियाँ

(ग) शिक्षार्थी संबंधी चुनौतियाँ

1. गरीबी
2. पारिवारीक दूषित वातावरण
3. दण्ड का डर

(घ) पाठ्यचर्या संबंधी चुनौतियां

1. बोझिल पाठ्यक्रम
2. गतिविधि का अभाव
3. जीवन से जुड़ाव का नहीं होना

4. जीविकोपार्जन का अभाव

शिक्षा में गुणवत्ता लाने हेतु प्रयास

सर्व शिक्षा अभियान के तहत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चत करने के उद्देश्य से प्रत्येक विद्यालय में सशक्त आधारभूत संरचना विकसित किया गया है लेकिन बच्चे वर्गानुसार दक्षता से बहुत पीछे है जिसके कारण सरकार के द्वारा अधिगम वृद्धि कार्यक्रम की शुरूआत की इस कार्यक्रम को और प्रभावी एवं उत्साहवर्धक बनाने के उद्देश्य से बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री द्वारा 5 सितम्बर 2011 को गुणवत्ता मिशन के तौर पर समझे सीखे कार्यक्रम का पूरे बिहार में एक साथ शुभारंभ किया गया, जिसका लक्ष्य बच्चों द्वारा गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करना है। इसके अंतर्गत 20 सूचक विद्यालय में लागू करने का दायित्व तय किया गया।
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए संकूल संसाधन केन्द्र स्तर, प्रखंड संसाधन केन्द्र स्तर, जिला स्तर पर डायर तथा राज्य स्तर पर राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रषिक्षण परिशद् तथा बिहार शिक्षा परियोजना परिशद् लगातार प्रयास किया जा रहा है।

3.सार्वजनिक शिक्षा बनाम निजी शिक्षा (Public Education Vs Private Education)

उदारीकरण और वैश्वीकरण के युग में प्रतिस्पर्धा आवश्यक हो गया है। आज उद्योग क्षेत्रों में निम्नीकरण के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए यह माना जा रहा है कि इसका इस प्रयोग से शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता में वृद्धि होगी और उच्च शिक्षा के लिए अन्य देशों की ओर भारतीयों का पलायन रूकेगी संचार, इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर आदि क्षेत्रों में हुए तकनीकी विकास के लिए एक सुनिश्चत एवं प्रभावी रूप से प्रशिक्षित मानव संसाधन की आवश्यकता है, जिसकी आपूर्ति मात्र सार्वजनिक क्षेत्र की शिक्षण संस्थाओं से संभव नहीं है।
सदियों तक दासता के बंधन से मुक्त होने के बाद देश ने मध्य मार्ग का अनुसरण करते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था के विचार को ग्रहण करने के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक संस्थाओं का निर्माण 70 के दशकों तक किया गया। जिसके तहत समाजवादी विचारों को स्थान मिला। 1991 में उदारीकरण के विचार को स्वीकार किया गया और कुछ क्षेत्रों को छोड़कर अनेक क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। फलतः इसका प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी पड़ना स्वाभाविक हो गया और सार्वजनिक बनाम निजी शिक्षा का बहस प्रारंभ हो गया। प्रारंभ में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इसने प्रवेश किया और धीरे–धीरे अन्य शिक्षा के क्षेत्रों में भी निम्नीकरण का क्षेत्र बढ़ता गया और वर्तमान मे इसके और अधिक बढ़ने का आसार प्रबल हो गये। प्रारंभिक क्षेत्र में भी इसने अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है।

सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के स्वामित्व या सरकार से सहायता प्राप्त तथा निजी स्वामित्व वाले स्कूल शामिल है। सरकारी स्कूल वास्तव में अधिक से अधिक लोगों को शिक्षा उपलब्ध कराने का सराहनीय कार्य कर रहे है। निजी शिक्षा के अंतर्गत निजी विद्यालय जो निजी क्षेत्रों द्वारा सम्पूर्ण व्यावसायिक आधार पर चलाये जाते हैं, इन्हें पब्लिक स्कूल कहा जाता है। निजी क्षेत्र की इन गतिविधियों में धार्मिक संस्थायें एवं न्यास भी संलग्न है।
जिन्हें किसी प्रकार का सरकारी अनुदान नहीं मिलता है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कई निजी संस्थाएँ है। सरकारी व गैर–सरकारी अनुदान मिलते है।

सार्वजनिक शिक्षा किसी भी समाज के समावेशी विकास के लिए आवश्यक है। वह सर्वे भवन्तु सुखिनः के उदान्त भावना से प्रेरित होकर कार्य करती है। यह शिक्षा सामाजिक और राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ एक न्यायसंगत मानवीय और दीर्घ कालीन विकास की पूर्ति करते हैं। यह एक लोकतांत्रिक समाज में जहाँ शिक्षा लोगों और समाज को विकसित करने के लिए सबसे व्यवस्थित प्रक्रिया होती है। सार्वजनिक शिक्षा समाज और लोकतंत्र के लिए बुनियादी मुद्दा हो जाती है। आर्थिक उद्देश्य सार्वजनिक शिक्षा का अभिन्न अंग है, परन्तु यदि आर्थिक उद्देश्यों पर ही लगातार बल दिया जाता रहेगा और इस तरह अन्य उद्देश्यों और पाठ्यचर्या को सीमित कर दिया जायेगा तो इसमें सार्वजनिक शिक्षा कमजोर हो जायेगी।

उदारीकरण के बाद और निजी विद्यालयों की अप्रत्याशित वृद्धि ने सार्वजनिक शिक्षा को आघात पहुँचाने कार्य किया है। नवीनता, गतिशीलता के नाम पर निजी शिक्षा को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा

है। सार्वजनिक शिक्षा की सीमा है लेकिन वे अपनी सीमाओं के बावजूद काफी अच्छा प्रदर्शन कर रही है।

यहाँ सामयिक प्रश्न जो सार्वजनिक एवं निजी शिक्षा से संबंधित है। आजकल प्रायः अंग्रेजी माध्यम के प्रतिष्ठित व निजी तंत्र द्वारा संचालित विद्यालय पब्लिक स्कूल अर्थात् सार्वजनिक शब्द का प्रयोग करने लग गये है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या निजी स्कूल सार्वजनिक शिक्षा का काम कर सकते है।

सैद्धांतिक तौर पर देखे तो दो निम्न बुनियादी शर्ते पूरी कर निजी क्षेत्र भी सार्वाजनिक शिक्षा के काफी गरीब होगा।

1. वह सार्वजनिक हित के लिए तैयार पाठ्यचर्या को स्वीकार और लागू करें।
2. वह सबको समान तौर पर उपलब्ध रहें, फिर चाहे कोई किसी भी सामाजिक आर्थिक स्थिति का क्यों न हो।

परन्तु निजी स्कूल दूसरी शर्त को पूरा नहीं कर सकते, क्योंकि यदि वे अपने खर्चे विद्यार्थियों के माध्यम से निकालने का इरादा रखते है तो आर्थिक रूप से कमजोर बच्चे इस शिक्षा से वंचित रह जोयेंगे। इसी तरह सार्वजनिक वित्तीय सहायता प्राप्त निजी विद्यालयों का विचार सामने आया है जिससे वे सार्वजनिक शिक्षा दने की बात करते है।

वैसे हमारे देश में सार्वजनिक भावना से प्ररित कई निजी विद्यालय मिल सकते है। इनमें से कुछ को राज्य की ओर से और कुछ को लोकोपकारी वित्तीय सहायता मिली हो सकती है। ऐसे विद्यालय कोशिश करते है कि उक्त दोनों शर्त पूरा हो जाये, लेकिन इस प्रकार के संस्थायें काफी कम है। अधिकतम निजी संस्थाएँ सबकों समान रूप से प्रवेश नहीं दे पाते है। उनका मूल लक्ष्य लाभ कमाना है।

अतः यदि हमें सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को उन्नत करना है तो राजकीय स्कूलों को सुदृढ़ करना ही होगा। अतः भारत में हमें राजकीय विद्यालयी व्यवस्था को सुदृढ़ और बेहतर बनाने की आवश्यकता है ताकि समाज सभी वर्गों को बढ़ने का समान अवसर मिल सकते। वैसे वर्तमान समय में निजी शिक्षा भी एक वास्तिविकता बन गई है। जरूरत सामंजस्य स्थापित करने की।

- **शिक्षा की निजीकरणः— उदारवादी दृष्टिकोण तथा आलोचात्मक विमर्श**

निजीकरण का अर्थ है— सरकारी नियंत्रण से बाहर रहकर कार्य करने की प्रक्रिया, जिससे पूर्व में वह सरकार द्वारा संचालित या प्रतिबंधित संस्थाओं को किसी निजी संस्था या उद्यमी अथवा संस्था को संचालन या प्रबंधन हेतु हस्तान्तरित कर दिया जाता है।
निजीकरण की यह प्रक्रिया किसी एक व्यक्ति या एक संस्था द्वारा भी आरम्भ की जा सकती है। वास्तव में निजीकरण का आशय स्वामित्व में परिवर्तन या सरकारी स्वामित्व के स्थान पर किसी निजी संस्था या उद्यमी के स्वामित्व से है। निजीकरण मुख्यतः प्रतिस्पर्धा व मुनाफे की अवधारणा पर टिका है। 1991 की नई आर्थिक नीति में निजीकरण के माध्यम से मुनाफे के इस भाव को शिक्षा के क्षेत्र में भी ला दिया है। जिसमें शिक्षा में निजी निवेश को बढ़ावा मिला है एवं शिक्षा एक लाभकारी बाजार के रूप में विकसित हुई है।
नई शिक्षा नीति 1986 के आरम्भ से ही शिक्षा में निजीकरण के प्रवेश का संकेत मिलने लगा था। इस नीति में उच्च शिक्षा संस्थानों को बेहतर रूप से संचालित करने के लिए चन्दा इकट्ठा करना तथा इमारतों के रखरखाव एवं रोजमर्रा के काम में आने वाले संस्साधनों की पूर्ति में स्थानीय लोगों की सहायता की बात कही गई है।
इस बीच विश्व बैंक द्वारा विकासशील देशों में शिक्षा के खर्च के पैटर्न पर एक रिपोर्ट जारी करके बाताया गया कि आर्थिक संसाधनों की कमी को देखते हुए शिक्षा पर आनेवाला खर्च का एक बड़ा हिस्सा अभिभावक पर डाला जाए।
1991 में ढाँचागत समायोजन के अन्तर्गत तत्कालीन सरकार ने उदारीकरण को आगे बढ़ाया, जिससे

स्पष्ट हो गया कि उच्च शिक्षा को विश्व बैंक के सुझावों के अनुरूप ढ़ाला जायेगा। इसी दौरान खाड़ी सेकर की आड़ में उच्च शिक्षा के बाजार में यू.जी.सी. द्वारा 35% की कटौती की गई तथा विश्वविद्यालयों को निर्देश दिया गया कि वे अपने संसाधन स्वयं जुटाने के प्रयास करें। 1992 में केन्द्र सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति के० पुनैया की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया। इस समिति का उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालयों के आर्थिक संकट को हल करने और वैकल्पिक संसाधनों की उगाही के संबंध में सुझाव देना था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट यू.जी.सी. को सौंपी। इस रिपोर्ट में उच्च शिक्षा के निजीकरण के पक्ष में अपना विचार प्रकट किया। जनार्दन रेड्डी समिति 1992 ने भी उच्च शिक्षा को धीरे–धीरे स्ववित्त पोषित बना दिये जाने की जोरदार वकालत की।

शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण से तात्पर्य ऐसी संस्थाओं से होता है जो स्वतंत्र रूप से शिक्षण कार्यों को सम्पन्न करती है। ऐसी संस्थाओं के कार्य पर सकरार का हस्तक्षेप नहीं नहीं होता है केवल सरकार उन्हें सहायता के तौर पर अनुदान प्रदान कर सकती है, परन्तु उसकी नीतियों का निर्धारण नहीं कर सकती है। अतः शिक्षा में निजीकरण यदि सार्थक तरीके से व नैतिकता के मुद्दों को ध्यान में रखकर किया जाता है तो यह देशहित में शिक्षा के विकास में मददगार होगा।

शिक्षा में उदारवादी दृष्टिकोण

उदारवादी दृष्टिकोण से तात्पर्य भारत में कुछ निश्चित सुधारों व नीतियों में शिथिलता प्रदान करने से है। मूल रूप से उदारीकरण का प्रत्यय आर्थिक उदारीकरण के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। भारत आर्थिक रूप से उदार होते हुए भी यहाँ की शिक्षा प्रणाली उदार नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा उद्यम प्रतियोगिता नहीं चाहता व सरकार स्वयं से पूर्ण नियंत्रण खोना चाहती है। भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली सम्बंद्धता के बोझ तले व स्वायत्तता के अभाव से ग्रस्त है। इसमें लचीलेपन का अभाव है। उच्च शिक्षा की वास्तविक कमजोरी उसके संगठनात्मक ढाँचे में ही है और इसीलिए उन्तर्दर्शन व प्रत्यक्षीकरण की भी आवश्यकता पड़ती है। शोध आधारित शिक्षा के अभाव में शिक्षा की गुणवत्ता दिनों दिन गिरती जा रही है। बहुत कम ही संस्थान ऐसा है जो वास्तव में जनता के लिए लाभदायक शोध कार्य करवाती है।

शिक्षा में उदारीकरण से संस्था की वित्तीय व्यवस्था में सुधार होगा। साथ ही साथ शैक्षिक संस्थाओं की आपसी प्रतिस्पर्धा उनकी गुणवत्ता में सुधार करेगी। भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ है। उदारीकरण से शिक्षा और सेवा क्षेत्र एक दूसरे के मददगार होंगे। बेहतर प्रतिभा को देश में ही उचित कार्य मिल सकने से प्रतिभा पलायन पर अंकुश लग सकेगा। इससे अध्येताओं से समाज और उद्योग आधारित कौशलों का विकास हो सकेगा।

उदारीकरण के कारण अनेक हानियाँ भी है। इससे मूल्य और समाज कल्याण की भावना कम होगी। आवश्यकता आधारित शिक्षा को बढ़ावा मिलने से कई आवश्यक पक्ष पीछे छूट जायेंगे। प्रतिभा के स्थान पर धन और पहुँच को बढ़ावा मिलेगा कुल मिलाकर इसे सावधानी से अपनाने की आवश्यकता है।

शिक्षा के निजीकरण व उदारवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक विमर्श

शिक्षा में निजीकरण व उदारवादी दृष्टिकोण पर विचार करते है तो हम पाते है कि यह प्रक्रिया बहुत पहले ही हमारी शिक्षा प्रणाली में निहित थी, परन्तु इनका प्रयोग सीमित व यथोचित ढंग से होने के कारण इनका नकारात्मक पक्ष सामने नहीं आया था। परन्तु वर्तमान में इसके अव्याधिक प्रयोग ने उनके स्वरूप को बदल दिया। नई आर्थिक नीति के बाद शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण के इस खुले समर्थन से ज्ञान व्यवस्था को बल मिला है। सरकार ने भी संस्थाओं को स्ववित्त पोषित मान्यता व व्यवस्था के तहत निजीकरण बढ़ावा दिया है। चिकित्सा प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन व अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में तो आज निजी शिक्षा संस्थानों की बाढ़ सी आ गई है।

यह तो सर्वविदित है कि सरकारी प्रबंध और स्वामित्व के विपरीत निजीकरण में प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। लागत कम होती है और गुणवत्ता का उन्नयन होता है। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में स्वीकृत निजीकरण की व्यवस्थाओं का उद्येश्य इसी गुणवत्ता को हासिल करना रहा है, किन्तु परेशानी का विषय यह है कि तमाम सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक कारणों से शैक्षिक निजीकरण की व्यवस्थायें अपने लक्ष्य से भटकी है। निम्नीकरण ने शिक्षा के बाजारीकरण को बढ़ावा देकर हमारी शैक्षिक व्यवस्थाओं में निहित सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावित किया है।

समाजिक न्याय को सर्वोपरि रखते हुए लोकतंत्र सदैव व्यक्ति के सम्मान की बात करता है तथा

क्षेत्र जाति, धर्म व लिंग आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करता। यही कारण है कि भारत की सरकार ने देश के सभी बच्चों, युवकों एवं प्रौढ़ों को बिना किसी भेदभाव शिक्षा समान अवसर एवं अधिकार दिए है। निःसंदेह हमारी भावानायें और हमारी संवैधानिक व्यवस्थायें इसके पक्ष में है, परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण की व्यवस्थाओं ने इस अवधारण पर चोट की है। यह भी सन्देह व्यक्त किया जा रहा है कि निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है साथ ही देश में नवीन अभिजात्य वर्ग की स्थापना करना चाहती है जो पुनः भारतीय समाज में असमानता उत्पन्न कर देगी।
बेहतर यह होगा की हमारी सरकार शिक्षा जैसे मुद्दों पर अपनी जिम्मेंदारियों से कोई समझौता न करें और हमारी शैक्षिक व्यवस्था कुछ ऐसी संगठित हो कि ज्ञान का प्रकाश हर ओर फेले। इसके लिए संस्थाओं में भी शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखने एवं अभिभावकों और अध्यापक को आर्थिक शोषण से बचाये रखने का प्रावधान अवश्य रखे जाये और शैक्षिक उद्देश्यों शिक्षा के लक्ष्यों, शिक्षा के प्रचार प्रसार में योग्यता की अनदेखी न की जा सके।

वर्तमान समय में निजी संस्थानों का चलन वास्तिविकता बन गई है। आज इंजीनियरिंग, मेडिकल, मैनेजमेण्ट, बी0,एड0, नर्सिंग आदि के क्षेत्र में निरन्तर खुलती जा रही संस्थानों में सीमित सीटों की क्षमताओं के चलते जो मेधावी छात्र इस प्रकार की व्यवसायिक शिक्षा से वंचित रह जाते थे, उन्हें आगे बढ़ने का मौका मिला है जबकि बुरा पक्ष यह है इसका लाभ ऊंची फीस देकर ही मिल पाती है। अतः जो मोटी फीस न दे पाते है वे इसका लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं।

अतः यदि अर्थिक व सामाजिक रूप से वंचितों को शिक्षा देने के पर्याप्त प्रबन्ध करते हैं तो अब सरकार को सरकारी–निजी–भागीदारी (PPP-Public Private Partnership) की तर्ज पर ही इसे अब शिक्षा में लागू करना होगा। सार्वजनिक क्षेत्र के शैक्षिक संस्थान अब शिक्षा में उदारीकरण को इसकी नकारात्मक छवि को छोड़कर इसके सकारात्मक परिणाम पाने की दिशा में कार्य करने होंगे।

4. अभिवंचित एवं उपेक्षित वर्ग के लिए शिक्षा

हमारा संविधान सामाजिक न्याय की बात करता है। शिक्षा वह साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति सामाजिक परिवर्तन लाते है। भारतीय समाज में हाशिए पर रहा एक वर्ग अनुसूचित/अनुसूचित जनजाति है जो भौगोलिक रूप से अलग–थलग, तथा कथित, व्यवस्थित, मुख्य धारा, सभ्य समाज से दूर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम इलाकों में अपनी अनोखी संस्कृतियों, धार्मिक पद्धतियों, भाषाओं और जीवन शैलियों के साथ रहती है, अभिवंचित वर्ग कहलाता है। जहाँ एक ओर इन वर्गों का जीवन भारतीय समाज के अन्य सामाजिक वर्गों से भिन्न है, वही उनके जीवन के आस पास की प्रकृति के साथ अनोखी समकालिकता भी है। हलांकि कई कारणों से विकसित समाज के सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत को लोकतांत्रिक समाज बनाने, सभी नागरिकों को उनकी सामाजिक पहचान और वर्ग की परवाह किए बगैर समार अधिकार प्रदान करने से, इनलोगों की सामजिक भागीदारी में आमूल चूल बदलाव आया है। अभिवंचित एवं उपेक्षित वर्ग के समावेशी विकास के लिए शिक्षा सबसे सशक्त माध्यम है।

अभिवंचित वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के बच्चों के शैक्षिक विकास की नीतियाँ, कार्यक्रम एवं योजनाएँ

देश में स्वाधीनता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोतर विकास किया है, लेकिन हम आशातीत सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। वर्तमान समय में सभी बच्चों का विद्यालय में नामांकन, विद्यालय ठहराव एक गुणात्मक शिक्षा प्रदान करना इत्यादी प्रमुख है। अभिवंचित और इस वर्ग के अधिकांश बच्चे उच्च प्राथमिक तक पहुँचते–पहुँचते विद्यालय छोड़ देते है। इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान संशोधन 86 वाँ के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार में शामिल किया गया, साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 लागू किया गया। इसकी प्राप्ति के लिए सभी स्तर पर सबों की भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया। आज हम राष्ट्रीय स्तर पर माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौमिकता के लक्ष्य की ओर बढ़ रहे है लेकिन अभिवंचित एवं उपेक्षित वर्ग के लिए शिक्षा आज भी एक चुनौती बनी हुई है।

भारत विविधताओं में एकता का देश है। इसमें सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, भाषायी

विविधताएँ स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। जब हम सबके लिए शिक्षा की बात करते हैं, तो हमें उन अभिवंचित और उपेक्षित वर्ग, जो सामाजिक रूप से पिछड़े है, की आवश्यकताओं और चुनौतियों को ध्यान में रखना होगा। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग ने शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सामग्री तैयार करने का निश्यच किया, जिससे देश के सभी प्रदेशों में कार्यरत शिक्षक इस समस्या का निदान कर सकेंगे।

आज भी अनुसुचित जाति की प्रारंभिक शिक्षा स्तर अन्य बच्चों की तुलना में काफी कम है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा (2005) में विशेष रूप से कहा गया है कि शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य के रूप में बच्चों का अपने जीवन को सकारात्मक बनाने, अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास करने, स्वयं के अधिकारों व उसके उद्देश्यों को चिह्नित, परिभाषित और धारण करने के साथ–साथ दूसरे के अधिकारों को भी समान महत्व देने का विचार आज भी प्रासंगिक है। अतः यह पाया गया कि सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग के बच्चे जैसे कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति।

- **अभिवंचित वर्ग के बालकों की शिक्षा**

"वंचित" का तात्पर्य है– विहीन होना , रहित होना। जब कोई व्यक्ति किसी सुविधा से रहित या विहीन हो जाता है तो वह उस सुविधा से वंचित कहलाएगा। जब व्यक्ति अपनी किसी अनिवार्य आवश्यकता या सुविधा से वंचित हो जाता है, तब उसमें असंतोष जन्म ले लेता है।

हमारे देश भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से निम्न स्तर की जातियाँ इसलिए कहा जाता है, क्योंकि ये उच्च सामाजिक स्तर , उरूच संस्कृति और सामान्य आर्थिक स्थिति से वंचित है। इस दृष्टि से इस वर्ग में मुख्य रूप से अनुसूचित जातियाँ तथा अनुसूचित जनजातियाँ ही आती हैं।

हमारे देश में अभी तक मंद बुद्धि एवं विकलांग बालकों की शिक्ष की भी समुचित व्यवस्था नहीं की जा सकी है। शैक्षिक दृष्टि से इन्हें भी वंचित वर्ग में रखा जाता है। अल्पसंख्यकें को भी वंचित, पिछड़े एवं कमजोर वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया है।

वंचित बालकों की श्रेणी में निम्नांकित लोग आते हैं–

(i) अनुसूचित जाति एवं अनुसूतिच जनजाति के बच्चे
(ii) पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्र के बच्च
(iii) बालिकाएँ
(iv) मंदबुद्धि एवं विकलाग बच्चे
(v) अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चे।

भारत में वंचित वर्ग की शिक्षा–

भारत में वंचित वर्ग के बच्चों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने के लिए कई प्रयास किये जा रहे है।, जिनका वर्णन इस प्रकार है।

1. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियाँ के बच्चों की शिक्षाः– भारत में अनुसूचित जाति और जनजातियाँ पूरे देश में फैली है। इनकी जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का क्रमशः लगभग 23 प्रतिशत और 7 प्रतिशत है। इस प्रकार इस वर्ग में लगभग 30 प्रतिशत भारतीय आते है। भारतीय संविधान में इनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक हितों की रक्षा हेतु अनेक प्रावधान किये गये है।

   संविधान के अनुच्छेद 46 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य जनता के कमजोर वर्गो विशषतः अनुसूचित जातियों और जनजातियों की शिक्षा तथा धर्म संबंधी हितो की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से संरक्षण करेगा।

   (i) इस वर्ग के बच्चों की शिक्षा के संबंध में सुझाव देने के लिए सर्वप्रथम 1960 ई० में U.N.Dhebar की अध्यक्षता में एक कमीशन का गठन किया गया था, जिसे ढेबर कमीशन कहते है। इस कमीशन ने अनुसूचित जति एवं जनजातियों के बच्चों की

   a) निःशुल्क पाठ्य पुस्तके
   b) लेखन–सामग्री
   c) वस्त्र
   d) व मध्याह्न भोजन की व्यवस्था का भी सुझाव दिया था।

(ii) कोठारी कमीशन (1964–66) ने इस वर्ग की शिक्षा पर थोड़े विस्तार से सुझाव दिए थें, जिनमें

(a) ढ़ेबर कमीशन के सुझावों के पालन के साथ–साथ

(b) कबीलों के बच्चों की शिक्षा–व्यवस्था करने और

(c) अदिवासी क्षेत्रों में आवासीय एवं निःशुल्क आवासीय एवं निःशुल्क आश्रम स्कूल खोलने पर विशेष बल दिया गया था।

(iii) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में तद्नुकूल घोषणाएँ की गई थीं और अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के बच्चों और कबीलों के बच्चों की शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान देना शुरू किया गया था। और साथ ही आवासीय एवं निःशुल्क आश्रम स्कूलों की स्थापना की शुरूआत।

(iv) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इनकी शिक्षा व्यवस्था हेतु अनेक घोषणाएँ की गई है और घोषणाओं के साथ इनके अनुपालन हेतु POA (योजना) भी प्रस्तुत की गई है। इनमें मुख्य घोषणएँ है:–

(a) नगरों, गाँवों और पहाड़ी तथा आदिवासी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति एवं जनजतियों के बच्चों के लिए विद्यालयों की स्थापना की जाएगी।

(b) इन विद्यालयों में यथासंभव इन्ही वर्गों और इन्हीं क्षेत्रों के शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी।

(c) दूर–दराज से आने वाले बच्चों के लिए छात्रावासों की व्यवस्था की जाएगी।

(d) इन वर्गों के बच्चों की आर्थिक सहायता की धनराशि बढ़ाई जाएगी।

(e) आदिवासी क्षेत्रों में पहले उनकी भाषा सीखायी जाएगी और उसके बाद क्षेत्रीय भाषा सीखायी जाएगी।

इन घोषणाओं के अनुसार वर्त्तमान में इनकी शिक्षा–व्यवस्था हेतु निम्नलिखित प्रयास किए जा रहे है।

1. सर्वशिक्षा अभियान (S.S.A) के अंतर्गत इनके क्षेत्रों में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय आँगनबाड़ी और नए प्रकार के शिक्षा केन्द्र खोलने की प्राथमिकता दी जा रही है।
2. सभी प्रांतो में इस वर्ग के बच्चों को प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तके, वस्त्र एवं मध्याह्न भोजन भी निःशुल्क प्रदान किये जाते है।
3. इनके लिए छात्रावासों का निर्माण भी किया जा रहा है।
4. माध्यमिक एवं उच्च स्तर के छात्र–छात्राओं के लिए विशेष छात्रवृतियों की व्यवस्था की गई है।
5. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C) भी इन वर्गों के छात्र–छात्राओं की उच्च शिक्षा हेतु बड़ी संख्या में जूनियर और सीनियर फेलोशिप दे रहा है।

⇒ पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षाः–

यूँ तो हमारे देश में स्वतंत्र होते ही समस्त वर्गों के बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दोना शुरू कर दिया गया था, परंतु समाज के पिछड़े वर्ग के बच्चों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान संविधान लागू होने के बाद गया । साथ ही देश के पिछड़े इलाकों, रेगिस्तानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में बसने वाली किसी भी जाति के बच्चों की शिक्षा की तरफ भी गया।

कोठारी आयोग(1964–66) ने शैक्षिक अवसरों की समानता की बात की (इस संदर्भ में)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस वर्ग में आने वाले बच्चों की शिक्षा–व्यवस्था हेतु अनेक घोषणाएँ की गई हैं और साथ–ही उनके क्रियान्वयन के लिए कार्य–योजना भी घोषित की गई है। इस नीति में इनकी शिक्षा के संदर्भ की गई धोषणाओं में मुख्य घोषणाएँ निम्नाकित है:–

1. पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष घ्यान दिया जाएगा।
2. देश के रेगिस्तानी, पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में और अधिक स्कूल खोले जाएँगे।
3. पिछड़े वर्ग में बच्चो को अर्थिक सहायता जारी रहेगी, साथ ही उन्हें छात्रवृत्तियाँ भी दी जाएँगी।

इन घोषणाओं और कार्य योजना के अनुसार वर्त्तमान में पिछड़े वर्ग और पिछड़े क्षेत्रों के बच्चो की शिक्षा–व्यवस्था हेतु निम्नलिखित प्रयास किये जा रहे है–

1. सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत इनके क्षत्रों में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्कूल खोलने को द्वितीय वरीयता दी जा रही है।
2. पिछड़े क्षेत्रों में नए प्रकार के शिक्षा केन्द्र खोलने की वरीयता दी जा रही है। 15–20 बच्चे होन पर ही नए प्रकार का शिक्षा केन्द्र खोल दिया जाता है।
3. इस वर्ग के बच्चों के लिए कुछ विशेष छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की गई है।

बालिकाओं की शिक्षा

1. स्वतंत्र होने के बाद सर्वप्रथम राधाकृष्णन कमीशन (1948–49) ने स्त्री–शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने का सुझाव दिया।
2. 1950 में हमारा अपना संविधान लागू हुआ। इस संविधान के अनुच्छेद 15 (3) में यह व्यवस्था की गई है कि – इस अनुच्छेद की किसी भी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई उपबंध बनाने में कोई बाधा नहीं होगी।
3. 1951 ई0 में बालिका शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए योजनाबद्ध रूप से कार्य शुरू किया गया।
4. 1958 में केंद्र सरकार ने स्त्री–शिक्षा के संबंध में सुझाव देने के लिए श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में "राष्ट्रीय महिला" शिक्षा समिति का गठन किया।
   इसे अध्यक्ष के नाम पर देशमुख समिति भी कहते है।
   इस समिति ने स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए अनेक सुझाव दिए जिनमें–
   (a) राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् की स्थापना।
   (b) स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए अतिरिक्त धनराशि की व्यवस्था
   (c) और स्त्री–पुरूष सबके लिए समान शिक्षा का सुझाव मुख्य थे।

5- सरकार ने 1959 में राष्ट्रीय महिला परिषद् का गठन कर इसे स्त्री–शिक्षा के संबंध में नीति एवं योजना–निर्माण का कार्य सौंप दिया।

6- शिक्षा के संदर्भ में 1962 ई० में हंसा मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने भी लगभग वही सुझाव दिये।

7- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में स्त्री–शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं उन्नयन के लिए कई धोषनाएँ की गई और साथ–ही–साथ उन धोषणाओं के क्रियान्वयन के लिए कार्य–योजना भी बनायी गई, जिसके अनुसार वर्त्तमान में स्त्री–शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं उन्नयन के लिए निम्नांकित प्रयास किये जा रहे है।
   (a) जिन जिलों में स्त्री साक्षरता दर बहुत कम है, उनमें जिला विद्यालय शिक्षा कार्यक्रम चलाया जा रहा है।
   (b) बालिका निरौपचारिक शिक्षा –केन्द्रों को 90 प्रतिशत अनुदान देना शुरू किया गया है।
   (c) 1989 में महिला समाख्या कार्यक्रम शुरू किया गया, जो वर्त्तमान में 900 ग्रामों में चलाया जा राह है इसके द्वारा ग्रामीण और पिछड़े वर्ग की बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है।
   (d) नवोदय विद्यालयों में बालिकाओं के लिए 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये है।
   (e) माध्यमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर निःशुल्क छात्रावासों की सुविधा बढ़ाई जा रही है।
   (f) बलिकाओं के लिए माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है। कुछ प्रांतो में इनके लिए उच्च शिक्षा भी निःशुल्क है।
   (g) निर्धन वर्ग की छात्राओं को आर्थिक सहायता भी दी जा रही है।
   (h) बालिकाओं के लिए कुछ विशेष छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था है।

मंदबुद्धि एवं शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों की शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में शारीरिक दृष्टि से अक्षम और मानसिक दृष्टि से मंद बुद्धि बच्चों को विकलांग माना जाता है और साथ–ही उन बच्चों को भी विकलांग माना जाता है जो किसी कारण सामाजिक व्यवहार में असामान्य हो गए हो।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2001 में हमारे देश में लगभग 2 करोड़ व्यक्ति विकलांग थें। पूरे संसार के विकलांगों के 50 प्रतिशत थें। इनमें लगभग 50 लाख बच्चे ऐसे है जिनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना आवश्यक है।

(a) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना 12 अगस्त, 1953 ई० को की गई। इसका उद्देश्य था– महिलाओं, बच्चों तथा विकलांगो के कल्याणकारी कार्यक्रम को लागू करना तथा समाज–कल्याण कारी गतिविधियों को प्रोत्साहित करना।

(b) कोठारी कमीशन (1964–66) ने शैक्षिक अवसरों की समानता के संदर्भ में विकलांग बच्चों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने पर बल दिया। इसके परिणाम स्वरूप 1965 से 1975 के बीच इनके लिए लगभग 60 नये विद्यालय स्थापित किये गये।

(c) 1984 ई० में समाज कल्याण विभाग ने 4 राष्ट्रीय विकलांग संस्थान स्थापित किये।

1. राष्ट्रीय दृष्टि विकलांग संस्थान देहरादून
2. राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान बंबई
3. राष्ट्रीय अस्थि–रचना विकलांग सं० कलकत्ता
4. राष्ट्रीय मानसिक विकलांग संस्थान, सिकंदराबाद (तेलंगाना)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शैक्षिक अवसरों की समानता के संदर्भ मे विकलांग बच्चों की शिक्षा–व्यवस्था पर बल दिया गया और उसकी कार्य योजना में यह घोषणा की गई कि:–

1. विकलांग बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और इनकी शिक्षा–व्यवस्था हेतु स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाएगा।
2. मामूली विकलांग बच्चे सामान्य बच्चों के साथ पढ़ेंगें और गूंगे, बहरे, अंधे तथा मंद बुद्धि बालको के लिए अलग से कई स्कूल खोले जाएँगे।

उपर्युक्त कार्य योजना के अनुसार वर्त्तमान विकलांगों की शिक्षा हेतु निम्नांकित प्रयास किए जा रहे है:–

1. विकलांग बच्चों की प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश की आयु 6 वर्ष के स्थान पर 9 वर्ष तक कर दी गई है।
2. केन्द्रीय विकलांग संस्थाओं में विकलांग बच्चों की शिक्षा, विकलांग बच्चो के शिक्षक के प्रशिक्षण और विकलांग बच्चो की शिक्षा के क्षेत्र में शोधकार्य की व्यवस्था है।
3. विकलांग बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता की जा रही हैं। इनके सहयोग से 2001 में भारत में लगभग 1000 विकलांग शिक्षा केन्द्र स्थापित हो चुके थे।

अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों की शिक्षा

धर्म और भाषा के आधार पर कुछ वर्ग के व्यक्तियों को अल्पसंख्यक घोषित कर दिया गया है। इनमें मुसलमान, ईसाई, बौद्ध और जैन आदि आते है, परन्तु ईसाई, बौद्ध और जैन शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े नहीं है इसलिए जब शिक्षा के क्षेत्र में अल्पसंख्यकों की शिक्षा की चर्चा की जाती है तो वह विशेषकर मुसलमान बच्चों की शिक्षा की बात की जाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–30 में अल्पसंख्यकों की शिक्षा के संबंध मे दो प्रावधान किए गए है।

1. धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि के अनुसार शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन की अधिकार होगा।
2. शिक्षा–संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरूद्ध इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है।

कोठारी कमीशन (1964–66) ने शैक्षिक अवसरों की समानता के संदर्भ में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा–व्यवस्था करने पर बल दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 में इनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था करने की घोषणा की गई और तदनुकूल कुछ ठोस कदम भी उठाए गए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में अल्पसंख्यकों की शिक्षा के संदर्भ में स्पष्ट घोषणा की गयी है–

1. अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षा–संस्थाएँ चलाने का अधिकार होगा, परंतु इनका पाठ्यक्रम प्रांतीय सरकारों द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम ही होगा।
2. अल्पसंख्याकों के क्षेत्र में प्रथमिक एवं माध्यमिक स्कूल खोलने को प्राथमिकता दी जाएगी।

वर्त्तमान में अल्पसंख्यको के बच्चों की शिक्षा हेतु, निम्नलिखित प्रयास किये जा रहे हैः–

(i) सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के साथ अल्पसंख्यकों के क्षेत्रों में भी प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्कूल स्थापित करने को प्राथमिकता दी जा रही है।

(ii) शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए क्षेत्रीय सधन कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

(iii) मदरसों को शिक्षा के आधुनिकीकरण हेतु वित्तीय सहायता दी जा रही है।

(iv) उनकी कुछ जातियों को पिछड़ी जातियों की सूची में स्थान दिया गया है ओर उनकों यथासंभव आरक्षण व आर्थिक, सुविधाएँ भी प्रदान की जा रही है।

भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति के 74 वर्ष बाद भी इन सब जातियों को वंचित, पिछड़े अथवा कमजोर वर्ग मे रखना, जिन्हें स्वतंत्रता के समय इन वर्गों में रखा गया थां, यह प्रदर्शित करता है कि ये जातियाँ अभी भी वंचित, पिछड़ी एवं कमजोर है। इसका अर्थ है कि हमने स्वतंत्रता के 74 वर्ष में भी इनके उन्नयन के लिए कुछ खास प्रयास नहीं किया है। सच बात तो यह है कि ये सब जातियाँ न तो अब उतनी वंचित, पिछड़ी व कमजोर है, जितनी स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले थी। अब इनमें सामाजिक एवं राजनैतिक जागरूकता आ गई है, शिक्षा की ओर भी इनकी रूचि बढ़ी है और आर्थिक क्षेत्र में भी उतनी पिछड़ी हुई नहीं है। हाँ, अनुसूचित जन–जातियाँ अभी भी सभी दृष्टियों से वंचित, पिछड़ी एवं कमजोर है। अतः इस दिशा मे एक नवीन सामाजिक क्रान्ति या जनजागरण की नितांत आवश्यकता है।

6. समान विद्यालय प्रणाली (Common School System)

समान विद्यालय प्रणाली सिस्टम का अर्थ है एक आयु वर्ग के सारे बालकों को एक समान शिक्षा प्रदान करने के व्यवस्था की जाये चाहें वो किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय, अर्थिक या भौगोलिक स्थिति से हो।

अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री होरेस मन संसार के पहले व्यक्ति है जिन्होने 19वीं शताब्दी में सामान्य विद्यालय व्यवस्था शब्द का प्रयोग किया। होरस मन ने सामान्य विद्यालय व्यवस्था का प्रयोग सरकार द्वारा वित्त पोषित विद्यालयों के लिए किया। जिसमें सभी वर्ग से आने वाले बालकों के लिए एक समान शिक्षा व्यवस्था हो जिससे कि राष्ट्र के सभी बालकों को एक साथ पढ़ने व बढ़ने का अवसर मिलें। कुछ ही वर्षों मे इस व्यवस्था का प्रयोग कनाडा, जापान, क्यूबा, चाइना व अन्य यूरोपीय देशों में भी किया जाने लगा।

भारत में कॉमन स्कूल सिस्टम के प्रत्यय का जनक शिक्षा आयोग को माना जाता है जिसके अध्यक्ष डॉ० दौलत सिंह कोठारी थें जिनकी अध्यक्षता में स्कूली शिक्षा प्रणाली को नया आकार देने कि कोशिश की गई जिसे कोठारी आयोग के नाम से जानते है। 1986 की शिक्षा नीति की यह परिकल्पना रही है कि कॉमन स्कूल सिस्टम के द्वारा समस्त विद्यालय बिना किसी भेदभाव के सभी बालकों के लिए खुले होने चाहिए। सभी को उपयुक्त गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि कोई भी सामान्य अभिवावक अपने बालक को इस व्यवस्था के बाहर खर्चीले विद्यालय में शिक्षा दिलाने की आश्यकता अनुभव न करें। इस तरह की शिक्षा व्यवस्था कुछ लोकतांत्रिक देशों जैसे अमेरिका में नेबरहुड तथा इंग्लैण्ड में कॉम्प्रीहेंसिव स्कूल के रूप में विद्यमान है।

कोठारी आयोग के सामान्य विद्यालय प्रणाली के संप्रत्यय के केन्द्र में भी नेबरहुड स्कूल ही विद्यमान है। कोठारी आयोग द्वारा अनुशंसा की गई है कि इस प्रकार के विद्यालय में पड़ोस के समस्त बालकों को अध्ययन का समान अवसर मिले इस संबंध में कोठारी आयोग की रिपोर्ट में कहा गया हैः– पहला– एक पड़ोसी विद्यालय बच्चों की अच्छी शिक्षा प्रदान करेगा, क्योंकि जिन्दगी को सामान्य व्यक्ति के साथ साझा करना अच्छी शिक्षा का सामान्य संघटक है। दूसरा, इस प्रकार के विद्यालयों की स्थापना समृद्ध, सुविधा संपन्न और शक्तिशाली वर्गों को लोक शिक्षा प्रणाली में रूचि लेने के लिये विवश करेगी एवं इस प्रकार उस शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षकृत रूप में सुधार जल्दी आयेगा।

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 में निहित है कि जाति, पंथ, स्थान या लिंग के बावजूद सभी बच्चों की एक समान गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा तक पहुँच हो। इस नीति के क्रियान्वयन की समीक्षा करते समय राममूर्ति समिति (1990) ने स्कूल में समानता और सामाजिक न्याय की सुरक्षा हेतु समग्र रणनीति का बहुत महत्वपूर्ण घटक माना।

सरकारी विद्यालयों की बिगड़ती हुई व्यवस्था सक्षम वर्ग को निजी विद्यालयों की तरफ भागने को मजबूर किया है तो दूसरी तरफ सरकार ने केन्द्रीय विद्यालय, सैनिक विद्यालय, नवोदय विद्यालय आदि के संदर्भ में विभिन्न श्रेणियों के बच्चों हेतु स्कूली शिक्षा में अंतर के अवधारणा को विकसित किया है। आचार्य राममूर्ति रिपोर्ट ने नवोदय विद्यालय स्कूल प्रणाली की आलोचना की है।

क्योंकि यह काफी खर्चीला था तथा सभी के लिये सामान्य स्कूल शिक्षा के विचार से असंगत था।

समान विद्यालय प्रणाली के उद्देश्यः—

(i) एक आयु वर्ग के बच्चों के लिये एकसमान शिखा प्रदान करना।
(ii) समस्त बच्चों को उचित गुणवत्तायुक्त प्रथमिक स्तर के शिक्षा प्रदान करना।
(iii) सरकारी विद्यालयों के प्रति उदासीनता को दूर करना।
(iv) समाज में व्याप्त भेदभाव को दूर करना।
(v) अपेक्षित वर्ग को शिक्षा के द्वारा आगे बढ़ने का मौका प्रदान करना।

शिक्षा आयोग 1966 की सिफारिशों को याद करना गलत न होगा जो पड़ोसी स्कूलों की अवधारणा को सभी बच्चों के लिए समाज गुणवत्ता की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण समझता है लेकिन निजी विद्यालयों की बढ़ती हुई संख्या और सरकारी विद्यालयों के बिगड़ते मानकों के कारण बेहतर गुणवत्ता की शिक्षा की खोज में स्कूली शिक्षा के नेतृत्व किया गया। केवल गरीब या सीमान्त लोग अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजते है या जो एक या अन्य कारणों से इन स्कूलों में अपने बच्चों के प्रवेश में सुरक्षित नहीं हो सकते उपर्युक्त आयोग की सिफारिश सी.एस०एस० आयोग के संदर्भ में है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में कॉमन स्कूल सिस्टम के संबंध में लिखा गया है—

"विविध उपतंत्रो एवं अलग—अलग प्रकारों के स्कूलों के होने से कुल मिलाकर स्कूली व्यवस्था पर नाकारात्मक असर ही पड़ता है, क्योंकि समाज के अधिक मुखर वर्ग का समर्थन विद्यार्थियों के छोटे से समूह को ही मिल पाता है। यह वांछनीय है कि समान स्कूली पद्धति का विकास किया जाये ताकि देश के कई क्षेत्रों में समतुल्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित की जा सके जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का लक्ष्य भी है। जब विभिन्न पृष्टभूमियों के बच्चे एक साथ पढ़ते है तो उससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तो होती ही है; स्कूल का माहौल भी समृद्ध होता है। अगर पाठ्यचर्या का वह दृष्टिकोण (लचीलापन, संदर्भशीलता और बहुलता) जो इस दस्तावेज में दर्ज है, समान स्कूली पद्धति का आधार बनता है, तभी शिक्षा की एक ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्था साकार हो सकेगी जिसमें कोई भी दो असमान न होंगे।

उक्त उदाहरण में स्पष्ट है कि एन०सी०एफ०—2005 में कॉमन स्कूल सिस्टम करने की बात कही गई है। इसके पश्चात् कॉमन स्कूल सिस्टम के संबंध में एक आयोग का गठन किया गया।

समान विद्यालय प्रणाली आयोग 2007 (CSSC)

कॉमन स्कूल सिस्टम आयोग के अनुसार एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था/प्रणाली जिसमें जाति, सम्प्रदाय, समुदाय, भाषा, लिंग, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के आधार पर भेदभाव किए बिना सबको समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा दी जाती है। इसका केन्द्रीय समप्रत्यय है कि सभी विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के समान न्यून्तम मानदण्ड हो।

इस रिपोर्ट के अनुसार सर्वाधिक प्रमुख न्यूनतम मानदण्ड यह है कि कॉमन स्कूल सिस्टम भारतीय संविधान में उल्लेखित अवसरों की समानता और सामाजिक न्याय का सम्मान करें और उसे आगे बढ़ाये।

कॉमन स्कूल सिस्टम की विशेषताएँः—

कोठारी आयोग की अनुशंसा के अनुसार कॉमन स्कूल सिस्टम की विशेषताएँ निम्ननुसार हो सकती है।

(i) यह शिक्षा व्यवस्था किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना सभी के लिए खुली होगी।
(ii) इसमें शिक्षा व्यवस्था का आधार विद्यार्थी की आर्थिक स्थिति न होकर प्रतिभा हो।
(iii) इस व्यवस्था में उपयुक्त मानकों के अनुरूप किसी तर्कसंगत अनुपात में गुणवत्तापूर्ण संस्थाएँ उपलब्ध होगी।
(iv) इस व्यवस्था में कोई शिक्षण शुल्क नहीं होगा।
(v) एक सामान्य अभिवावक अपने बच्चों को उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने में सक्षम होगें। इसके लिये उन्हे मंहगे निजी विद्यालय नहीं भेजना पड़ेगा।
(vi) न्यूनतम स्तर पर सुविधाएँ यथा—भवन, पीने का पानी, शौचालय, पुस्तकालय, आदि की

सुविधाएँ उपलब्ध होगी।

(vii) प्रशिक्षित शिक्षक तथा छात्रों का अनुपात उपयुक्त होगा।

(viii) प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी।

(ix) प्रत्येक क्षेत्र में एक विद्यालय होगा जिसमें आस–पास के समस्त विद्यार्थी पढ़ सकें।

समान विद्यालय प्रणाली के मानदण्ड

1. आकर्षक स्कूल पर्यावरण।
2. प्राथमिक विद्यलयों हेतू कम–से–कम तीन उपयोगी वर्ग कक्ष तथा प्राथमिक विद्यालयों के लिए छः उपयोगी वर्ग–कक्षएँ तथा उपयुक्त सहायक सामग्री हो
   - शिक्षक हेतु व्लैकबोर्ड
   - बच्चों के लिए बोर्ड
   - उचित बैठने की व्यवस्था
   - अल्प लागत से निर्मित शिक्षण एड्स
3. प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय हेतु कम से कम तीन शिक्षक।
4. प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक विषय हेतु एक शिक्षक (भाषा, ईवीएस, सामाजिक विज्ञान तथा गणित के लिए कम से कम चार शिक्षक)।
5. निर्धन बच्चों हेतु मुफ्त वस्त्रों और अन्य सीखने की सामग्रियों जैसे मुफ्त पुस्तकें और मध्य दिवसीय भोजन से परें सहायक सेवाओं का विस्तार।
6. प्राथमिक विद्यालयों हेतु क्रैच तथा पूर्व विद्यालयों को निर्धन लड़कियों के बच्चों को भर्ती करने हेतु जो घर में छोटे बच्चों की देखभाल करती है उन्हें स्कूल में रखा जाता है।

समान स्कूल प्रणाली आयोग (2005–07) बिहार के परिप्रेक्ष्य में :–

बिहार सरकार के मानव संसाधन विकास विभाग ने अगस्त, 2006 को अधिसूचना के जरिय समान स्कूल प्रणाली आयोग का गठन किया। भारत के पूर्व विदेश सचिव मुचकुन्द दुबे इस आयोग के अध्यक्ष एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षा संकायाध्यक्ष डॉ० अनिल सदगोपाल इसके सदस्य सचिव बनाये गये। समान स्कूल प्रणाली आयोग के समक्ष निम्नलिखित विषय विचारार्थ रखे गयेः–

1. सरकारी या निजी तथा अन्य प्रकार के विद्यालयों एवं विभिन्न शैक्षिक धाराओं के ढाँचो और उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं में शामिल करते हुये राज्य की वर्त्तमान स्कूल प्रणाली का व्यापक अध्ययन संचालित करना।
2. राज्य के सभी बच्चों के लिए उचित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने हेतु मानक एवं मापदंडो तथा अन्य आवश्यक प्रावधानों की अनुशंसा करना इसके वित्तीय निहितार्थो का आकलन करना।
3. संविधान के अनुच्छेद 21(A) के अंतर्गत मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के बच्चों के लिए एक ढ़ाँचे की अनुशंसा करना।
4. राज्य में समान स्कूल प्रणाली के क्रियान्वयन हेतु एक कार्य योजना तैयार करना।
5. समान स्कूल प्रणाली के गठन के सिलसिले में गाँधी जी के बुनियादी विद्यालयों की गति निर्धारक भूमिका तथा जिला मुख्यालयों के लिए प्रस्तावित किये जा रहे आर्दश विद्यालयों की पड़ताल करना तदानुसार एक कार्य योजना की अनुशंसा करना।
6. राज्य के अंदर मौजूद तथा कार्यरत् अध्यापक शिक्षण संस्थाओं और अनेक क्रियाकलापों तथा पाठ्यचर्या का अध्ययन करना तथा समान स्कूल प्रणाली की जरूरतों के अनुसार उन्हें पुनर्गठित करने के उद्देश्य से अनुशंसाएँ करना।

अनुशंसाएँ (Recommendation)

ग्यारह माह का कार्यकाल पूरा करने के बाद आयोग ने 8 जून 2007 को बिहार सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंप दी। आयोग ने अपने रिपोर्ट में बिहार की स्कूली शिक्षा में बदलाव के लिए कई ऐतिहासिक अनुशंसाएँ की, जिनमें कुछ प्रमुख अनुशसाएँ निम्नलिखित हैः–

(i) बिहार में समान स्कूल शिक्षा प्रणाली लागू की जाए।

(ii) समान स्कूल प्रणाली में न्यूनतम एक वर्ष की पूर्व प्रारंभिक शिक्षा समाविष्ट किया जाए।

(iii) माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 9वीं से 10वी) का सर्वव्यापीकरण हो।

(iv) इस प्रणाली का विस्तार उच्चतर माध्यमिक स्तर तक किया जाए।

(v) 13 किस्म के विद्यालयों की जगह पैटर्न के निम्नलिखित तीन प्रकार के विद्यालय ही अस्तित्व में रखे जायें।

(क) पहली से 5वीं कक्षा तक प्राथमिक विद्यालय

(ख) पहली से 8वीं कक्षा तक के मध्य विद्यालय तथा

(ग) 9वीं से 12वीं कक्षा तक के उच्च माध्यमिक विद्यालय

(vi) हर प्राथमिक और मध्य विद्यालय के साथ एक वर्ष का बालवर्ग भी जोड़ी जाए।

(vii) अध्यापक की जगह विद्यालय शिक्षा समिति को मध्याह्न भोजन की जिम्मेदारी सौंपी जाए साथ ही भोजन पकाने एवं पड़ोसने की जिम्मेवारी माता समिति को दी जाए।

(viii) विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए समावेशी विद्यालय खोले जाए। इसके लिए सेवा–पूर्व, सेवा–कालीन एवं सेवारत अध्यापक शिक्षण के विशेष प्रबंध किए जाए।

(ix) तीन कि.मी. से ज्यादा दूरी वाली 9वी–12वीं कक्षा की सभी लड़कियों कों मुफ्त साइकिल मुहैया करायी जाए।

(x) अध्यापकों को किसी गैर–अध्यापकीय कार्यो में नहीं लगाया जाए।

(xi) विद्यालय प्रबंधन में विद्यालय शिक्षा समितियों की भूमिका सुनिश्चित की जाए।

(xii) वित्तरहित एवं निजी विद्यालयों, सरकारी सहायता प्राप्त मदरसें और संस्कृत विद्यालयों को समान स्कूल प्रणाली की परिधि और संस्कृत विद्यालयों को समान स्कूल प्रणाली की परिधि में लाया जाए।

(xiii) एस.सी.ई.आर.टी (SCERT) का पुनर्गठन एक स्वायत अकादमिक संस्थान के रूप में विकसित किया जाए।

(xiv) बिहार की स्कूली प्रणाली में गाँधीवादी शिक्षाशास्त्र को लागू किया जाए।

(xv) प्रत्येक जिला मुख्यालय में जिला आदर्श विद्यालयों की स्थापना की जायेगी।

उपर्युक्त अनुशंसाओं के साथ 2006 में बिहार सरकार ने समान स्कूल प्रणाली आयोग (2006–07) की रिपोर्ट में तब तक देश में सामान्य स्कूल प्रणाली लागू न होने पर प्रश्न भी उठाया और इस प्रणाली को पूरे देश में लागू करने पर बल दिया गया।

इसमें भी गोपालकृष्ण ने जब सन् 1991 में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का विधेयक पेश किया था तब भी उस समय की सामन्ती ताकतों ने इसे परित नहीं होने दिया था। वर्त्तमान संदर्भ में भी यदि हम देखे तो निजीकरण के कारण पूरे देश में एक साथ एक समान स्कूल प्रणाली (A Common School System) लागू करना मुश्किल होता जा रहा है। इसके साथ ही अब जरूरी होता जा रहा है कि राजनीतिक दलों को यह अहसास कराया जाये कि समान स्कूली व्यवस्था अपनाना कितना जरूरी है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को चाहिए कि वह समान शिक्षा प्रणाली अपनाये जो गरीबों एवं अमीरों में पृथक्करण को समाप्त कर दे व ऐसे समान स्कूलों की स्थापना करे जहाँ बच्चे चाहे वे किसी भी जाति, प्रजाति, धर्म, लिंग या वर्ग के हो, शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही देश के समस्त विद्यालयों, सरकारी, गैर–सरकारी, स्थानीय निकायों द्वारा सहायता प्राप्त, गैर सहायता को भंग कर दिया जाये व एक सामान्य प्रबन्ध समिति का प्रतिनिधित्व शुरू किया जाये।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते है कि राम मनोहर लोहिया के स्वप्न–वाक्य "राष्ट्रपति हो या चपरासी की संतान, सबकी शिक्षा एक समान", को यथार्थ की धरातल पर उतारने की पहल सबसे पहले कोठारी कमीशन ने की जिसपर NEP-1986 राम

मूर्ति समिति 1990, CSSC-2001 बिहार, ने अपनी–अपनी सिफारिशों से इसे साकार–वृक्ष का रूप देने का अथक प्रयास किया।

हालाँकि बिहार सरकार द्वारा गठित आयोग ने इस समान विद्यालय प्रणाली से संबंध जो सिफारिशे की उनमें से कुछ जैसे–साईकिल योजना, माता समिति का गठन आदि को क्रियान्वित किया गया इसके बावजूद सामान्य विद्यालय व्यवस्था को पूर्णरूपेण यथार्थ के धरातल पर उतारना अभी भी संभव नहीं हो सका है। अगर हम सामान्य विद्यालय प्रणाली के दिवास्वप्न करार दे तो यह अशियोक्ति न होगी।

इस प्रणाली को दिवास्वप्न करार देने वाले तमाम कारणों का विश्लेषण करने पर हम पाते है कि आज इस निजीकरण के दौर में अंसख्य विविधताओं से भरे भारत वर्ष में इस प्रणाली को साकार रूप देने के लिए अभी ईमानदार कोशिशें करने की जरूरत है।

इस प्रकार से आज हमें उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण को समझते हुए शिक्षा पर इनके प्रभावों से भी हमें अवगत होना होगा, साथ ही समयानुकूल इसके तहत उचित निर्णय लेने की आवश्यकता भी होगी।

______:o:______

प्रश्न संग्रह

1. कॉमन स्कूल सिस्टम से आप क्या समझते है?
2. कॉमन स्कूल सिस्टम की चुनौतियों की समीक्षा करें।
3. कॉमन स्कूल सिस्टम के उद्देश्य तथा विशेषताओं का वर्णन करें।
4. बिहार सरकार द्वारा गठित कॉमन स्कूल सिस्टम कमीशन की सफलताओं की विवेचना करें।
5. वंचित वर्ग से क्या समझते हैं?
6. वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा करें।
7. उपेक्षित वर्ग–दलित, अल्पसंख्यक एवं आदिवासी वर्गों की शिक्षा पर प्रकाश डालिए।
8. अभिवंचित वर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जातियों के बच्चों के शैक्षिक विकास की नीतियाँ, कार्यक्रम एवं योजनाओं का वर्णन कीजिए।
9. गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के आवश्यक तत्वों पर प्रकाश डालें।
10. शिक्षा के निजीकरण के प्रभावों की चर्चा करें।
11. सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझतें हैं?
12. 'आधुनिकीकरण' का अर्थ स्पष्ट करें।
13. 'वैश्वीकरण' की अवधारणा को स्पष्ट करें।

संदर्भः–

1. रूहेला. एस०पी०, शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
2. रूहेला, एस०पी०, भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
3. मदान, पूनम, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार बुकमैन।
4. सिंह अर्चना, शिक्षा के समकालिन मुद्दे, ठाकुर पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, लखनऊ।

e- संदर्भः–

(i) http://mpbou.edu.in
(ii) www.tppl.org.in>first-year
(iii) https://uou.ac.in>files>slm

इकाई–3

शिक्षा के राजनैतिक एवं संवैधानिक संदर्भ

शिक्षा को किसी समाज की एक उपव्यवस्था माना गया है। शिक्षा की प्रक्रिया एक सामाजिक परिवेश में घटित होती है तथा समाज इस प्रक्रिया पर अपना नियंत्रण रखता है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान कर समाज को प्रभावित करती है। भारत एक लोकतांत्रिक समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, समतामूलक, राष्ट्रवादी और लोककल्याणकारी राज्य है, अतः यहाँ की शिक्षा का स्वरूप विभिन्न तरीकों से इनकी नीतियों, सिद्धान्तों और संस्थाओं से निर्देशित और प्रभावित होती है। स्वाभाविक तौर पर भारत के संवैधानिक लक्ष्यों और उद्देश्यों से भारत की शिक्षा की प्रकृति निर्धारित होती है। राज्य की शिक्षा कुशल एवं योग्य नागरिकों का विकास करती है, अतः किसी राज्य का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ के सभी नागरिक शिक्षित होकर नागरिकोचित कुशलता और योग्यता को प्राप्त करें। यही कारण है कि समतामूलक लोकतांत्रिक राज्य के रूप में भारत स्वतंत्रता के उपरान्त लगातार विभिन्न नीतियों, कार्यक्रमों एवं अभियानों के माध्यम से शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण हेतु लगातार प्रयासरत रहा है और काफी हद तक इसमें सफल रहा है। हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा शिक्षा को मानव का मूल अधिकार मानते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद–45 के माध्यम से 6 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था करने हेतु राज्य को निर्देशित किया गया तथा बाद में 86वें संविधान संशोधन के माध्यम से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में अधिनियमित किया गया। किसी राष्ट्र के समग्र विकास में शिक्षा की भूमिका अहम मानी जाती है।

अतः इस इकाई में लोकतंत्र के लिए शिक्षा के महत्व, शिक्षा के लिए राज्य की भूमिका, भारतीय संविधान में शिक्षा संबंधी प्रावधानों, शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण, बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार की प्रासंगिकता एवं राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- शिक्षा के विकास में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे।
- भारत की शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारतीय संविधान में शिक्षा संबंधी प्रावधानों को जान पायेंगे।
- शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण की अवधारणा और इसमें राज्य की भूमिका की समीक्षात्मक समझ बना पायेंगे।
- शिक्षा के अधिकार संबंधी संवैधानिक प्रावधानों एवं इससे संबंधित विमर्शों पर प्रकाश डाल पायेंगे।
- राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका और महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

1. राज्य, लोकतंत्र और शिक्षाः भारतीय संविधान के संदर्भ में

राज्य और शिक्षा

शिक्षा मानव–मात्र के जीवन–स्तर के उन्नत करने एवं उनमें मानव मूल्यों को विकसित करने का एक मौलिक साधन है। यह व्यक्ति में अन्तर्निहित शक्ति को सुषुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में लाने की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जीवन के वास्तविक सौन्दर्य और सद्गुणों की पहचान कर तथा उन गुणों को आत्मसात् कर वह एक जीवन जीने योग्य व्यक्ति बन पाता है। इस प्रकार शिक्षा एक प्रक्रिया और उत्पाद दोनों है। उत्पाद के रूप में शिक्षा का अभिप्राय है– अधिगम के द्वारा अर्जित ज्ञान, कौशलों, मूल्यों, अभिवृतियों और आदर्शों का कुल योग। वही प्रक्रिया के रूप में शिक्षा का तात्पर्य इन घटकों को व्यक्ति में विकसित करने की क्रिया है।

सर्वविदित है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे का पूरक है और आधुनिक विश्वव्यवस्था में व्यक्ति एक सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था में एक राजनैतिक इकाई का हिस्सा होता है, सामान्यतः इस राजनैतिक इकाई को राज्य कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य रूपी एक सुव्यवस्थ्ति सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों अर्थात् राज्य के नागरिकों के सम्यक् और सर्वांगीण विकास में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि शिक्षा को राज्य व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण उपव्यवस्था माना जाता है। शिक्षा की प्रक्रिया किसी राज्य की सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक परिवेश के अनुरूप संचालित होती है तथा इस प्रक्रिया पर राज्य नियंत्रण रखती है या यूँ कहें कि इस प्रक्रिया को राज्य व्यापक रूप से प्रभावित करती है। किसी राज्य की शिक्षा उस राज्य के मुख्य अभिलक्षणों जैसे–राज्य के लक्ष्यों, मूल्यों, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है। प्रत्येक राज्य शिक्षा को अपने हितो की रक्षा तथा संवर्द्धन के लिए एक साधन के रूप में प्रयोग में लाते हैं।

जहाँ एक ओर शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण होता है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा राज्य के लक्ष्यों और उद्देश्यों की सम्प्राप्ति में अपना योगदान कर राज्य के भावी स्वरूप और संरचना को प्रभावित करती है। शिक्षा किसी राज्य को मानव संसाधन के रूप में प्रशिक्षित व कुशल मानव शक्ति को विकसित कर और नियमित रूप से उपलब्ध कराकर उत्पादकीय उर्जा को संचारित करती है। इस प्रकार उपलब्ध मानव संसाधन राज्य को उसके लक्ष्यों की सम्प्राप्ति में सहायता करते है। शिक्षा व्यक्तियों की बौद्धिक योग्यताओं का विकास करती है तथा उन्हे इस योग्य बनाती है कि वे स्वयं अपने राज्य और समाज की प्रकृति, उसके ढाँचे तथा प्रकार्यो की समीक्षा कर सकें। उससे राज्य और समाज में गतिशीलता कायम रहती है तथा राज्य समय के सापेक्ष प्रगति पथ पर अग्रसर बना रहता है। इस प्रकार शिक्षा अनिवार्य रूप से अपने राज्य के विभिन्न वातावरणीय परिस्थितियों पर प्रभाव डालती है तथा स्वयं उन परिस्थितियों से प्रभावित होती है और उस पर आश्रित होती है।

निःसंदेह प्रत्येक राज्य की यह अपेक्षा और आकांक्षा होती है कि वह कुछ ऐसे कार्य करे जो उनके नागरिकों के हित में उपयोग हो। राज्य की एक उपव्यवस्था के रूप में शिक्षा सर्वोपयोगी जिन गुणों से उसके नागरिकों को संपन्न करती है, उनमें मुख्य है– समाजीकरण, सामाजिक मूल्यों, आदर्शो तथा संस्कृतियों का संरक्षण एवं संचारण। किसी राज्य के सामाजिक मूल्यों, आदर्शो, आस्थाओं के अनुरक्षण, संचालन तथा सृजन के द्वारा शिक्षा तिहरे सामाजिक प्रकार्य को संपन्न करती है। अपनी संरक्षी भूमिका के अन्तर्गत यह बहुमूल्य विरासत, मूल्यों, आदर्शो तथा संस्कृति को परिरक्षित रखती है। दूसरे, यह समाज के मूल्यों, आदर्शो, आस्थाओं तथा संस्कृति के लिए उद्देश्य की प्रतिपूर्ति के लिए

उदीयमान मानव पीढ़ी को विभिन्न प्रकार के कौशलों जैसे सामाजिक अन्तःक्रिया, संवेगात्मक विकास, शारीरिक जानकारी, सौन्दर्यात्मक चेतना और बोध तथा आध्यात्मिक अनुक्रिया प्रदान करती है।

एक राज्य की परिधि में बच्चों का समाजीकरण, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य माना गया है। किसी राज्य के मूल्य, आदर्श, लक्ष्य, लोकाचार, परम्पराएँ तथा संस्कृति बच्चे को समाज का एक प्रभावी सदस्य बनाने के लिए उसमें अवश्य ही विकसित किया जाना अपेक्षित होता है। वास्तव में पारिवारिक शिक्षा से लेकर औपचारिक अथवा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण है बच्चों या व्यस्कों का समाजीकरण करना। बच्चों के समाजीकरण के द्वारा उनकों उनके सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूक बनाकर और नेतृत्व करने का प्रशिक्षण देते हुए शिक्षा के द्वारा सामाजिक व्यक्तियों का जन्म होता है।

अपने संरक्षी तथा प्रसारी भूमिकाओं के द्वारा शिक्षा राज्य, राज्य—व्यवस्था तथा राज्य—नियंत्रण को परिरक्षित, अनुरक्षित तथा स्थायित्व प्रदान करने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करती है। चुँकि यह एक सृजनात्मक शक्ति के रूप में कार्य करती है, अतः शिक्षा की राज्य और समाज के प्रति एक गतिशील भूमिका होती है। उसमें राज्य की प्रगति को आरंभ करने, प्रेरक शक्ति प्रदान करने तथा प्रभावित करने की अहम शक्ति होती है। अपनी सृजनात्मक भूमिका के अन्तर्गत शिक्षा व्यक्ति के मन को सामाजिक उन्नति, प्रगति तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लिए साधन के रूप में प्रयोग में लाती है। जैसा कि **ब्रोधम हेनरी** ने कहा है कि शिक्षा से व्यक्तियों को नेतृत्व देना तो सरल हो जाता है, लेकिन उन्हे हांकना कठिन; उन पर शासन करना तो सरल हो जाता है परन्तु उन्हें दास बनाना असंभव। नए ज्ञान तथा विचारों के प्रचार व प्रसार से शिक्षा व्यक्ति के मन—मस्तिष्क को प्रभावित कर सकती है। यह व्यक्ति को सामाजिक समस्याओं के प्रति सजग व सचेत करती है। सही अर्थ में शिक्षित व्यक्ति ही मन के चेतन रूप में राज्य व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था की सामूहिक प्रगति तथा सुविधा को प्राप्त कर सकते है।

किसी राज्य के लिए अपने उन महत्वपूर्ण दायित्वों के निर्वहन से शिक्षा स्वयं में एक सामाजिक प्रकार्य का रूप ग्रहण कर लेती है। शिक्षा के सामाजिक संदर्भ पर बल देते हुए शिक्षा के विकास पर अंतर्राष्ट्रीय आयोग स्पष्ट करता हैः—

''शिक्षा के इतिहास में जितना अधिक से अधिक दूर तक हम देख सकते है शिक्षा मानव समाज के विकास के सभी चरणों में एक सहज अभिलक्षण के रूप में उभरी है। इसका विकास कभी बंद नहीं हुआ है। यह मानवता के सर्वोत्कृष्ट विचारों की धारक तथा वाहक रही है।

अस्तु! ऊपरोक्त चर्चाओं के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते है कि शिक्षा किसी राज्य की सामाजिक व्यवस्था की एक ऐसी उपव्यवस्था है जो एक ओर राजकीय नियंत्रणों एंव प्रभावों के अंतर्गत कार्य करता है तो दूसरी ओर अपने स्वयं के प्रकार्यो द्वारा राज्य के विभिन्न तत्वों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। शिक्षा अपना यह कार्य मानव इतिहास के सभी महान व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयत्नों का हिस्सा बनकर संपन्न करती है। यह एक त्रिआयामी सामजिक प्रकार्य करती है जिसमें सामाजिक मूल्यों, आदर्शों तथा आदतों का परिरक्षण एवं परिष्करण, संप्रेषण एवं प्रसारण तथा सृजन सम्मिलित होता है। यह समाज के मूल्यों, आदर्शों तथा ज्ञान को व्यक्तियों में संचारित कर एक बच्चे का समाजीकरण करती है तथा उसमें एक सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

लोकतंत्र और शिक्षा

'**लोकतंत्र**' शब्द का अंग्रजी रूपान्तरण **डेमोक्रेसी (Democracy)** होता है, जिसकी व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दो "डेमोस" और "क्रैटॉस" से मिलकर हुआ है। 'डेमोस' का अर्थ है "लोग या लोक" तथा

क्रैटॉस का अर्थ है "शक्ति"। अतः 'डेमोक्रेसी' का अर्थ हुआ 'लोकशक्ति' या 'जनशक्ति' अरस्तू के अनुसार लोकतंत्र का अर्थ है 'बहुजन शासन'। प्राचीन एथेंस में लोकतंत्र अपनी पराकाष्ठा पर था। ग्रीक भाषा में लोकतंत्र का तदनुरूप शब्द एक ऐसी प्रणाली की ओर संकेत करता है जिसमें शासन का कार्य लोगों के हाथ में हो।

भारत में ईसा से 2000 वर्ष पूर्व तथा 1500 वर्ष पूर्व के मध्य "आर्य" भी लोकतंत्रीय जीवन पद्धति में आस्था रखते थे तथा इन्होने इसे भली–भाँति पोषित भी क्रिया। उस समय जनपदो, पंचायतो, दलों तथा समितियों के रूप में प्राचीन लोकतंत्रीय संस्थाएँ हुआ करती थीं, जहाँ सत्ता वास्तव में लोगों के हाथ में होती थी। ये संस्था न तो केन्द्रीकृत थी और न हीं वंशानुगत, अपितु सहभागिता परक शासन पद्धतियाँ थी। पारस्परिक बंधुत्व (वसुधैव कुटुम्बकम्) की भावना ही आर्यों के लोकतंत्र की आधारशिला थी।

लोकतंत्र और शिक्षा में एक धनिष्ठ संबंध होता है। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, व्यक्ति की गरिमा, सहयोग व उत्तरदायित्व जैसे लोकतांत्रिक सिद्धांत कुछ ऐसे आयाम हैं जिनका शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर शिक्षा भी अपनी विभिन्न अवस्थाओं और आयामों में एक लोकतंत्रीय जीवन पद्धति को आंतरिक रूप से अभिप्रेरित करती रहती है। शिक्षा को अधिक सार्थक, संगत व उपयोगी बनाने के लिए उसकी समस्त प्रक्रिया में लोकतंत्रीय मूल्यों और सिद्धांतो का प्रयोग करना समुचित प्रतीत होता है। इसी प्रकार शिक्षा के बिना कोई लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि किसी भी सभ्य समाज के नागरिको को उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि हम चाहते हैं कि लोकतंत्र यथार्थ रूप धारण करे अर्थात् यह एक जीवन पद्धति का रूप ले तो यह आवश्यक है कि शिक्षा के द्वारा आरंभ से ही विद्यालयी व्यवस्था में उसके मूल्यों को व्यवहार में लाया जाए।

भारत की शिक्षा व्यवस्था में प्रयुक्त लोकतंत्रीय सिद्धान्त

भारतीय लोकतंत्र में मुख्यतः चार मूल सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं जो इस प्रकार हैः स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व तथा न्याय। भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित है किः "भारत का प्रभुत्व संपन्न, लोकतंत्रीय गणराज्य अपने नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और उपासना की स्वतंत्रता; अवसर और पद (Status) की समानता सुनिश्चित करेगा तथा उन सभी में बंधुत्व की भावना को उन्नत या विकसित करेगा जिससे व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित की जा सके। "इस प्रकार भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न लोकतंत्रीय सिद्धांत दृष्टिगोचर होते है, जो निम्नवत् हैः–

1. **शिक्षा में स्वतंत्रता–** भारतीय लोकतंत्र में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि शिक्षा स्वतंत्र माध्यम से दी जाए और बच्चे को एक मुक्त वातावरण में ही शिक्षित किया जाए। भारतीय शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य बच्चों(भावी नागरिकों) में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता का भाव और विचार विकसित करना है। शिक्षा इन बच्चों को इस योग्य भी बताए कि वे अपने कर्त्तव्य का निष्पादन तथा अपने दायित्वों के निर्वहन में संविधान प्रदत स्वतंत्रता का उपयोग सत्यनिष्ठा और विश्वास के साथ कर सकें।
2. **शिक्षा में समानता–** भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जाति, रंग, सामाजिक अवस्थिति, प्रतिष्ठा, आर्थिक अवस्था आदि पर बिना कोई ध्यान दिए परिमाणात्मक समानता पर विशेष बल दिया जाता है। शिक्षा आयोग (1964–66) को प्रेक्षण बिल्कुल सही है कि, "शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अवसरों की समानता की प्राप्ति है जिससे पिछड़े, पद दलित तथा शोषित वर्गो के बच्चे भी इस

योग्य हो जाएँ कि वे शिक्षा को अपनी दशा सुधारने के लिए उत्तोलक की भाँति प्रयोग में ला सकें।

3. **शिक्षा द्वारा बंधुत्व की भावना–** विश्वव्यापी बंधुत्व भारतीय लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है अतः उसकी भारतीय शिक्षा में मूल सार्थकता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था का मूल उद्देश्य विद्यार्थी, अध्यापक, माता–पिता और गैर–शिक्षक कर्मचारी सभी में प्रेम, स्नेह, सहानुभूति तथा पारस्परिक समझ विकसित करना तथा उनमें बंधुत्व की भावना का विकास करना है। शिक्षा के द्वारा भारत के भावी नागरिकों में "वयम् मनोदशा" तथा राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाना है।
4. **शिक्षा में न्याय–** भारतीय लोकतंत्र में उपरोक्त विशेषताओं को विकसित करने के लिए यह अनिवार्य है कि शिक्षा में न्याय को सुनिश्चित किया जाए। न्याय की अवधारणा के लिए शैक्षिक अवसरों का सामान्यीकरण, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व की भावना मूल संप्रत्यय है। विद्यार्थियों को एक नागरिक के रूप में शिक्षित–प्रशिक्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि भावना को विकसित किया जाए। यदि हम चाहते हैं कि शिक्षा प्रक्रिया में न्याय की भावना स्थानिक रूप ले तो किसी भी प्रकार के अनुचित या अन्यायपूर्ण व्यवहार को चाहे वह विद्यार्थियों की ओर से हो या फिर अध्यापकों की ओर से, दबाना होगा।
5. **शिक्षा में उत्तरदायित्वों की साझेदारी–** शिक्षा व्यवस्था से जुड़े सभी शेयरधारकों यथा–विद्यार्थी, अध्यापक, माता–पिता, पर्यवेक्षक आदि सभी वर्गों के लोगों का यह सामूहिक उत्तरदायित्व है कि शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में अपने–अपने तरीके से और अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार अपने लिए निर्धारित दायित्वों एवं कर्त्तव्यों का सम्यक् निर्वहन कर अपना अहम योगदान देना सुनिश्चित करें। भारतीय संविधान की दृष्टि से भारत गणराज्य का प्रत्येक नागरिक समान है और सभी के अपने विचार या मत होते है जिन्हे अभिव्यक्ति मिलती चाहिए।
6. **शिक्षा में सहयोग की भावना–** शिक्षा तथा लोकतंत्र परस्पर सहयोगात्मक उद्यम है। समाज के सभी सदस्य इस उद्यम में सक्रिय रूप से भागीदार हैं। शिक्षा के सभी पक्षों में सहयोग का उपयोग भारतीय लोकतंत्र का एक सिद्धान्त है। अतः विद्यार्थियों में परस्पर सहयोग, टीम भावना तथा सामूहिक क्रियाकलाप के गुणों को विकसित करना; शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय लोकतंत्र के मूल सामाजिक आदर्शो स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, अवसर की समता और अभिव्यक्ति की आजादी की सम्प्राप्ति के लिए शिक्षा को अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रभावकारी उपकरण माना गया है। यह देश के नागरिकों में वांछनीय अभिव्यक्तियों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का मुख्य उपकरण है। भारतीय लोकतंत्र का उद्देश्य केवल समान अवसर प्रदान करना नहीं है अपितु सही कार्य करने के अवसर प्रदान करना भी है। विद्यार्थियों में जिम्मेवारी की भावना विकसित करना, स्वेच्छाचारिता एवं स्वकेन्द्रिता प्रेरित अन्याय को कम करना भारतीय लोकतंत्र का सूत्र वाक्य है। भारतीय लोकतंत्र का उद्देश्य अपनी आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए जागरूक, संवेदनशील, सुशिक्षित और प्रबुद्ध नागरिक का विकास करना है। अतः भारतीय लोकतंत्र में जन–जन तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न संवैधानिक उपबंधों को संरचित और क्रियान्वित किया गया जिसका उल्लेख इस उपइकाई के आगे के भाग में की जायेगी।

2. शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण : अवधारणा, अवरोध और राज्य की भूमिका

शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण : अवधारणा

शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण का अर्थ है कि प्रारंभिक शिक्षा तक समाज के सभी वर्ग के 6 से 14 की आयु तक के बच्चों की बिना किसी भेदभाव के पहुँच हो । समाज के सभी वर्ग के बालक और बालिकाएँ कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से प्राप्त कर सकें। सभी का नामांकन हो । सभी नामांकित बच्चे प्रतिदिन विद्यालय आएँ। वहाँ इनका ठहराव सुनिश्चित हो तथा सभी के उपलब्धि स्तर में भी वृद्धि हो। इन्हें संतोषप्रद गुणवत्ता वाली निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त हो। इसके लिए सर्वव्यापी पहुँच, शत–प्रतिशत नामांकन, शत प्रतिशत ठहराव और शत प्रतिशत अधिगम उपलब्धि की सम्प्राप्ति जैसी बातें आवश्यक है। शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण से हमें सुयोग्य देशभक्त नागरिकों के निर्माण में सहायता मिलेगी, जिससे वे व्यक्तिगत निहित स्वार्थो का परित्याग कर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की ओर अग्रसर हो सकेंगे। जैसा कि पूर्व में भी लिखा गया है कि किसी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली की आधारशिला वहाँ की प्राथमिक शिक्षा होती है। भेदभाव रहित अनिवार्य शिक्षा लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। भावी नागरिक अपने कर्तव्य और अधिकार के प्रति जागरूक होकर जीवन की सामान्य समस्याओं के समाधान की क्षमता अपने आप में विकसित कर सकेंगे। सर्वव्यापी शिक्षा से राजनीतिक जागरूकता प्राप्त कर वे सही जन प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकेंगे और प्रजातंत्र के लक्ष्य और उद्देश्यों को सफलीभूत कर सकेंगे। समाज में व्याप्त भेदभाव को सर्वव्यापी शिक्षा ही दूर कर सकती है।

भारत का शैक्षणिक इतिहास बहुत गौरवशाली रहा है। इसकी ख्याति ने एक ओर देश–विदेश से लोगों को शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी है तो वहीं दूसरी ओर एक विशाल जनसमूह शिक्षा के अधिकार से वंचित भी रहा है जो 'चिराग तले अँधेरा' को चरितार्थ करता है। भारतीय इतिहास के पन्नों में ऐसे कई कर्ण या एकलव्य हैं जो प्रतिभावान होते हुए भी जाति के नाम पर शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरू कृपा की प्रतीक्षा करते रह गए। शिक्षा में अवसर की असमानता शिक्षायी वर्चस्व का एक उदाहरण है। उत्तर वैदिक काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का वर्चस्व तो कायम हुआ हीं साथ ही जाति प्रथा की उस विष वृक्ष का बीजारोपण किया गया जो आज तक राष्ट्रीय चुनौती का मुद्दा बना हुआ है। लोक भाषाओं में शिक्षा देने की बात कर बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति ने जनसाधारण को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया परन्तु इस शिक्षा पद्धति ने भी वैसे लोगों के नामांकन पर रोक लगा दिया जो राजा की सेवा में थे, कर्जदार थे, दास थे, जिनका अंग भंग था, जिन्हें खराब और छूत की बीमारी जैसे– क्षय, कोढ़ हो। 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक कुछ समुदायों ने शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु सराहनीय कार्य किये जिसमें मुस्लिम समुदाय द्वारा स्थापित मकतब और मदरसा, हिन्दुओं के द्वारा स्थापित संस्कृत अध्ययन केन्द्र और मिशनरियों के द्वारा चलाये जा रहे अंग्रेजी विद्यालय आदि थें लेकिन वे मूलरूप से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक वर्चस्व के सूचक थे। एक लम्बे अरसे तक सबके लिए शिक्षा वाद–विवाद का मुद्दा बना रहा। औपनिवेशिक भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ सुदूर ग्रामीण एवं जनजातीय इलाकों में इसाई मिशनरियों द्वारा किया गया। 1813 के आज्ञापत्र से उत्पन्न भाषाई विवाद सुलझाने के लिए मैकाले का विवरण पत्र भी इस बात की पुष्टि करता है कि 'हमें इस समय एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना है जो हमारे और उनलोगों के बीच दुभाषीया का कार्य करें, जिन पर हम शासन करते हैं'। जाहिर है कि उनका मकसद शिक्षा सबों तक पहुँचना नहीं था, वरन वैसे लोगों को ही आगे बढ़ाना था जिन्होंने शिक्षा पर अपना एकाधिकार जमा लिया था और सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अपने निजी स्वार्थ हेतु आगे बढ़ाना नहीं चाहते थे।

इस बात का आशय मैकाले के बहुचर्चित 'निस्पंदन का सिद्धांत' (law of downward filteration) में भी दिखता है। उनका मानना था कि शिक्षा का नियोजन केवल उच्च वर्गों के व्यक्तियों के लिए होना चाहिए तथा इनसे छन–छन कर शिक्षा निम्न वर्गों तक पहुँचेगी। भारत में व्याप्त सामाजिक विषमताओं ने इस राजनैतिक मनसे की पूर्ति में सहयोग दिया, फलस्वरूप एक ऐसे अभिजात्य वर्ग का गठन हुआ जो ऐसे लोगों से मिलना–जुलना तो दूर हमेशा उनके शोशण के तरीके ढूँढते रहते थे।

इसके विरोध में कई समाज सेवकों ने निम्न, कमजोर और वंचित वर्गो की शिक्षा के लिए आवाज उठाई।

शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए समानता के सिद्धांत की घोषणा 1833 ई0 में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में की गयी जो खंड संख्या 87 में उल्लिखित है। ''किसी भी देशवासी को उनके धर्म, जन्मस्थान, वंश उत्पत्ति अथवा रंग या इनमें से किसी एक के आधार पर कंपनी में किसी स्थान, पद या नौकरी पर बने रहने के अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है''। इस घोषणा ने जहाँ एक और समानता की बात कही वहीं दूसरी और शिक्षा का आर्थिककरण कर उसे धीरे–धीरे जन साधारण से दूर भी कर दिया।

ब्रिटिश उपनिवेशकाल में कुछ भारतीय व विदेशी शिक्षाविदों जैसे इब्राहिम रहिमतुल्लाह, सर चिमनलाल सीतलवाड़, ज्योतिबा फुले आदि ने शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के विचार उठाये। इसका मूर्त रूप मराठवाडा में देखा गया जब महात्मा ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी के सहयोग से महिलाओं के लिए तथा अछूत कहे जाने वाले लोगों के लिए पहले विद्यालय की स्थापना की। 1854 के वुड डिस्पैच जो शिक्षा के क्षेत्र में 'मैग्नाकार्टा' के रूप में जाना जाता है ने प्रत्यक्ष रूप से देशी विद्यालयों को प्रश्रय दिया और छात्रवृति, अनुदान प्रणाली जैसे कई उदारवादी निर्णय लिए। लेकिन सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी की प्रधानता देकर उसे पुनः उसी स्थान पर खड़ा कर दिया जहाँ से सफर शुरू हुआ था। तबतक शिक्षा के लिए भारतीयों के प्रयास तेज हो चुके थे सन् 1882 में दादाभाई नौरोजी, भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं ज्योतिबा फुले जैसे महान समाज सुधारक, नेता और शिक्षाविदों ने भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर आयोग) के समक्ष इसकी माँग रखी। 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद विभिन्न ऐतिहासिक राष्ट्रीय गतिविधियों द्वारा भारतीयों ने ब्रिटिश शासन व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया। भारतीयों ने पाश्चात्य शिक्षा के विरोध में राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की। 1893 में बड़ोदा महाराज ने सबों के लिए प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने की शुरूआत आम रैली ताल्लुका से किया। 1906 तक इस राज्य के अधिकांश हिस्सों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की गई। 1910 में गोपाल कृष्ण गोखले ने 'इम्पीरियल विधान परिषद्' के समक्ष 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा' के लिए प्राइवेट मेम्बेर्स बिल प्रस्तावित किया जिसमें मुख्य रूप से इन बातों को रखा गया।

''.......... इस देश में राज्य को जन शिक्षा के सन्दर्भ में उसी तरह की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए जैसे कि अधिकांश देशों की सरकारें पहले से ही कर रही है....... इसी पर उन लाखों–करोड़ो लोगों के बच्चों की बेहतरी निर्भर करती है जो शिक्षा के प्रभाव में आने की प्रतीक्षा कर रहे है। इस विधेयक का उद्देश्य देश की प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली में अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमशः लागू करने की व्यवस्था करना है।''

कतिपय कारणों से इस विधेयक को स्वीकृति नहीं मिल पायी। 1917 में पुनः बिठ्ठल भाई पटेल के प्रयास से अनिवार्य शिक्षा का बिल पास हुआ जो 'पटेल एक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हआ। इसके फलस्वरूप 1918–1920 तक ब्रिटिश भारत के कई प्रान्तों ने अनिवाय शिक्षा अधिनियम पारित कर इसे समवर्ती सूची में शामिल कि गई।

प्राथमिक शिक्षा का दायित्व जिला परिषद् और नगरपालिकाओं को सौंप दिया गया। 1929 के 'हर्टांग समिति (Hurtong Committee) ने प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले अपव्यय और अवरोधन की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए प्राथमिक शिक्षा की अवधि कम करने, नए विद्यालय खोलने के बजाय अवस्थित विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार की बात कह प्राथमिक शिक्षा के विकास को अवरूद्ध किया। वुड–एबट डिस्पैच (1935–37) ने मातृभाषा को आधार बनाकर शिक्षा के सार्वजनीकरण के विचार रखे। 1937 में प्रांतीय सरकार के गठन के बाद देश में लोकप्रिय मंत्रिमंडलों ने शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रयास किया। यह सरकार मात्र दो वर्ष रही और द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य से निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के विचार स्थगित हो गए। इसी दौरान स्वतन्त्रता आन्दोलन के अग्रगण्य महात्मा गाँधी ने विदेशी सरकार से प्राथमिक विद्यालय हेतु धन राशि की माँग की, परन्तु अंग्रेजी सरकार ने कहा कि शराब की विक्री से प्राप्त आय शिक्षा के लिए दी जा सकती है। इसका कडा विरोध करते हुए गाँधी जी ने अपनी पत्रिका 'हरिजन' में लिखा– 'नए सुधारों की क्रुरतम विडम्बना इस बात में निहित है कि हमारे लिए कुछ नहीं छोड़ा गया ....हमारे बच्चों की शिक्षा देने के क्रम में शराब प्राप्त राजस्व वापस लौटाया जा रहा है।'' इस घोषणा से आहत गाँधी जी ने स्व–पोषित शिक्षा की शुरूआत की जो आगे चल कर नई तालीम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महात्मा गाँधी के बुनियादी शिक्षा के विचारों की रिपोर्ट डॉ जाकिर हुसैन समिति के प्रतिवेदन के रूप में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन (1938) में विचारार्थ रखे गए जिसमें संपूर्ण राष्ट्र में शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु सात वर्ष की अवधि में मातृभाषा में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रस्ताव रखे गए। आगे चलकर बी0 जी0 खेर समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों से 6–14 आयु वर्ग के बच्चों की बुनियादी शिक्षा मातृभाषा में शुरू करने के सुझाव दिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत में केंदीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने सार्जेंट योजना (1943–44) के रूप में शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए बुनियादी शिक्षा और खेर समिति की संस्तुतियों को स्वीकर कर प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लगातार राष्ट्रीय शिक्षा की माँग करती रही। शिक्षा पर भारतीय नियन्त्रण, राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय चरित्र के विकास, भारतीय भाषा में शिक्षा, पाश्चात्य ज्ञान पर बल व्यावसायिक शिक्षा जैसे विचारों द्वारा शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रयास किये जाते रहें। सन् 1947 में भारत ब्रिटिश दासता से स्वतंत्र हो गया।

शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण : अवरोध

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण के प्रयासों की चर्चा की पूर्व शिक्षा की सार्वभौमिकीकरण के मार्ग में उत्पन्न मुख्य अवरोधों की चर्चा करना आवश्यक होगा। ये अवरोध निम्नलिखित है :—

1. संस्थानों की अनुपलब्धता	2. पाठ्यक्रम,
3. गरीबी	4. प्रशासनिक कमी,
5. शिक्षा की गुणवता में कमी	6. प्राकृतिक कठिनाइयों,
7. शिक्षा की गुणवता में कमी	8. धन का अभाव
9. पारिवारिक वातावरण	10. प्रशिक्षित अध्यापकक का अभाव
11. लिंग—भेद	12. आधारभूत संरचना का अभाव
13. शारीरिक निःशक्तता	14. प्रेरणा का अभाव,
15. सामाजिक स्तर में असमानता	16. घर विद्यालय दानों में ही शिक्षा के अनुकूल वातावरण का अभाव।
17. भाषागत कठिनाई	18. अशिक्षा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष तक के सभी बालक—बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का संकल्प लिया गया। जिसके लिए 1951 की प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लिए 85 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान किया गया। मुदालियर आयोग ने ग्रामीण भारत और भारतीय विविधता के मद्देनजर मातृभाषा/लोकभाषा में शिक्षा की सिफारिश कर लोकव्यापीकरण की दिशा में प्रयास किये। इसी बीच कोठारी आयोग (1964—66) ने शैक्षिक अवसर की समानता पर बल दिया तथा सरकार का ध्यान पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, कबिलाई एवं यायावर बच्चों की शिक्षा की ओर आकर्षित कर शिक्षा के सर्वभौमिकरण के प्रयास किये। साथ ही प्राथमिक स्तर पर होने वाले अपव्यय एंव अवरोध को रोकने का सुझाव दिया। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष 1979 में 6—14 आयु वर्ग के ऐसे बच्चे जो किसी कारणवश विद्यालय नहीं जा पा रहे थे, उनके लिए निरौपचारिक शिक्षा (Non formal Education) प्रारंभ किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के खंड 4 का शीर्षक 'समानीकरण के लिए शिक्षा (education for equality) के तहत भेदभाव की समाप्ति और अभिवंचित समूह की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर शैक्षिक अवसर के समानीकरण पर विशेष जोर दिया। जिला स्तर पर शैक्षणिक शोध, संदर्भित पुस्तकों का विकास जैसे कार्यों के साथ—साथ प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का उन्मुखीकरण एवं उनके सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु DIET (जिला शिक्षण एंव प्रशिक्षण संस्थान) की स्थापना की गयी। इसके साथ—साथ राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली एवं राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षकों के उन्मुखीकरण हेतु प्रोग्राम फॉर मास ओरिएँटेशन ऑफ स्कूल टीचर्स (PMOST 1886—87, 88-89) चलाये गए। साथ ही ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड ;1889.90ए 1991.92 योजना के आलोक में शिक्षकों के विशेष उन्मुखीकरण (Special Orientation Program For Teachers (SPOT) (1993-94) जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किये गए। सर्वव्यापी पहुँच के लिए बसाव क्षेत्र के नजदीक विद्यालय की स्थापना की सिफारिश आचार्य राममूर्ति समिति (1990) ने भी की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की कार्यकारी योजना 1992 के प्रथम चार अध्याय क्रमशः स्त्री शिक्षा, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग की शिक्षा, अल्पसंख्यकों की शिक्षा तथा विकलांगों की शिक्षा से संबंधित है, जो शिक्षा सबों तक पहुँचने का प्रयास है। राज्य के सभी नागरिकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का विचार वस्तुतः मानवतावादी प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था की देन है। मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा जरूरी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के खंड 4 का शीर्षक समानीकरण के लिए शिक्षा (education for equality) के तहत भेदभाव की समाप्ति और अभिवंचित समूह की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर शैक्षिक अवसर के समानीकरण पर विशेष जोर दिया। जिला स्तर पर शैक्षणिक शोध, संदर्भित पुस्तकों का विकास जैसे कार्यों के साथ—साथ प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का उन्मुखीकरण एवं उनके सेवाकालीन प्रक्षिक्षण हेतु DIET (जिला क्षिक्षण एंव प्रक्षिक्षण संस्थान) की स्थापना की गयी।

दिसम्बर 1993 में विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाले नौ देश (चीन, भारत, पाकिस्तान, बंग्लादेश, ब्राजील, मैक्सिकों, नाइजीरिया, इंडोनेशिया और मिश्र) का प्रथम सम्मेलन भारत में हुआ, जिसमें 18 सूत्री घोषणा के माध्यम से 20 वीं सदी के अंत तक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण का संकल्प लिया गया। परिणामस्वरूप भारत नें वर्ष 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जिलों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (DPEP) कार्यक्रम शुरू किया गया। 15 अगस्त 1995 को अभिवंचित वर्ग के बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण को ध्यान में रखकर पौष्टिक आहार सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम मध्याह्न भोजन योजना प्रारम्भ की गयी।

नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997–2002 के दौरान प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापी पहुँच के लिए वर्ष 1998 में संयुक्त राष्ट्र के पाँच सदस्य देशों के सहयोग से जनशाला कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। भारत के राज्य सरकार के शिक्षामंत्रीयों की क्षिक्षण सर्वव्यापीकरण के उद्देश्य से बुलाई गई बैठक के समीक्षोपरान्त एक महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय परियोजना 'सर्व शिक्षा अभियान' के प्रारंभ की गई जिसके तहत नये विद्यालयों को खोलना, विद्यालय भवन का निर्माण, अतिरिक्त वर्ग कक्ष, पेयजल, शौचालय, निःशुल्क पाठ्यपुस्तक, कम्प्यूटर शिक्षा, अध्यापकों की नियुक्ति एवं अध्यापकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। इससे विद्यालय छोड़नेवाले बच्चों की संख्या में गिरावट दर्ज की गई। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम नेशनल प्रोग्राम ऑफ एजुकेशन फॉर गर्ल्स एंड एलीमेन्ट्री लेवल (NPEGEL) शुरू की गयी। बाद में कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय (KGBV), वैकल्पिक एवं नवाचारी शिक्षा आदि प्रारंभ कर पुनः सर्व शिक्षा अभियान में इन सबों का विलय कर दिया गया।

सर्व शिक्षा अभियान :–

सर्व शिक्षा अभियान भारत में शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की दृष्टि से एक युगान्तकारी घटना साबित हुई है। इसके तहत सभी बस्तियों को स्कूली सुविधा तथा असेवित बस्तियों में शिक्षा गारण्टी योजना केन्द्र की सुविधा प्रदान करना, शत प्रतिशत नामांकन, ठहराव एवं संतोषप्रद स्तर की उपलब्धि सुनिश्चित करना है। सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम केन्द्र एवं राज्य सरकारों के सहयोग एवं सहभागिता से चलाया जा रहा है, जिसमें केन्द्र एवं राज्य की वित्तीय भागीदारी सुनिश्चित की गई है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के लिए वित्तीय भागदारी नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान क्रमशः 85 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत तय की गई, जबकि दसवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में यह भागीदारी क्रमशः 75 प्रतिशत एवं 25 प्रतिशत तय की गई। इसके बाद ही पंचवर्षीय योजना अवधि में यह भागीदारी 50–50 प्रतिशत निर्धारित की गई।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य :–

- 6 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी अनामांकित बच्चों को 2003 तक विद्यालय लाना।
- सार्वभौमिकीकरण का तात्पर्य 6 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए कक्षा पहली से आठवीं तक की प्रारंभिक शिक्षा की सुविधा 2010 तक सुनिश्चित करना।
- विद्यालय रहित बस्ती व टोले के लिए वैकल्पिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
- विद्यालय को आकर्षक एवं शिक्षण पद्धति को आनंददायी बनाकर विद्यालय से बाहर रह रहे बच्चों को विद्यालय की ओर उन्मुख करना।
- अच्छे जीवन के लिए संतोषप्रद एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना।
- समुदाय की अगुआई में विद्यालय–संचालन एवं अनुश्रवण की परिस्थिति पैदा करना।
- शिक्षक एवं समुदाय की सार्थक साझेदारी में विद्यालय का सर्वांगीण विकास करना।
- प्राथमिक स्तर पर 2007 तक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर 2010 तक शिक्षा के संदर्भ में लैंगिक एवं सामाजिक विभेद दूर करना अर्थात 2010 तक सर्वव्यापी ठहराव की स्थिति उत्पन्न करना।
- अततः प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण के संवैधानिक दायित्व को पूरा करना।

सर्व शिक्षा अभियान के उपर वर्णित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु एक व्यापक रणनीति बनाई गयी जिसके अंतर्गत संस्थागत सुधार, प्रभावी अनुश्रवण की व्यवस्था, सतत् वित पोषण, शिक्षा के प्रति चेतन और जागरूकता उत्पन्न करने हेतु समाजसेवियों, जनप्रतिनिधियों शिक्षकों, विद्यालय शिक्षा समितियों, अभिभावकों तथा महिला संगठनों से सहयोग प्राप्त करना, सामुदायिक स्वामित्व, संस्थागत क्षमता निर्माण, पारदर्शिता सामुदायिक अनुश्रवण, बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना सुनिश्चित की गई। सर्व शिक्षा अभियान के कार्यक्रमों को लागू करने हेतु अलग से कोई तंत्र विकसित नहीं किया गया, बल्कि अस्तित्व में कार्यरत शिक्षा–तंत्र को ही और

अधिक शक्तिशाली प्रभावी एवं पुनर्गठित किया गया एवं संयुक्त रूप से सर्वशिक्षा अभियान का दायित्व सौंपा गया।

राष्ट्रीय स्तर (National Level) – राष्ट्रीय स्तर पर पहले से ही प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग अलग से बनाया जा चुका है, जिसके प्रमुख संयुक्त सचिव (प्रारंभिक शिक्षा) होते है तथा इसे राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का महानिदेशक कहा जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर इस मिशन की सामान्य परिषद् का प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री होते है। इसके कार्यपालिका समिति के अध्यक्ष मानव संसाधन विकास मंत्री तथा उपाध्यक्ष प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, भारत सरकार के सचिव होते है।

राज्य स्तर (State Level) – राज्य स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु गठित राज्य मिशन प्राधिकरण के सामान्य परिषद् का अध्यक्ष राज्य के मुख्यमंत्री होते है। बिहार राज्य में मानव संसाधन विकास मंत्री (2011 के बाद) के नेतृत्व में शिक्षा विभाग अपना कार्य करती है। उनकी सहायता अर्थात् कार्यपालिका के रूप में प्रधान सचिव, सचिव, विशेष सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव एवं निदेशक कार्य करते है। राज्य कार्यक्रम निदेशक (State Programme Director) के नेतृत्व में बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् पटना प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का कार्य करती हैं।

जिला स्तर (District Level) – जिला स्तर सर्वशिक्षा अभियान का अध्यक्ष जिला पदाधिकारी होते है। इसके अतिरिक्त डायट के प्राचार्य, जिला शिक्षा पदाधिकारी, जिला कार्यक्रम पदाधिकारी (सर्व शिक्षा अभियान) आदि जिला स्तर पर इसकों क्रियान्वित करने है।

प्रखण्ड स्तर (Block Level) – प्रखण्ड संसाधन केन्द्र जिसके प्रमुख प्रखंड संसाधन केन्द्र समन्वयक होते है, के द्वारा सर्वशिक्षा अभियाना क्रियान्वित की जाती है।

संकुल स्तर पर संकुल समन्वयक (CRCC) के नेतृत्व में इस कार्यक्रम को क्रियान्वित की जाती है।

विद्यालय या गाँव के स्तर पर विद्यालय–संसाधन केन्द्र के प्रभारी शिक्षक द्वारा इसे क्रियान्वित की जाती है।

सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण में बिहार राज्य का प्रयास

प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण में बिहार सराकर ने भी अपनी ओर से पिछले दो दशकों में लगातार कई प्रयास किए है। अपने सिमित संसाधनों के बावजूद बिहार सरकार के प्रयास काफी नवाचारी, आकर्षक और सार्थक रहे है। चाहे विद्यालय के लिए आधारभूत संरचना का विकास हो या फिर बालिका शिक्षा के लिए पोशाक की सुविधा, इन प्रयासों से न सिर्फ इस आयु समूह में बच्चों में शिक्षा के प्रति लगाव बढ़ा है बल्कि अभिभावकों और समुदायों का भी विश्वास बढ़ा है। राज्य सरकार ने पिछले पाँच वर्षों में न सिर्फ बालिका शिक्षा समग्र विकास के लिए प्रयास किए है बल्कि महिलाओं में भी साक्षरता दर बढ़ाने के प्रयास किए है, जिसमें आशातीत सफलता मिली है। 2011 के साक्षरता आँकड़ें में बिहार में महिलाओं में साक्षरता वृद्धि की दर राष्ट्रीय वृद्धि की दर से आँकी गई है। महिलाओं में राष्ट्रीय साक्षरता वृद्धि की दर 16 प्रतिशत रही जबकि बिहार में यह दर 20.21 प्रतिशत रही है। राज्य सरकार के इस चहुँमुखी हस्तक्षेप से राज्य में प्रारंभिक शिक्षा में व्यापक उछाल देखा जा रहा है।

मुख्यमंत्री समग्र विद्यालय विकास योजना के अंतर्गत विद्यालयों के आधारभूत संरचना के विकास पर बल दिया गया है। इस योजना के अंतर्गत कई प्रकार के हस्तक्षेप किए गए है जो निम्नवत् है।

- विद्यालयों में बच्चों के लिए खेलकूद की सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए प्राथमिक विद्यालयों में 25 हजार रूपये तथा मध्य विद्यालय में 50 हजार रूपए की राशि राज्य सरकार उपलब्ध करवाती है। इस राशि से विद्यालय प्रांगण में फिसलन पट्टी झूला, सी–सा आदि का निर्माण करवाया जाता है। खेल सामग्रियों से युक्त शिक्षा बच्चों को आकर्षित करती है। इससे उनके ठहराव में मदद मिलती है।
- प्राथमिक और मध्य विद्यालयों के लिए चहारदिवारी निर्माण के लिए 1.5 लाख रूपए की राशि प्रदान की जाती है। चहारदिवारी युक्त विद्यालय आकर्षक होने के साथ–साथ सुरक्षित भी होता

है। सरकार के इस प्रयास में विद्यालयी गतिविधियाँ सही ढंग से सम्पन्न हो पाती है। अवांछित तत्वों का प्रवेश रूकता है।

- जीर्णोद्वार– इस योजना के अंतर्गत वैसे प्राथमिक विद्यालय को 50 हजार रूपए एवं मध्य विद्यालय को 1 लाख रूपए की राशि उपलब्ध कराई जाती है। जिन विद्यालयों में भवन पुराने, जर्जर या क्षतिग्रस्त हो चुके हों। इसके उद्देश्य विद्यालय भवन को आवश्यकतानुसार मरम्मत करके उसे सुरक्षित बनाना है ताकि पठन–पाठन भयमुक्त माहौल में हो सके।
- अतिरिक्त वर्ग कक्ष – प्रत्येक कमरें में 30 बच्चों के आराम पूर्वक बैठकर पढ़ने का प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान के अनुकूल ही विद्यालयों में अतिरिक्त वर्ग कक्ष का निर्माण किया जाता है ताकि विद्यार्थी और कमरे का अनुपात के ''शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' (Right to Education Act – RTE Act, 2009) के अनुसार है। इसके लिए सरकार प्रति वर्ष बजट में राशि का प्रावधान करती है।
- नए विद्यालय भवन/भवनहीन विद्यालय – इस योजना के तहत ''सर्व शिक्षा अभियान'' (SSA) की राशि से विद्यालय भवन का निर्माण का प्रावधान हैं। राज्य सरकार भूमिहीन विद्यालयों के लिए भूमि उपलब्ध कराने वाले व्यक्ति को सम्मान देते हुए उनके नाम को विद्यालय से जोड़ती है ताकि लोग इससे आकर्षित होकर स्कूल के लिए भूमि उपलब्ध कराएँ। इसके अतिरिक्त सरकार ने बाजार दर पर विद्यालयों के लिए भूमि खरीदने के लिए जिला प्रशासन को निर्देश दे रखे है।
- शौचालयों का निर्माण – विद्यालयों में साफ–सफाई के मद्देनजर दो यूनिट वाले शौचालयों के निर्माण का प्रावधान किया गया। इस कार्य हेतु राज्य सरकार को यूनिसेफ भी मदद करती है।

इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु बिहार सरकार द्वारा मुख्यमंत्री बिहार दर्शन योजना, बालक/बालिका पोषाक योजना, समुदाय विशेष और कामकाजी समूहों के बच्चों की शिक्षा के लिए उत्थान, उत्कर्ष, उन्नयन, उत्प्रेरण, केन्द्र एवं तालिमी मरकज और दीनी मकतब, मदरसा, अल्पसंख्यक बालिकाओं के लिए हुनर कार्यक्रम, 6 से 10 वर्ष तक के सृजनशील बच्चों में चित्रकारी, गायन, वादन, नृत्य जैसे गुणों की पहचान कर उन्हें एक मंच प्रदान करने के लिए किलकारी कार्यक्रम, पहलीं से पाँचवी कक्षा तक के बच्चों का ठहराव सुनिश्चित करने हेतु चल पढ़ कुछ बन आह्वान (पाक्षिक अखबार), कम्प्यूटर आधारित अधिगम परियोजना ई–सामर्थ्य (e-samarth) जैसी योजनाओं को संचालित एवं क्रियान्वित किया गया।

इस अभियान के तहत शिक्षकों के व्यवसायिक कौशल विकास को महत्व प्रदान किया गया तथा शिक्षकों में इन कौशलों के विकास तथा उन्हें पूरी तरह सशक्त बनाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 20 दिनों का प्रशिक्षण देना अनिवार्य कर दिया गया। इसमें 10 दिन आवासीय प्रशिक्षण BRC स्तर एवं 10 दिन गैर आवासीय प्रशिक्षण CRC स्तर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों में आत्मविश्वास एवं प्रस्तुतिकरण क्षमता विकास हेतु उजाला– 1, उजाला– 2, उजाला– 3, समझ, उत्साह, उत्कर्ष, प्रेरणा, समर कैम्प, इंग्लिश इज फन, समर्थ, फाउंडेशन पाठ्यक्रम, बोधि वृक्ष, बोधि संवाद आदि सेवाकालीन प्रशिक्षण समय–समय पर आयोजित किए गए है। सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के तहत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए चल रहे कार्यक्रमों में तीव्रता लाने के उद्देश्य से अधिगम वृद्धि कार्यक्रम की शुरूआत की गई। 5 सितम्बर 2011 को बिहार के मुख्यमंत्री द्वारा गुणवत्ता मिशन के तौर पर ''समझें सीखें'' कार्यक्रम का पूरे राज्य में एक साथ शुभारंभ किया गया जिसका उद्देश्य है – बच्चों द्वारा गुणवत्तापूर्ण शैक्षणिक उपलब्धि प्राप्त करना।

3. भारतीय संविधान और शिक्षा

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में शिक्षा व्यवस्था सम्पूर्ण देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करने और इसका पुनर्निर्माण करने में परिमाणात्मक और गुणात्मक, दोनों हीं रूपों से उपयोग होता था। संविधान निर्माता यह जानते थे कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास की नींव है, इसलिए उन्होने शिक्षा को संविधान में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। हमारी संवैधानिक व्यवस्था के मौलिक प्रावधानों, अधिकारों और उत्तदायित्वों की दृष्टि तथा अर्थ को शिक्षा गहराई से प्रभावित करती है। हम किसे और कैसे तथा किस विषयवस्तु और रूप में शिक्षा प्रदान करें? इस पर संविधान

का समान रूप से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। लोकतांत्रिक देश होने के नाते हमारी शैक्षिक रणनीतियों तथा सुधार संविधान द्वारा निर्धारित मानकों के परिप्रेक्ष्य में अपनाई तथा मूल्यांकित की जाती है। दूसरी तरफ नीति निर्माताओं द्वारा विकसित तथा उपयुक्त नीतियाँ संविधान के दायरे में वृद्धि करती है तथा विकसित होती है। शिक्षा और संविधान के मध्य सम्बन्ध की प्रकृति का परीक्षण एक रोचक विषय है। लोक शिक्षा संदर्भ तथा मूलभूत संवैधानिक सिद्धान्तों के विकास के मध्य अंतःक्रिया विद्यालय परिसर के अंदर तथा बाहरी दोनों संदर्भो में उपयोगी है। दूसरी विमा (क्षेत्र) स्पष्ट तथा छिपी हुई पाठ्यचर्या है जो संविधान के विकास तथा अनुप्रयोग से सम्बन्धित है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के संदर्भ में, हम लोक शिक्षा तथा संविधान के मध्य निकट सम्बन्ध को देख सकते हैं।

सभी बच्चों को समान तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए शैक्षिक रणनीतियों के विकास पर भी संविधान प्रभाव डालता है जो निरन्तर पुनरीक्षण का विषय है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा में कोई भी नीति एवं कार्यक्रम संवैधानिक पुनरीक्षण तथा संवैधानिक शर्तों के रूप में निर्धारित स्वीकार्य मानकों से सम्बन्धित विषय है। नीतियों का चयन तथा निर्माण यह प्रतिबिम्बित करता है कि हम क्या हैं तथा एक राष्ट्र के रूप में क्या होना चाहते है?

शिक्षा और संवैधानिक प्रावधान (भारतीय संविधान के विशेष संदर्भ में)

डा० भीमराव अम्बेदकर की सामाजिक प्रगति की अवधारणा तथा उनकी दृष्टि में न्यायप्रिय तथा समतामूलक समाज में शिक्षा आन्दोलनकारी भूमिका अदा करने वाली है। भारत में सामाजिक रूप से वंचित लोगो के उद्धार में शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण को उनके शब्दो में निम्नवत् अभिव्यक्त किया गया हैः

"जैसा कि मैं हिन्दू समाज के सबसे निचले स्तर से संबंध रखता हूँ, मैंने जाना कि शिक्षा का मूल्य क्या होता है। निचले स्तर के उत्थान में आर्थिक समस्या का होना, महान भूल है। भारत में निचले स्तर का उत्थान उनको भोजन कराना वस्त्र पहनाना तथा उच्च स्तर पर सेवा कराना नहीं है..... उनमें से हीनभावना को निकालना है जिसने उनकी प्रगति को अवरूद्ध किया है...... उनमें उनके जीवन तथा राष्ट्र के प्रति महत्व की चेतना का निर्माण करना है..... शिक्षा के विस्तार के अतिरिक्त कुछ भी इसे प्राप्त नहीं कर सकता है। यह मेरे विचार में हमारे सामाजिक व्याधि का उपचार है।" केवल डॉ० अम्बेदकर ही नहीं अपितु हम पाते है कि विश्व स्तर पर जाति व्यवस्था तथा भेदभाव समाप्त करने, दमन पर नियंत्रण के लिए आन्दोलनों ने सदैव शिक्षा को एक प्राथमिक अस्त्र के रूप में प्रस्तुत किया है। शिक्षा को मुख्य धारा में लाने के लिए, देशवासियों को शिक्षित करने हेतु भारतीय संविधान अपने प्रावधानों में व्यापक क्षेत्र प्रदान करता है। आइये! अब हम भारतीय संविधान में निहित विशेष शैक्षिक प्रावधानों पर विमर्श करते हैः

संविधान की प्रस्तावना

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण
प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी,
पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के
लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और
उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर
की समता प्राप्त करने के लिए तथा
उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की
एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली
बंधुता बढ़ाने के लिए
दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में
आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई0 (मिति
मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह
विक्रमी) को एतदद्वारा
इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और
आत्मार्पित करते हैं।

शिक्षा सहित राष्ट्र की नीति और योजना आवश्यक रूप से भारत के संविधान की प्रस्तावना के अनुसार निर्मित किए जाते हैं जो हमें संवैधानिक मूल्यों जैसे: न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुता की प्राप्ति एवं अनुरक्षण हेतु निर्देशित करता है।

मौलिक अधिकार तथा शिक्षा

हमारे संविधान में नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकारों में समानता की भावना को स्थापित किया गया है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संरक्षित करने में सहायता करते है। मौलिक अधिकारो की श्रेणी में **निम्नलिखित अनुच्छेद भारत की शिक्षा पर विशेष बल देते हैं।**

अनुच्छेद 14–"राज्य भारतीय क्षेत्राधिकार में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता या विधि के समान संरक्षण से इन्कार नहीं करेगा।" आधुनिक राज्य व्यक्तिगत स्तर पर शक्तियों का प्रयोग करते हैं। समानता के अधिकार का आशय यह सुनिश्चित करना है कि राज्य शक्तियों का उपयोग विभेदकारी रूप में न करें। शिक्षा के संदर्भ में प्रवेश नियमों को नियंत्रित करने के लिए यह कार्य करेगा और इस प्रकार यह सभी तक शिक्षा की पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए कार्य करना है।

अनुच्छेद 15– राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। यह भारत में शैक्षिक अवसरों में समानता को सुनिश्चित करता है।

अनुच्छेद 15(4)– यह सरकार को पिछड़े वर्गों समेत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति हेतु विशेष प्रावधान बनाने के लिए सक्षम बनाता है। यह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए शैक्षिक संस्थानों में आरक्षण को भी सुनिश्चित करता है।

अनुच्छेद 16(1)– राज्य के अधीन किसी भी कार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों पर भारत के सभी नागरिकों को समान अवसर की गारंटी प्रदान करता है।

अनुच्छेद 16(4)– नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों के आरक्षण के विशेष उपबन्ध करने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 21(क)– राज्य के छहः से चौदह वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रावधान निर्धारित करना है। इसे 86वाँ संविधान संशोधन 2002 द्वारा सम्मिलित किया गया है। इस अनुच्छेद द्वारा प्राथमिक स्तर पर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक विस्तार सुनिश्चित करने हेतु शिक्षा के अधिकार की स्थिति प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 24– 14 वर्ष से कम आयु के किसी बच्चे को किसी उद्योग, खनन या अन्य खतरनाक कार्यों में नहीं लगाया जायेगा।

अनुच्छेद 28– राज्य द्वारा चलाए जा रहे संस्थान न तो कोई धार्मिक उपदेश और न ही धार्मिक शिक्षा देंगे, यद्यपि किसी न्याय या धार्मिक संस्थान द्वारा चलाए जा रहे संस्थानों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की छूट है। इसके आगे अनुच्छेद में प्रावधान है कि राज्य पोषित या अनुदानित विद्यालय में कार्यरत किसी व्यक्ति को बिना उनके माता–पिता के सहमति के किसी भी धार्मिक अनुदेश में भाग लेने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। इसका तात्पर्य यह है कि अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित संस्थान जो राज्य से अनुदान (सहायता) प्राप्त करने के योग्य है, वे संस्थान में प्रदान की जा रही धार्मिक शिक्षा का अनुसरण करने के लिए अपने विद्यार्थियों को विवश नहीं कर सकते। किसी भी विद्यार्थी पर अपनी धार्मिक विचारधारा को थोपे बिना वे अपने धार्मिक स्वरूप को बनाए रख सकते है।

अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शिक्षा संबंधी अधिकार

कहना न होगा कि भारत राष्ट्र विविधताओं से पूर्ण है और इसका वैविध्यपूर्ण सुंदरता इसके अल्पसंख्यक जनसंख्या की देखभाल में निहित है। समाज में अल्पसंख्यक समुदायों के हितो एवं अधिकारों के लिए भारतीय संविधान द्वारा बहुत से शैक्षिक प्रावधान प्रदान किया गया है। इससे संबंधित संवैधानिक प्रावधान निम्नांकित है–

अनुच्छेद 29(1)– इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि 'भारत' के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी वर्ग को अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि अथवा संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(3)– इसके अन्तर्गत यह प्रावधान है कि किसी नागरिक को सरकार द्वारा संचालित अथवा सरकार से सहायता प्राप्त किसी शैक्षिक संस्था में धर्म, नस्ल, जाति, भाषा के अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश पाने से वंचित नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 30(1)– इसके अनुसार धर्म अथवा भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी पंसद के अनुरूप शिक्षा संस्था स्थापित करने और संचालित करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 30(2)– के अनुसार राज्य सहायता अनुदान देने के मामले में धर्म अथवा भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थानों के साथ भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 45– राज्य संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगी। बाद में 86वे संविधान संशोधन अधिनियम 2002 की धारा–3 के प्रवर्तित होने पर अनुच्छेद 45 को निम्नवत् प्रतिस्थापित किया गया– "राज्य सभी बालकों के लिए छह वर्ष की आयु पूरी करने तक, प्रारंभिक बाल्यावस्था देख–रेख और शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 46– राज्य समाज के कमजोर वर्गों विशेषतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उसका संरक्षण करेगी।

अनुच्छेद 51ए(क)– 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चे के माता–पिता या अभिभावक अथवा संरक्षक को अपने बच्चे को शिक्षा दिलाने के लिए अवसर उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 350(A)– भाषायी दृष्टि से अल्पसंख्यक समूहों के बालकों को उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना सरकार/स्थानीय निकाय का दायित्व बनाया गया है।

अनुच्छेद 350(B)– में उपबंधित किया गया है कि भाषा आधारित अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जायेगी जो भाषायी अल्पसंख्यकों को संविधान द्वारा प्रदत सुरक्षा से संबंधित मामलों की जाँच–पड़ताल करेगा।

अनुच्छेद 351_– के अन्तर्गत हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए उपबन्ध रखे गए है। अनुच्छेद में कहा गया है–

"हिन्दी भाषा का प्रसार करना, इसका इस प्रकार विकास करना कि यह हमारी सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और इसकी मूल प्रकृति, प्रारूपों, शैली और अभिव्यक्ति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी तथा आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भारतीय भाषाओं के द्वारा इसे समृद्ध करना और जहाँ आवश्यक अथवा वांछनीय हो, इसकी शब्दावली मुख्य रूप से संस्कृत और गौण रूप से अन्य भाषाओं से ग्रहण करना संघ का कर्त्तव्य होगा"।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देश के सभी बच्चों को शैक्षिक अवसर प्रदान करना केन्द्र सरकार, राज्य सरकारो, स्थानीय निकायों और स्वैच्छिक संस्थाओं का संयुक्त उत्तरदायित्व है। प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में केन्द्र सरकार की कुछ महत्वपूर्ण भूमिकाएँ है, जिसमें प्रारंभिक शिक्षा में अनुसंधान तथा पायलट परियोजनाएँ आरंभ करना, राज्यों को वित्तीय सहायता देना, राज्यों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के बीच समन्वयक की भूमिका निभाना राज्यों के बीच मतभेदों की निपटाना, संसाधनों का न्यायोचित वितरण सुनिश्चित करना और अवसरों में समानता को दूर करना सम्मिलित है। दूसरी ओर राज्य सरकारों को बच्चों के शिक्षा–स्थान, विशेष रूप से विद्यालय तक लाने और विधि पारित करने की जिम्मेवारी निभानी होगी। शिक्षा की संरचना और व्यवस्था के बारे में निर्णय लेना राज्य सरकारों का सरोकार है। परिणामस्वरूप व्यापक नीति–दायरे के भीतर प्रत्येक राज्य स्वतंत्र रूप से अपने शैक्षिक ढाँचे का निर्धारण करता है, जिसके फलस्वरूप अनिवार्य शिक्षा अधिनियम राज्यो में पारित एवं क्रियान्वित किए गए हैं। फलस्वरूप बालकों–बालिकाओं के नामांकन में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गई और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने में काफी सफलता मिली है।

4. बच्चे और शिक्षा का अधिकार– संवैधानिक प्रावधान एवं संबंधित विमर्शों के परिप्रेक्ष्य में

शिक्षा बालक को सभ्य, संस्कारवान एवं जागरूक बनाती है, परिणाम स्वरू‍ समाज भी उन्नत बनता है। शिक्षित समाज के बगैर उन्नत और विकसित राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती है। शिक्षा मानव के जीवन स्तर के साथ साथ संपूर्ण राष्ट्र को विकास के उच्चतम स्तर तक ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विकसित राष्ट्र की आधारशिला बालक–बालिकाएँ हैं। इन्हें शिक्षित और संस्कारवान बनाने हेतु प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली का सशक्त और प्रभावी होना अत्यंत आवश्यक है। यह तंत्र 'बाल केंद्रित' शिक्षा पर बल देती है। बाल्यावस्था तेजी से विकास और परिवर्तन की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चों के सृजनात्मक क्षमता, स्वतंत्र निर्णय लेने की समझ विकसित होती है। ''प्रारंभिक शिक्षा'' से तात्पर्य कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा से है। दूसरे अर्थों में इसे शिक्षा का प्रथम

औपचारिक सोपान भी कह सकते हैं। प्रारंभिक शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास का सशक्त माध्यम है। सशक्त और सक्षम बालक ही अपने अधिकारों की माँग और रक्षा कर सकता है।

कहना न होगा कि इक्कीसवी सदी प्रतिस्पर्धा का युग और भारतीय संविधान निर्मित हुए छह दशक बीत चुके हैं। बदलते समय के साथ–साथ शिक्षा के मायने भी बदल चुके हैं। संविधान के अनुच्छेद के अनुसार सभी को शिक्षा पाने का अधिकार हैं मानव अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार एक दूसरे के पूरक हैं। भारतीय संविधान में शिक्षा समवर्ती सूची में शामिल है। इसके अनुसार केन्द्र और राज्य दोनों ही अपनी अपनी नीतियाँ एवं विधियाँ कर सकती है। इसके पूर्व यह अनुच्छेद 45 के अंतर्गत शामिल था जिसे राज्य सरकार क्रियान्वित करने हेतु बाध्य नहीं थी किन्तु अब इसे अनुच्छेद 21 'क' (भाग 3) में शामिल कर मूल अधिकार की श्रेणी में लाया गया है। इसे वैधानिक रूप से लागू करने की जिम्मेदारी राज्य की है। संविधान निर्माता इस वास्तविकता से परिचित थे कि भारत जैसे विशाल देश में फैली निरक्षरता को तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक कि शिक्षा को अनिवार्य और निःशुल्क न कर दिया जाये। इसलिए संविधान की धारा 45 में कहा गया कि "राज्य इस संविधान के प्रारंभ में 10 वर्ष की कालावधि के भीतर सभी बच्चों को 14 वर्ष की अवस्था समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयत्न करेगा।" यद्यपि भारत जैसे विशाल देश के लिए यह लक्ष्य अत्यंत बड़ा है तथापि विगत कुछ दशकों में भारत ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन, छात्रों की संख्या और नियमित उपस्थित के संदर्भ में प्रगति की है। यह भी सही है कि नामांकन के लक्ष्य की प्राप्ति अभी तक नहीं हो पाई है। केन्द्रीय सरकार द्वारा सतत् सार्थक प्रयास किए जाते हैं। 88वाँ संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा भाग संविधान 3 (मूल अधिकार) में एक नई धारा 21 'क'– को जोड़कर 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार बनाने की बात कही गई।

भारत में उन्नीकृष्णन वाद (1993) शिक्षा के अधिकार संबंधी निर्णय का महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को जीवन जीने के अधिकार के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। इस प्रकार यह अधिकार संविधान की धारा 21 में समाहित किया गया। इसकी संकल्पना और सीमाएँ, अनुच्छेद 41 व अनुच्छेद 45 में निहित है। यह प्रथम अवसर था जब माननीय अच्चतम न्यायालय ने शिक्षा को मौलिक अधिकार माना। इसके प्रकाश में प्रत्येक 6 से 14 आयु वर्ग का बालक प्रारंभिक शिक्षा पाने का अधिकारी है। यह शिक्षा उसे निःशुल्क और अनिवार्यतः प्राप्त होगी।

यूनेस्को की शिक्षा के लिए वैश्विक मॉनीटरिंग रिपोर्ट 2010 के अनुसार लगभग 135 देशों ने अपने संविधान में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा को प्रावधानित किया है। भारत ने भी 1 अप्रैल 2010 से इस ऐतिहासिक कानून को लागू करके इन देशों की सूची में अपना नाम सम्मिलित कर लिया है। भारत में अब शिक्षा का अधिकार अधिनियम संसद में पारित होकर कानूनी रूप धारण कर चुका है। आर०टी०आई० के परिप्रेक्ष्य में 21 वीं सदी का केन्द्रीय बिन्दु सभी बच्चों के लिए 4 As के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका तात्पर्य है Availability (उपलब्धता), Accessibility (अभिगम्यता), Acceptability (स्वीकार्यता) एवं Adaptability (अनुकूलता)। आर०टी०आई० कानून का मुख्य ध्येय प्रारंभिक शिक्षा को 4 As की दिशा में अग्रसर करना है। दस अधिनियम के अंतर्गत बालकों की शिक्षा के प्रति सरकार, समुदाय, अध्यापक, विद्यालय एंव स्थानीय प्राधिकारी सभी की जिम्मेदारियाँ तय की गई है। यह अधिनियम एक बड़ी जिम्मेदारी है जिसे समाज के सभी वर्गों को मिल जुलकर वहन करना है। इस सामूहिक जिम्मेदारी का पूरी गंभीरता एवं ईमानदारी से कुशलतापूर्वक निर्वहन करके प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में शिक्षा के अधिकार का ऐतिहासिक विकास–क्रम

1870— ब्रिटेन में अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित।

1882— भारतीय शिक्षा आयोग भारतीय नेताओं द्वारा जन—शिक्षा और अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान की माँग।

1893— बड़ौदा महाराजा ने अमरेली ताल्लुका में लड़कों के लिए अनिवार्य शिक्षा की शुरूआत किए।

1906— बड़ौदा महाराज ने राज्य के शेष हिस्सों में अनिवार्य शिक्षा का विस्तार किया।

1906— गोपालकृष्ण गोखले ने इम्पीरियल विधान परिषद के समक्ष निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रस्तावित करने की दलील दी।

18 मार्च 1910— गोपालकृष्ण गोखले ने इम्पीरियल विधान परिषद के समक्ष निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए प्राईवेट मेम्बर्स बिल प्रस्तावित किया जो निम्नवत् है—

मैं परिषद् के समक्ष विचार के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव पेश करता हूँ—
इस देश में राज्य को जनशिक्षा (Mass Education) के संदर्भ में उसी तरह की जिम्मेवारी स्वीकार करनी चाहिए जैसे कि अधिकांश सभ्य देशों की सरकारें पहले से ही निर्वाह कर रही है और जिसके लिए अच्छी तरह सुनियोजित योजना बनानी चाहिए और उस पर अमल होने तक इस पर दृढ़ रहना चाहिए। इसी पर उन लाखों—करोड़ों बच्चों की बेहतरी निर्भर करती है, जो शिक्षा के प्रभाव में आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।
(बाद में उक्त प्रस्ताव को परिषद द्वारा खारिज कर दिया गया।)

1917— बिठ्ठल भाई पटेल ने विधेयक पारित कराने में सफलता पाई। अनिवार्य शिक्षा पर पहला विधेयक पारति हुआ। (यह विधेयक 'पटेल एक्ट' के नाम से लोकप्रिय हुआ)

1918— ब्रिटिश भारत के सभी प्रान्तों में संविधि सूची में अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित होकर शामिल हुआ।

1930— बेहतर शिक्षा (मात्रा पर कम ध्यान देते हुए) के हर्टांग समिति की सिफारिशों प्राथमिक शिक्षा के विकास और विस्तार में बाधा पहुँचाई।

1937— वर्षों से बदतर हुई स्थिति ने महात्मा गाँधी को 1937 में सार्वभौमिक शिक्षा के लिए उत्तेजक आह्‌वान करने पर विवश किया। सार्वभौमिक शिक्षा के लिए यथोचित वित्त—व्यवस्था की उनकी दलील को यह जबाब मिला कि किसी भी तरह अगर कुछ किया जा सकता है, तो केवल एक रास्ता है कि शराब की बिक्री से प्राप्त राजस्व को इस्तमाल किया जाए। उसका मतलब यह था कि या तो शराब के प्रतिबंध पर अपना पक्ष वापस लेने या सार्वभौमिक शिक्षा की अपनी मंशा को राज्य के समर्थन से करते, जिसे उन्होंने सपाट ढंग से कहा— ''नए सुधारों की क्रूरतम विडम्बना इस तथ्य में निहित है कि हमारे लिए कुछ नहीं छोड़ा गया, पर हमारे बच्चों को शिक्षा देने के क्रम में शराब से प्राप्त राजस्व वापिस लौटाया जाता है (हरिजन)। उन्होंने स्वपोषित शिक्षा प्रस्तावित करके उसका समाधान पा लिया जिसे वे शैक्षिक पहेली कहा करते थे, इसको बाद में नई तालीम के नाम से जाना गया।

शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित प्रमुख संवैधानिक प्रावधान—

अनुच्छेद 21 क— 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21 के पश्चात् नया अनुच्छेद 21— क जोड़ा गया, जो यह अपबन्धित करता है कि— '' राज्य ऐसी रीति से

जैसा कि विधि बनाकर निर्धारित करे 6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए उपलब्ध करेगा।''

अनुच्छेद 41— कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार— राज्य अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के लिए काम पाने, शिक्षा पाने तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अशक्तता की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने का अधिकार को प्राप्त करने का कार्यसाधक उपबन्ध करेगा।

अनुच्छेद 45— उपबन्धित करता है कि ''राज्य 6 वर्ष की आयु के सभी बालकों के पूर्व बाल्यकाल की देख—रेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबन्ध करेगा।''

अनुच्छेद 46— समाज के दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के विशेषतया अनुसुचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा अर्थसम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा के संबंध में न्यायालय का मतः—

- मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992) 3 SCC 666 के मामले में शीर्ष अदालत ने अनुच्छेद—21 के तहत शिक्षा पाने के अधिकार को प्रत्येक नागरिक का मूल अधिकार बनाते हुए ऐतिहासिक निर्णय दिया। अनुच्छेद—21 के प्राण व दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार में शिक्षा पाने का अधिकार भी शामिल है तथा निजी कॉलेज द्वारा कैपीटेशन शुल्क लेना नागरिकों के इस अधिकार का उल्लंघन है। प्रत्येक नागरिक को शिक्षा उपलब्ध करवाना राज्य का संवैधानिक दायित्व है।
- उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (1993) SCC 666 के मामले में नीजी कॉलेज संचालकों ने न्यायालय से मोहिनी जैन वाद में दिये गए निर्णय पर पुनर्विचार के लिए आवेदन किया। उनका तर्क था कि उक्त निर्णय को लागू किया गया तो उनको कॉलेज बन्द करने पड़ेंगे। विद्वान न्यायमूर्तियों ने शिक्षा को मूल अधिकार माना तथा इसे 14 वर्ष के बच्चों तक सीमित करते हुए कहा कि उच्च शिक्षा के संबंध में यह राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करेगा। एम०सी० मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य (1996) 6 SCC-756 के मामले के सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य को आदेश दिया कि अनुच्छेद—45 के अनुसार बाल श्रमिकों को शिक्षा का पूर्ण अवसर प्रदान करें। यह भी निर्देश दिया कि संरक्षक का दायित्व होगा कि वह बालक को शिक्षा के लिए भेजे तथा सम्बन्धित सरकार यह देखे कि उनके काम की अवधि 4 से 6 घंटे से अधिक न हो और प्रत्येक दिन में 2 घण्टे शिक्षा प्राप्त करें व उनकी शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय नियोजक वहन करे।

बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

स्वतंत्रता के छः दशक पश्चात् बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का सपना ''बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009'' के रूप में साकार हुआ। इस अधिनियम के 1 अप्रैल 2010 से लागू होने के पश्चात् 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अपने नजदीकी विद्यालय में निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने का कानूनी अधिकार मिल गया है। अधिनियम की विशेष बात यह है कि गरीब परिवारों के वे बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा से वंचित है कि लिए निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान रखा गया है। विविध आयोग ने निजी विद्यालयों में शिक्षा से वंचित बच्चों के लिए आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत करने का सुझाव दिया था।

यह विधेयक कैबिनेट द्वारा 2 जुलाई 2009 को स्वीकृत किया गया। राज्यसभा ने इस बिल को 20 जुलाई 2009 को एवं लोकसभा में 4 अगस्त 2009 को पारित किया तथा 26 अगस्त 2009 को राष्ट्रपति में मंजूरी मिलने के बाद 27 अगस्त 2009 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। 1 अप्रैल 2010 से इसे लागू कर दिया गया है।

आइए शिक्षा के सार्वभौमिकरण के उद्देश्य से बनाए गए इस ऐतिहासिक अधिनियम के कुछ बुनयादी प्रावधानों को एक नजर में देखें।

शिक्षा अधिनियम क्या है:–

इस अधिनियम में सात अध्याय एवं एक अनुसूची (मानक एवम् प्रमाणक) को शमिल किया गया है।

अध्याय 1– प्रारंभिक–बच्चा, वंचित समूह का बच्चा, कमजोर वर्ग का बच्चा, आरंभिक शिक्षा विद्यालय आदि।

अध्याय 2– मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार

अध्याय 3– उपयुक्त सरकार, स्थानीय प्राधिकरण और अभिभावकों के कर्तव्यों

अध्याय 4– विद्यालयों तथा शिक्षकों के दायित्व

अध्याय 5– पाठ्यचर्या एवं आरंभिक शिक्षा की समाप्ति

अध्याय 6– बच्चों के अधिकार की रक्षा

अध्याय 7– मिश्रित– केंद्रीय, राज्य, स्थानीय सरकार, विद्यालय एवं अभिवावकों का दायित्व

अध्याय 1– प्रारंभिक

पहला अध्याय प्रारंभिक अधिनियाम में आए गए कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या करता है। इनमें से कुछ मुख्य शब्द अधिनियम में दी गए व्याख्या के अनुसार ये हैः–

- बच्चा– इसका अर्थ है कोई भी बच्चा (लड़का या लड़की) जो 6–14 वर्ष के बीच में है।
- वंचित समूह का बच्चा– वह बच्चा जो उपयुक्त सरकार द्वारा अधिसूचित किसी समूह जैसे– अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक शैक्षिक रूप से पिछड़ा वर्ग या कोई अन्य समूह जिसे सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लैंगिक या इसी तरह के किसी कारक के कारण असुविधा है, से सम्बन्ध रखता है।
- कमजोर वर्ग का बच्चा– इसका अर्थ है बच्चों के अभिभावकों या माता–पिता की वार्षिक आमदनी, उपयुक्त सरकार द्वारा अधिसूचित आमदनी की निर्धारित न्यूनतम सीमा से कम है।
- आरंभिक शिक्षा–कक्षा एक से आठ तक की शिक्षा।
- विद्यालय– कोई भी मान्यता प्राप्त विद्यालय जो आरंभिक शिक्षा दे रहा हो।

अध्याय 2– मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार से

- अध्याय 3 के कुछ मुख्य बिंदु इस प्रकार है–

1. 6–14 वर्ष की उम्र के किसी भी बच्चे को पड़ोस के स्कूल में आरंभिक शिक्षा पूरी होने तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा। किसी भी बच्चे को आरंभिक शिक्षा लेने के लिए ऐसा कोई भी व्यय नहीं करना होगा अथवा शुल्क नहीं देना होगा जो उसे आरंभिक शिक्षा में

आगे बढ़ने अथवा पूरी होने से रोक सके। किसी प्रकार की विकलांगता (विकलांगता से प्रभावित व्यक्तियों के लिए बना कानून, 1985 के अनुसार) से प्रभावित बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा।

2. यदि छः साल से उपर के किसी बच्चे ने किसी स्कूल में दखिला नहीं लिया या अपनी आरंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाया तो उसे उसकी उम्र के अनुरूप कक्षा में दाखिला मिलेगा। इस स्थिति में उसे दूसरे विद्यार्थियों के बराबर आने के लिए उसी समय सीमा (जैसी निर्धारित हो) में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा। आरंभिक कक्षा के लिए दाखिल बच्चे को 14 वर्ष के बाद भी तबतक मुफ्त शिक्षा मिलेगी जबतक उसकी आरंभिक शिक्षा पूरी नहीं हो जाती है।

अध्याय 3– उपयुक्त सरकार, स्थानीय प्राधिकरण और अभिभावकों के कर्त्तव्य से–

1. इस कानून के प्रावधान लागू करने के लिए उपयुक्त सरकार और स्थानीय प्राधिकरण को उनके क्षेत्रों या पड़ोस की सीमा में जैसा कि निर्धारित किया गया है यदि स्कूल न हो तो इस कानून के लागू होने के तीन वर्षों के भीतर स्कूल की स्थापना करनी होगी।
2. इस कानून के प्रावधानों को लागू करने हेतु धन मुहैया कराने की जिम्मदारी केंद्र सरकार और राज्य सरकार दोनों की होगी।
3. केन्द्र सरकार अकादमिक प्रधिकारियों की सहायता से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करेगी। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए मानक विकसित करेगी तथा लागू करेगी। नवाचारों, शोधों, योजनाओं और क्षमता निर्माण को बढ़ावा देने के लिए राज्य सरकारों को तकनीकी सहायता तथा संसाधन उपलब्ध कराएगी।
4. यदि छः साल से उपर के किसी बच्चे ने किसी स्कूल में दाखिला नहीं लिया या अपनी आरंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाया तो उसे उसकी उम्र के अनुरूप कक्ष में दाखिला मिलेगा। इस स्थिति में उसे दूसरे विद्यार्थियों के बराबर आने के लिए उसी समय सीमा (जैसी निर्धारित हो) में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा। आरंभिक कक्षा के लिए दाखिल बच्चे को 14 वर्ष के बाद भी तबतक मुफ्त शिक्षा मिलेगी जबतक उसकी आरंभिक शिक्षा पूरी नहीं हो जाती।
5. उपयुक्त सरकार तथा प्राधिकरण का यह दायित्व होगा कि भौतिक सुविधाएँ जिसमें विद्यालय भवन, शिक्षक और अधिगम उपकरण शामिल हैं– को उपलब्ध कराएँ विशेष प्रशिक्षण की सुविधा भी उपलब्ध कराएँ तथा अनुसूची में निर्धारित मानकों के अनुसार अच्छी गुणवत्ता पूर्व शिक्षा सुनिश्चत करें।
6. प्रत्येक अभिभावक या बच्चों के संरक्षक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने बच्चों को पड़ोस के विद्यालय में आरंभिक शिक्षा के लिए प्रवेश दिलाएँ।
7. तीन साल से उपर के बच्चों की आरंभिक शिक्षा की तैयारी तथा सभी बच्चों की पूर्व बाल्यावस्था देख–रेख तथा शिक्षा जबतक कि ये छः साल के नहीं हो जाते के मद्देनजर सरकार ऐसे बच्चों के लिए विद्यालय–पूर्व शिक्षा उपलब्ध कराने के आवश्यक प्रबंध करेगी।

अध्याय–4 'विद्यालयों तथा शिक्षकों के दायित्व' से–

1. सभी प्रकार के सरकारी विद्यालय, प्रवेश लेने वाले सभी बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएँगे पूरी तरह से निजी विद्यालय, कक्षा एक के लिए निर्धारित विद्यार्थी की संख्या का न्यूनतम 25 प्रतिशत बच्चे पड़ोस के कमजोर तथा वंचित वर्ग से लेंगे और उन्हें आरंभिक शिक्षा के पूरी होने तक मुफ्त अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएँगे।

2. कोई भी विद्यालय या संस्थान बच्चे के प्रवेश के समय किसी भी तरह का (केपिटेशन) शुल्क नहीं लेंगे और न ही बच्चे के अभिभावकों और संरक्षकों की परीक्षा लेगा। ऐसा करने वाले विद्यालय को जुर्माना देना पड़ सकता है।
3. उम्र के प्रमाण–पत्र के अभाव में विद्यालय में किसी बच्चे को प्रवेश लेने से रोका नहीं जाएगा।
4. किसी बच्चे को किसी कक्षा में रोका नहीं जाएगा और आरंभिक शिक्षा के पूर्ण होने तक स्कूल से निकाला नहीं जाएगा।
5. किसी बच्चे को शारीरिक सजा या मानसिक यंत्रणा नहीं दी जाएगी। ऐसी सजा देने वालों के खिलाफ अनुशासनिक कार्यवाही की जाएगी।
6. शिक्षक को विद्यालय में अपनी उपस्थिति और नियमितता बनाए रखनी होगी। पूरी पाठ्यचर्या का निर्धारित समय से पूरा करना होगा। प्रत्येक बच्चे की अधिगम योग्यता का आकलन करना होगा और उसी के अनुसार आवश्यक निर्देश देने होंगे। शिक्षक को अभिभावकों से नियमित बैठकें करनी होगी और अभिभावकों को उनके बच्चों की उपस्थिति में नियमितता, सीखने के योग्यता, सीखने में की गई प्रगति और बच्चे के बारे में कोई भी अन्य सार्थक सूचना से अवगत कराना होगा।
7. कोई भी शिक्षक जनगणना, आपदा राहत कार्य या चुनाव कार्य के अलावा किसी गैर–शैक्षणिक कार्यो के लिए नहीं भेजा जाएगा।
8. कोई भी शिक्षक निजी ट्यूशन / शिक्षण नहीं करेगा।

अध्याय – 5 पाठ्यचर्या एवं आरंभिक शिक्षा की समाप्ति से–

इस अध्याय की मुख्य बाते इस प्रकार है।

1. आरंभिक शिक्षा के लिए पाठ्चर्या और मूल्यांकन विधियाँ किसी अकादमिक प्राधिकारी (Academic Authority) द्वारा निर्धारित की जाएगी जिसका ब्यौरा उपयुक्त सरकार ने अधिसूचना में जारी कर दिया है।
2. अकादमिक प्राधिकारी पाठ्यचर्या और मूल्यांकन प्रविधियों का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखेंगे–
    - संविधान में दिए मूल्यों को परिप्रेक्ष्य।
    - बच्चों का सर्वांगीण विकास।
    - बच्चों के ज्ञान, क्षमता तथा प्रतिभा का निर्माण।
    - शारीरिक तथा मानसिक योग्यताओं का पूर्ण रूप से विकास।
    - गतिविधियाँ, खोज और अन्वेषण की सहायता से बाल–केंद्रित और बाल मित्रवत तरीके से अधिगम।
    - शिक्षण का माध्यम जहाँ तक व्यवहारिक हो, बच्चों की मातृभाषा हो।
    - बच्चों को डर, सदमें और चिंता से दूर करना और उनके विचारों की स्वतंत्र अभिवयक्ति में मदद करना।
    - बच्चों के ज्ञान की समझ तथा उसका अनुप्रयोग करने की योग्यता का सतत एवं व्यापक मूल्यांकन।
3. आरंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी भी बच्चे को बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता नहीं होगी।

अध्याय – 6 "बच्चों के अधिकार की रक्षा

इस अध्याय के महत्वपूर्ण बिंदु है –

- राष्ट्रीय बाल– अधिकार रक्षा आयोग तथा राज्य बाल अधिकार रक्षा आयोग पहले से ही निर्धारित कार्यो के साथ–साथ निम्नलिखित कार्य भी करेंगे –

इस अधिनियम के अंतर्गत दिए गए अधिकारों की रक्षा के तरीकों की जाँच तथा समीक्षा और इनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए तरीकों की संस्तुति–

- मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा का बच्चे के अधिकार से संबंधी शिकायतों की जाँच ।
- बाल अधिकार रक्षा अधिनियम के अंतर्गत सुझाए गए आवश्यक कदम उठाना।

अध्याय – 7 के मुख्य बिंदु निम्नलिखित है –

1. केन्द्र सरकार, उपयुक्त सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकरण को इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के उद्देश्य से उपयुक्त दिशा निर्देश दे सकती है।
2. स्थानीय प्राधिकरण, विद्यालय प्रबंधन समिति को इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए उचित दिशा–निर्देश दे सकता है।
3. अनुसूची : इस अधिनियम की अनुसूची में विद्यालय के लिए मानक दिए गए है जिसमें कक्षा एक से कक्षा पाँच तक प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षकों की संख्या निम्नांकित प्रकार से निर्धारित की गई है। इसी अनुसूची में विद्यालय भवन के लिए भी मानक निर्धारित किए गए है।

आइये अनुसूची पर एक नजर डालते है :– विद्यालय के लिए मानक और प्रमाणक

(अ) कक्षा एक से कक्षा पाँच तक	प्रवेश लेने वाले बच्चों की संख्या	शिक्षकों की संख्या
	60 तक	2
	51 से 90 तक	3
	91 से 120 तक	4
	121 से 200 तक	5
	150 से उपर	5 + एक मुख्य अध्यापिका
	200 से उपर	विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात (मुख्य अध्यापिका को छोड़ते हुए) 40 से उपर नहीं जाना चाहिए।

(ब) कक्षा छह से कक्षा आठ तक	(1) प्रति कक्षा कम–से कम एक शिक्षिका ताकि कम–से–कम एक शिक्षिका, जैसे– (अ) विज्ञान और गणित (ब) सामाजिक विज्ञान (स) भाषाओं के लिए हो (2) कम–से–कम एक शिक्षक प्रति 35 बच्चों के लिए हो (3) जहाँ बच्चों की संख्या 100 से उपर हैः (i) एक पूर्णकालिक मुख्य अध्यापक; (ii) अंशकालिन मुख्य अध्यापक;	

	(iii) कला शिक्षा (अ) कला शिक्षा (ब) स्वास्थ एवं शारीरिक शिक्षा (स) कार्य शिक्षा	

1. कम–से–कम एक कक्षालय प्रत्येक शिक्षक के लिए तथा एक कक्षा जो मुख्य अध्यापक का कक्ष तो हो ही साथ ही उससे कार्यालय और संग्रहण कक्ष का भी काल लिया जा सके।
2. बाधा–मुक्त पहुँच।
3. लड़के और लड़कियों के लिए अलग–अलग शौचालय।
4. सभी बच्चों के लिए सुरक्षित और पर्याप्त पीने के पानी की व्यवस्था।
5. एक रसोईघर जहाँ मध्यान भोजन पकाने की व्यवस्था हो और
6. खेल का मैदान।

5. राष्ट्रीय विकास और शिक्षा

राष्ट्रीय विकास को प्रोन्नत करने में शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसका लक्ष्य राष्ट्रवादी भावनाओं से पूर्ण ऐसे नागरिकों को तैयार होता है, जो ज्ञान, कौशल और बुद्धि से सक्षम हो। राष्ट्रीयता की भावना देश के नागरिकों को एकता के सूत्र में बाँधती है। यह व्यक्ति को राष्ट्र की भलाई के लिए अपनी भलाई के त्याग के लिए यह व्यक्ति को राष्ट्र मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा किसी देश के नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित कर उन्हें तक राष्ट्रीय संसाधन के रूप में संचित और तैयार करने में अपनी भूमिका अदा करती है।

शिक्षा राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के साथ–साथ उसके बौद्धिक विकास में भी सहायक होती है। युवा शिरोमणि प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – "किसी भी राष्ट्र के विकास की गति उसके नागरिकों के बीच शिक्षा के प्रसार से होती है।" 21वीं सदी में ज्ञान के विस्फोटक सैलाब से जब सारा विश्व आप्लावित है और चतुर्थ औधोगिक क्रांति की आहटें हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रही है, जब यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि समय चक्र की मधुरिम संगीत उन्हीं धरों में गुंजायमान होगी जहाँ शिक्षा की भव्य वीणा विराजमान होगी।

मैकाईवर एवं पेज के अनुसार – "राष्ट्र का गुण उसकी सामाजिक इकाईयों का गुण है अर्थात् किसी राष्ट्र के नागरिकों का सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। यदि ईंधन ही खराब है तो ज्योति कैसे तेज हो सकती है। – अर्थात् यदि सामाजिक इकाईयाँ निर्बल है, तो राष्ट्र कैसे दिव्यमान हो सकता है।

स्पष्ट है कि किसी राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके नागरिक बौद्धिक एवं शैक्षिक दृष्टि से श्रेष्ठ हों। शिक्षा देश के नागरिकों में आवश्यक गुणों का विकास कर राष्ट्रीय विकास को रूपों में गति प्रदान करती है। –

1. **नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण** – राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का मुख्य कार्य है – व्यक्तियों की इस प्रकार प्रशिक्षण करना है कि वे सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व का कार्य कर सकें।
2. **कुशल श्रमिकों की पूर्ति** – राष्ट्रीय विकास शिक्षा का कार्य तकनीकि रूप से कुशल श्रमिकों की पूर्ति करना है। ऐसे श्रमिक व्यापार और उधोग के उत्पादन क्षमता की वृद्धि होती है।
   हूमायुँ कबीर के अनुसार – "शिक्षित श्रमिक अधिक उत्पादन में योगदान देंगे और इस प्रकार उधोग और व्यवसाय – दोनों की अधिक उन्नति होगी।"
3. **राष्ट्रीय एकता का विकास** – शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय एकता का विकास करना है। शिक्षित व्यक्ति के सोंचने का क्षेत्र व्यापक हो पाता है। वह जातिवाद, सम्प्रदायवाद, अन्धविश्वास, क्षेत्रीयता आदि में विश्वास नहीं करता है यह वह एक–दूसरे साथ भाई–चारा का व्यवहार करता है औ देशहित को सर्वोपरि समझता है। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार – राष्ट्रीयता एकता के प्रश्न में जीवन की प्रत्येक वस्तु आ जाती है। शिक्षा क स्थान सबसे उपर है और यही आधारशिला है।
4. **भावत्मक एकता का विकास** – देश के अन्दर राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए देशवासियों में भावनात्मक एकता का विकास करना बहुत आवश्यक है। शिक्षा देश के अंदर भावात्मक एकता का वातावरण निर्मित करती है। नागरिकों में उचित संवेगों एवं एकता का विकास करती है।
5. **सांस्कृतिक विरासत से परिचय कराना एवं उसे संरक्षित करना** – राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का प्रमुख कार्य बालकों को राष्ट्र की संस्कृति के सम्पर्क में लाना है। शिक्षा बालकों उनके राष्ट्र की संस्कृति का ज्ञान कराती है तथा देश की संस्कृति की विकास प्रक्रिया से अवगत कराती है।
   डॉ० जाकिर हुसैन के अनुसार –" केवल संस्कृति की सामग्री द्वारा ही शिक्षा की प्रक्रिया को गति दी जा सकती है। केवल इसी सामग्री से मानव–मस्तिष्क का विकास हो सकता है।"
6. **बालकों (नागरिकों) का चारित्रिक विकास करना** – किसी देश का विकास वहाँ के नागरिकों के चरित्र और नैतिक विकास पर निर्भर करता है। शिक्षा नागरिकों (बालकों) में मानवंचित गुणों एवं मूल्यों का विकास करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में अपने नागरिकों में स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुता जैसे मानव–मूल्यों को विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के निदेशक ऋषिकेष सेनापति के अनुसार नई शिक्षा नीति 2020 का सूत्र वाक्य होगा – Nation First, Character Must यानि नई पीढ़ी को अब जो भी पढाया जायेगा, उसमें राष्ट्रीय हित के साथ चरित्र निर्माण पर भी फोकस रहेगा।
7. **व्यक्तिगत हित को सार्वजनिक हित से निम्न रखना** – राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका इस दृष्टि से महत्वपूर्ण जाती है कि शिक्षा के द्वारा लोगों को यह प्रशिक्षण प्राप्त होती है कि वे अपने हितो को अपने समूह, समाज और राष्ट्र के हितों से निम्न समझे। इस प्रकार शिक्षा नागरिकों में व्यक्ति समूह तथा संपूर्ण राष्ट्र, वस्तुओं, संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं के प्रति स्वस्थ एवं सकारात्मक परिवर्तन लाती है।
8. **अभिवृति का विकास** – शिक्षा देश के नागरिकों में नवीन ज्ञान, कौशल तथा अभिवृतियों के विकास पर बल देती है, जो राष्ट्रीय विकास में सहायक होती है।
9. **लोकतांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का विकास** – भारत जैसे लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का स्थापित करना है।
10. **राष्ट्रीय चेतना** – शिक्षा, राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लोगों को उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को देखने के लिए तथा राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करने के लिए स्पष्ट विचार प्रदान करती है।

11. **जीवन सूची के भौतिक गुणवत्ता में वृद्धि** – शिक्षा मानव के जैविक भलाई तथा समाज में कुल श्रम में बौद्धिकश्रम के अनुपात को बढ़ानें में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर राष्ट्रीय की गति को तेज करती है।
12. **सामाजिक एवं राष्ट्रीय अखंडता के विकास में वृद्धि** – शिक्षा की सामाजिक तथा राष्ट्रीय अखण्डता का पाठ पढ़ाने एवं नागरिकों में इस भावना को बलवती बनाने में सहायक सिद्ध होती है।
13. **अर्थिक प्रगति के लिए** – शैक्षिक कार्यक्रम राष्ट्रीय विकास में अपनी महती भूमिका निभाते है। शिक्षा राष्ट्र एवं व्यक्ति के आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह बात स्पष्ट होती है कि शिक्षा एक संसाधन, अवसर और मूल्य के रूप में आवश्यक है। प्राचीन काल से लेकर एक लम्बे समय तक शिक्षा कुछ खास वर्गो तक ही सीमित रह गयी थी। यह विदित है की विभिन्न व्यवस्थाओं के तहत तात्कालिक नीतियों के अनुरूप शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था की जाती रही है। बावजूद इसके शिक्षा सबों के लिए, एक चुनौती है और एक ईमानदार प्रयास की जरूरतों की माँग करती है।

समाज के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न वर्गों के द्वारा होने वाले वर्ग संघर्ष और सामाजिक वंचनाओं ने हमेशा लोगों को उनके मूल अधिकारों से वंचित रखा तथा एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर प्रश्न उठता रहा। इनसे निजात पाने के लिए समता, स्वतंत्रता सामाजिक न्याय और बंधुत्व जैसे विचारों को भारत के संविधान की उद्देशिका में शामिल किया गया। एक शिक्षक के रूप में इसकी जानकारी अति आवश्यक है। लोकतांत्रिक मूल्यों की शुरूआत विद्यालय प्रांगण से होती है। एक लोकतान्त्रिक शिक्षक इन मौलिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में अपनी शिक्षाई रणनीति बना शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को पूरा कर सकता है और एक स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक हो सकता है। भारतीय संविधान के निर्माताओं, प्रबुद्ध नेताओं, प्रणेता, संविधान के संरक्षक सर्वोच्च न्यायालय ने हमेशा अपने प्रयासों से संवैधानिक मूल अधिकारों और नीति–निर्देशक तत्वों के माध्यम से लोकतान्त्रिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए प्रारंभिक शिक्षा के अधिकार को बल प्रदान किया। जिसकी विस्तृत चर्चा इस इकाई में की गयी है। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए प्रारंभिक शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार से जोड़ते हुए अनुच्छेद 21 को पुनः परिभाषित किया गया जो हमें संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त गरिमा पूर्ण जीवन जीने के अधिकार को सशक्त करने का काम करती है।

प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण हमारी संवैधानिक बाध्यता है। हमारे देश में सर्वव्यापीकरण को शत प्रतिशत नामांकन, शत प्रतिशत ठहराव और शत प्रतिशत सुलभता के आधार पर व्याख्यायित किया जाता है। संविधान निर्माताओं ने अभिवंचित समूह की महत्ता को अनुभव किया और इसके लिए आवश्यक उपबंध बनाये गए। भेद भाव रहित अनिवार्य शिक्षा लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। औपनिवेशिक भारत में सार्वभौमिक, सार्वजनिक शिक्षा के लिए लगातार आवाजें उठीं लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा इन माँगों को ठुकराया गया। विभिन्न जन आन्दोलनों के माध्यम से मुफ्त अनिवार्य शिक्षा के अधिकार जैसे मानवाधिकार से जुड़ी मांगे रह–रह कर उठती रहीं। स्वतन्त्र भारत के नीति–निर्माताओं ने संविधान की उद्देशिका को इस हद तक जनतांत्रिक बनाया कि वह हिन्दुस्तान की आत्मा बन गयी उद्देशिका से जुडे लोकतान्त्रिक मूल्यों की संप्राप्ति के निमित प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़ी नीतियों पर विभिन्न वादों के माध्यम से बहस होती रही और संविधान में संशोधन होते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के 63 वर्षों बाद हमें मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून 2009 प्राप्त हुआ। देश में संसाधनों की कमी है शिक्षा के अधिकार प्राप्त हो गए लेकिन इसे लागू करने के लिए आवश्यक योजनायें बनाना और प्रतिबद्धता के साथ कार्यान्वयन आवश्यक है। शिक्षा के निजीकरण और व्यावसायीकरण के दौर ने व्यवसायिक प्रर्तिस्पर्धा के फेर में बच्चों के भविष्य को दाँव पर लगा दिया है। सामाजिक वंचना, व्यक्तिगत वर्चस्व से डरे–सहमे वर्गों की एक लम्बी जमात लगातार बदहाली का शिकार हो रही है। शिक्षकों को इसके सरोकार समझने होंगे और उसी आधार पर अपनी शिक्षाई रणनीति बनानी होगी। विभिन्न प्रकारों के स्कूल से छुटकारा दिलाने हेतु समान विद्यालय शिक्षा प्रणाली के महत्व को समझना एक शिक्षक के लिये आवश्यक है। शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा 2009–10 एक ऐसे लोकतान्त्रिक शिक्षक की बात करता है जो संवेदनशील और पेशेवर हो एवं आलोचनात्मक शिक्षाई प्रक्रिया को विकसित कर सकें। विद्यालयी पाठ्यचर्या रटंत न बनकर बच्चों के सर्वांगीण, विकास आनंददायी और बच्चों को व्यवहारिक बनाने वाली होनी चाहिए। यह इकाई इस मायने में महत्वपूर्ण है कि आप संरचनात्मक एवं

गुणात्मक रूप से प्रारंभिक शिक्षा को उचित दिशा दे सकें। शिक्षा अधिकार कानून के तहत हमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा 2005 और उसके आधार पर बनी बिहार राज्य की पाठ्यचर्या की रूप रेखा ने शिक्षक–शिक्षण के सन्दर्भ में नई दिशा देने का काम किया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् शिक्षक को एक ऐसे पेशेवर रूप में देखना चाहता है जो संवेदनशील, लोकतान्त्रिक एवं कल्याणकारी विचारों से युक्त हो, जिसके आधार पर कक्षा कक्ष के दौरान अपना शत–प्रतिशत देने का प्रयास करें।

–::–

प्रश्न संग्रह

1. शिक्षा के विकास में राज्य की भूमिका का वर्णन करें।
2. भारतीय शिक्षा व्यवस्था में निहित विभिन्न लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का वर्णन करें।
3. भारतीय संविधान में वर्णित शिक्षा संबंधी प्रमुख प्रावधानों का वर्णन करें।
4. पिछड़े, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों तथा अन्य वंचित वर्गों के लिए शिक्षा संबंधी संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करें।
5. बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।
6. क्या आपको लगता है कि मौलिक अधिकार, नीति–निर्देशक तत्वों से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे न्यायोन्मुखी हैं। 6 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा के संदर्भ में इसकी तर्कपूर्ण समीक्षा करें।
7. शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट करें।
8. शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में बिहार राज्य कितना सफल रहा है? तर्कपूर्ण विवेचना करें।
9. शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण की दृष्टि से सर्व शिक्षा अभियान के स्वरूपों एवं उद्देश्यों का वर्णन करें।
10. शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण हेतु बिहार राज्य के प्रयासों की आलोचनात्मक विवेचना करें।
11. शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण में मुख्य अवरोधों का वर्णन करें।
12. 'राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण अभिकरण है।' इस कथन की समीक्षा करें।

संदर्भ सूची :–

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) भारत सरकार
- जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1993) भारत सरकार
- बिहार राज्य शिक्षा परियोजना परिषद् (BEP), 2009
- Govinda R. (1998) Recent Reforms and Improvement in Primary Education in India, Volume 3, No. 1, NIEPA,New Delhi
- Education for All (1998), Ministry of Human Resource and Development, Govt. of India, New Delhi
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, भारत सरकार, नई दिल्ली।

ई–संसाधनः–

- https://sarkariguider.in
- https://uou.ac.in
- https://scert.cg.gov.in
- https://www.egyankosh.ac.in
- https://primaryedudose.com
- https://rajbhasha.gov.in
- https://www.education.gov.in
- https://legislative.gov.in
- https://ncert.nic.in
- Righttoeducation-in/category/status/bihar

इकाई –4
शिक्षा और सामाजिक अपेक्षाएं

प्रस्तुत इस इकाई में हम समुदाय एवं विद्यालय के संबंधों को शिक्षा के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदानों के सन्दर्भ में जान सकेंगें। सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप हमारी शिक्षा व्यवस्था के तहत क्या हमारे ये शिक्षायी संस्थान काम कर पा रहें है या नहीं, इसकी पड़ताल कर सकेंगे। विद्यालय से हमारी क्या अपेक्षायें हैं, यह जान सकेंगे। समुदाय से हमारी जो अपेक्षाएँ हैं, क्या उसके अनुरूप समुदाय का सहयोग मिल पा रहा है? इनको देख सकेंगे। विद्यालयों के सरकारीकरण के पश्चात् समुदाय का विद्यालयों के प्रति रूझान को देख सकेंगे और उससे आगे के समय (1991) में आर्थिक सुधार नीतियों के लागू होने के कारण उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों की जानकारी भी लेंगे। इसके साथ ही इसी इकाई में हमलोग शिक्षा के 'माध्यम भाषा' के तौर पर अंग्रेजी के तरफ समाज के झुकाव को देखते हुए स्वतंत्रता पश्चात् अब–तक की भाषा नीतियों पर जिसमे त्रिभाषा सूत्र के महत्ता की भी बात करेंगे। अंत में समाज में नवाचार और विकास के लिए शिक्षा पर भी विमर्श इसी इकाई में किया जाएगा।

उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- समुदाय एवं विद्यालय के परस्पर संबंध एवं उनके योगदान को जानेंगे।
- सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को जान सकेंगे।
- विद्यालय से समाज की अपेक्षाओं को जान सकेंगे।
- आर्थिक नीति के कारण शिक्षा क्षेत्र में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों को जानेंगे।
- 'माध्यम भाषा' पर विमर्श में शामिल हो सकेंगे।
- समाज में नवाचार और विकास के लिए शिक्षा के महत्व को जानेंगे।

1. शिक्षा, विद्यालय तथा समुदाय :– अपेक्षा, समकालीन बदलाव तथा प्रभाव

शिक्षा मानव जीवन का समग्रीय अंश है। यह (शिक्षा) 'समग्र मानव' के विकास की बुनियादी दशा है। इसके अभाव में 'कल्याण' एवं 'समृद्धि' को प्राप्त करना संभव नहीं है। साथ ही मानव इसके अभाव में गुलाम की भाँति अपना जीवन व्यतीत करता है। मानव के इस पृथ्वी पर अवतरित होने के समय से ही शिक्षा चली आ रही है। इसलिए शिक्षा के बारे में सभी के द्वारा चर्चा की जाती है।

विद्यालय की भूमिका उपरोक्त सभी क्रियाओं में अहम है, क्योंकि जब कभी भी विद्यालय का नाम मस्तिष्क में आता है तो इसका सीधा मतलब होता है कि शिक्षा प्रदान करना एवं व्यक्तित्व का विकास करना।

सामान्यतः विद्यालय को वह स्थान माना जाता है जहाँ सूचना प्रदाताओं या शिक्षकों द्वारा छात्रों को कुछ विषयों की सूचनायें प्रदान की जाती है। आज भी हमारे देश में यह अवधारणा प्रचलित है। विद्यालय की इस अवधारणा को पेस्टालॉजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है :–

''ये विद्यालय अमनोवैज्ञानिक है, जो बालक को उसके स्वाभाविक जीवन से दूर कर देते हैं, उनकी स्वतंत्रता को निरंकुशता से रोक देते हैं और उसे अनाकर्षक बातों को याद करने के लिए

भेड़ों के समान हाँकते हैं और घण्टों, दिनों, सप्ताहों, महीनों तथा वर्षों तक दर्दनाक जंजीरों से बाँध देते हैं''।

परन्तु नवीन शैक्षिक विचारों तथा प्रयोगों ने उक्त अवधारणा में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। दूसरी ओर फ्रोबेल ने विद्यालय को 'बच्चों का उद्यान' कहा।

विद्यालय की परिवर्तनशील अवधारणा में उसे स्वयं में एक लघु समाज माना जाता है जिसमें उसके सुसंचालन के लिए उपयुक्त नियमों तथा विनियमों की व्यवस्था होती है। ये नियम बच्चों, माता–पिता शिक्षक आदि की सद्भावना पर आधारित होते हैं।

विद्यालय एक लघु समाज है, जिसकी स्थापना विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाती है। इसमें उन सामूहिक क्रियाओं को स्थान प्रदान किया जाता है जिसमें भाग लेकर बालक स्वयं को समाज का कुशल सदस्य बना सके। यानि कि वे उत्तम नागरिकता के गुणों को सीख सकें और भावी समाज को उन्नत और प्रगतिशील बना सके।

विद्यालय की उपर्युक्त अवधारणाओं को समन्वित रूप से एस0 बालकृष्ण जोशी ने शब्दों में व्यक्त किया है – ''विद्यालय ईंट और गारे की बनी हुई इमारत नहीं है, उसमें विभिन्न प्रकार के छात्र एवं शिक्षक होते हैं। विद्यालय बाजार नहीं है, जहाँ विभिन्न योग्यताओं वाले अनिच्छुक व्यक्तियों को ज्ञान बेचा जाता है। विद्यालय रेलवे प्लेटफार्म नहीं है, जहाँ विभिन्न उद्देश्यों से विभिन्न व्यक्ति की भीड़ जमा होती है। विद्यालय कठोर सुधार–गृह नहीं है, जहाँ किशोर अपराधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। विद्यालय आध्यात्मिक संगठन है, जिनका अपना स्वयं का विशिष्ट व्यक्तित्व है। विद्यालय गतिशील सामुदायिक केन्द्र है, जो चारो ओर जीवन और शक्ति का संचार करता है। विद्यालय एक आश्चर्यजनक भवन है जिसका आधार सद्भावना है– जनता की सद्भावना, माता–पिता की सद्भावना, छात्रों की सद्भावना। सारांश में, एक सुसंचालित विद्यालय एक सुखी परिवार, एक पवित्र मंदिर, एक सामाजिक केन्द्र, लघु रूप में एक राज्य और मनमोहक वृन्दावन है, इनमें सब बातों का मिश्रण है''।

तो स्पष्ट है कि एक विद्यालय से हमारी अपेक्षायें भी बहुत बड़ी है।

विद्यालय से अपेक्षायें –:

विद्यालयों का निर्माण कोई समाज अथवा राज्य अपने बच्चों और युवकों की शिक्षा हेतु ही करता है और इस शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियाँ सभी निश्चित होते हैं। इस प्रकार विद्यालय शिक्षा के एक औपचारिक अभिकरण होते हैं।

अतः, इस विद्यालय से समुदाय अथवा समाज की कई अपेक्षायें भी रहती हैं। आइये विद्यालय से अपेक्षाओं पर विमर्श करते हैं –:

(i) सामाजिक विकास की अपेक्षा –:

वैसे तो मनुष्य जन्म से ही सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है, लेकिन वह अपने लोगों के बीच किस प्रकार से रहे, इसका प्रशिक्षण उसे अपने सामाजिक पर्यावरण से ही मिलता है। आज–कल का सामाजिक पर्यावरण बड़ा ही दूषित है, उसमें उचित सामाजिकता का प्रशिक्षण मिलना असंभव है। विद्यालयों से ऐसे में सतर्कता सहित कार्य करते हुए अपने बच्चों में उचित शिक्षा देने की अपेक्षा रहती है। विद्यालयों में विभिन्न जाति, धर्म और अलग–अलग संस्कृतियों के बच्चे को मिल–जुल कर कार्य करने की प्रवृति एवं उनमे लोकतांत्रिक भावना के विकास के साथ सुसभ्य नागरिक निर्माण की अपेक्षा रहती है।

(ii) शारीरिक विकास की अपेक्षा –:

जब हम शिक्षा का उद्देश्य 'सर्वांगीण विकास' निर्धारित करते हैं, तो उसके एक घटक के रूप में शारीरिक विकास की भी बात आती है। विद्यालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चो के लिए खेल–कूद तथा व्यायाम की पूरी व्यवस्था करें, बच्चो में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के भाव विकसित करें।

(iii) मानसिक विकास की अपेक्षा –:

आज मानसिक विकास का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। मानसिक विकास का सीधा संबंध विचारों से होता है एवं विचारों का भाषा से। इसलिए मानसिक विचार का सबसे पहला सोपान बच्चों की भाषा का विकास है। भाषा और विचार का विकास साथ–साथ होता है। इसके बाद इसके क्षेत्र में मानसिक शक्तियाँ – स्मृति, कल्पना, चिन्तन और तर्क आदि का विकास आता है और व्यक्ति में विवेक शक्ति आती है। आगे के सोपान में विभिन्न तथ्यों की जानकारी आती है और सबसे अंतिम सोपान पर मानसिक रोगों से बचने के उपाय आते हैं।

विद्यालय से एक अपेक्षा यह रहती है कि ये बच्चों के मानसिक विकास में सहायक बने।

(i) सांस्कृतिक विकास की अपेक्षा –:

किसी समाज की संस्कृति को संरक्षित रखने और उसके विकास के प्रति किसी भी समाज की अपेक्षा अपने विद्यालय से होती है।

(ii) नैतिक एवं चारित्रिक विकास की अपेक्षा–:

ये ऐसे मानवीय, सामाजिक राष्ट्रीय मूल्य है जिसकी अपेक्षा एक सभ्य समाज, परिवार एवं राष्ट्र करता है। इन मूल्यों के विकास की अपेक्षा विद्यालयों से होना भी स्वाभाविक ही है।

(iii) रोजगार परक शिक्षा की अपेक्षा –:

प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने और राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए यह अपेक्षा रहती है कि विद्यालय व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा के प्रति रूझान प्रकट करें ताकि भावी पीढ़ी आर्थिक दृष्टि से उन्नत हो सकें।

(iv) राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षा की अपेक्षा –:

राष्ट्रीय विकास हेतु हरेक राष्ट्र अपना लक्ष्य निर्धारित कर एक भावी योजना बनाता है। इन लक्ष्यों को पाने में हमारे विद्यालय हमारे अपने बच्चों को विभिन्न पाठ्यक्रमों द्वारा लक्ष्य संधारण की बात रखते हैं। यथा–: संपूर्ण साक्षरता, विज्ञान और तकनीकी उपलब्धि हासिल करना, राष्ट्रीय मूल्यों की प्राप्ति एवं कानून अनुपालन जैसे मुद्दे विद्यालयी पाठ्यक्रम में समाविष्ट कर उससे राष्ट्रीय लक्ष्यों को हासिल करने की एक अपेक्षा रहती है।

(v) आध्यात्मिक विकास की अपेक्षा–:

आज विद्यालयों से यह अपेक्षा रहती है कि वे सभी मुख्य धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों से बच्चों को अवगत करा सके और उन्हें उच्च आदर्शों की शिक्षा दी जा सके।

(vi) शासन तन्त्र एवं नागरिकता की शिक्षा की अपेक्षा –:

आज अपने देश में लोकतन्त्र है। इस लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्त हैं – स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और न्याय। इन सबकी शिक्षा विद्यालयों में अपेक्षित है।

विद्यालयों की वर्तमान स्थिति –ः

आजादी के बाद भारत का ध्यान प्राथमिक/प्रारंभिक व माध्यमिक शिक्षा पर तत्काल नहीं था। शुरूआती वर्षों में उच्च शिक्षा ही प्राथमिकता में रहा। प्राथमिक शिक्षा (1–5)/प्रारंभिक शिक्षा (1–8) पर आते आते 17 साल लग गए और 1964 ई0 में कोठारी आयोग का गठन किया गया और इसी आयोग ने सर्वप्रथम ठोस सुझाव भी दिये। इसके परिणामस्वरूप ही वर्ष 1968 में भारत की पहली 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' अस्तित्व में आ सकी। कोठारी आयोग ने कई ऐसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे, जो आज भी लक्ष्य बने हुए हैं। आयोग का सुझाव था कि समाज के अन्दर व्याप्त जड़ता, सामाजिक भेद–भाव को समूल नष्ट करने के लिए 'समान स्कूल प्रणाली' एक कारगर औजार होगा। समान स्कूल व्यवस्था के आधार पर ही सभी वर्गों एवं समुदायों के बच्चे एक साथ समान शिक्षा पा सकते हैं। आयोग ने कई और भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे। फिर 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण हुआ। इसमें कमजोर वर्गों के बच्चों की शिक्षा, 21वीं सदी के अनुरूप कौशल तथा योग्यताओं का विकास, बाल केन्द्रित शिक्षा और शहरी ग्रामीण क्षेत्रों को शिक्षा से जोड़ने के जैसे प्रमुख विचार थे। इसी बीच 1 अप्रैल 2010 को शिक्षा अधिकार कानून भी लागू किया गया। इस अधिनियम के लागू होने से 6 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को विद्यालयों में निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने का कानूनी अधिकार मिल गया है।

अब तो 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) के क्रियान्वयन का समय भी आ गया है। इसके तहत पूर्व प्राथमिक शिक्षा के शुरूआती 3 वर्ष भी औपचारिक शिक्षण का हिस्सा बन पड़े हैं लेकिन चुनौतियाँ आज भी कायम हैं। जनगणना 2011 के मुताबिक 8.4 करोड़ बच्चे स्कूल ही नहीं जाते हैं जबकि 78 लाख बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल तो जाते है लेकिन इसके साथ काम पर भी जाते हैं। तो क्या समय परिवर्तन के साथ हमारे विद्यालयों ने हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप काम किया है? शायद नहीं। वजह चाहे जो भी हो।

हम विद्यालयों और उसके भौतिक दिशाओं में तो लगातार सुधार लाते जा रहे हैं, लेकिन यदि निष्पक्ष होकर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि आज के अधिकतर विद्यालयों की दशा इतनी भी अच्छी नही है कि उनसे लक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति पूर्णतः करा ली जा सके। NEP 2020 के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु अभी भी आधारभूत संरचना एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को और भी सुदृढ़ करने कि जरूरत है। हालाँकि इसी बीच कुछ सरकारी और कुछ निजी विद्यालयों ने अपेक्षानुरूप कार्य कर सफलता भी हासिल की है परन्तु, हमें इसे व्यापक स्तर तक हासिल करने की बहुत जरूरत है।

'समुदाय' क्या है?

साधारण बोलचाल की भाषा में 'समुदाय' व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो मिलकर सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति तथा सामान्य जीवन व्यतीत करने के लिए एक निश्चित भू–भाग में रहते हैं। अतः समुदाय के निर्माण के लिए सामान्य हित, निश्चित भू–भाग, सामान्य जीवन स्तर तथा एकता की भावना का होना अनिवार्य है। वस्तुतः समुदाय अति विस्तृत तथा व्यापक शब्द है और इसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों का समावेश रहता है। उदाहरणार्थ – परिवार, धार्मिक संघ, जाति, पड़ोस, नगर, राज्य एवं राष्ट्र, समुदाय के विभिन्न रूप में है। सभ्यता की प्रगति और इसके परिणामस्वरूप विश्व के लोगों की एक–दूसरे पर अधिक निर्भरता हो जाने के कारण समुदाय की धारणा विस्तृत हो गयी। आज हम विश्व–समुदाय की धारणा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है। अतः, समुदाय में एक वर्ग किलोमीटर से कम का भी क्षेत्र हो सकता है या इसका

घेरा विश्व भी हो सकता है। यह क्षेत्र/घेरा इस बात पर निर्भर करता है कि इसके सदस्यों में आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समानतायें हों।

ब्राउनेल ने लिखा है –

''समुदाय से मेरा अभिप्राय इस छोटे समूह से है, जिसमें विभिन्न प्रकार के व्यक्ति, युवक और वृद्ध, पुरूष और स्त्री विभिन्न कुशलताओं और योग्यताओं से युक्त सजातीय पड़ोसियों के समान एक साथ मिलकर रहते हैं। यह प्राथमिक समूह है, जिसमें जीवन के अनेक मुख्य कार्य समूह में ही रहकर एक–दूसरे के सहयोग से किये जाते हैं''।

विद्यालय–समुदाय सहभागिता क्यों आवश्यक है ?

सहभागिता आदर्श सामुदायिक जीवन की तैयारी तथा वास्तविक जीवन की शिक्षा के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। व्यावहारिक जीवन की शिक्षा तभी ठीक होगी जब विद्यायल दैनिक–अनुप्रयोगी समस्याओं का समाधान शिक्षा कार्यक्रमों में अवश्य ही करता हो। यदि जनतंत्रीय मूल्यों की शिक्षा देनी है तब व्यक्तिगत सम्मान, परस्पर सहयोग तथा समानता के अवसर जुटाने आवश्यक होंगे। यद्यपि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में ही रहकर वह अपना विकास करता है, पर वह समाज के रीति–रिवाजों को एकदम जन्म लेते ही नहीं सीख लेता है। इसका ज्ञान वह धीरे–धीरे समाज में रहकर प्राप्त करता है। विद्यालय बालकों का समाजीकरण करने के लिए उनमें प्रेम, बंधुत्व एवं सामाजिकता की भावनाओं का विकास करता है। इन भावनाओं के विकास के लिए विद्यालय का जीवन सामूहिक होना आवश्यक है।

सामूहिक जीवन ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिससे छात्रों को एक पदार्थ के रूप में दिया जा सके। यह तो एक प्रवृत्ति है जिसका विकास किया जाता है। ये सारी प्रक्रिया विद्यालय–समुदाय के सहभागिता से ही संभव है। इस हेतु सामुदायिक जीवन के लिए विद्यालय का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

समुदाय से अपेक्षायें क्या है ?

हम जानते हैं कि परिवार की भाँति समुदाय भी शिक्षा का एक प्रभावशाली अभिकरण होता है। कोई समुदाय कितना भी छोटा क्यों न हो, वह परिवार से काफी बड़ा होता है। परिवार की दुनिया से निकलकर जब बच्चा अपने समुदाय में पैर रखता है तो वह समुदाय के अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं के संपर्क में आता है और उसका अनुकरण कर अनेक बातें सीखता है। समुदाय में बच्चे अपने परिवार में सीखे हुए ज्ञान एवं व्यवहार में सुधार लाते हैं।

अपने देश में समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा में दुहरा कार्य करते हैं– एक तो वे अपने में ऐसे पर्यावरण का निर्माण करते हैं कि बच्चे उनकी क्रियाओं में भाग लेकर भाषा और आचरण की शिक्षा प्राप्त करें, दूसरे वे अपने क्षेत्र में विद्यालयों की स्थापना करते है। ऐसे में समुदाय से कुछ अपेक्षायें भी की जाती है। यथा –:

(i) राज्य द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों की संप्राप्ति में सहायक की भूमिका के रूप में अपेक्षा –:

समुदाय, राज्य द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों की संप्राप्ति में बेहतर सहयोग कर सकते हैं। उनसे अपेक्षा होती है कि वे बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक और व्यावसायिक विकास में पूर्ण सहयोग दें। आज राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझ की अपेक्षा, राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति एवं आध्यात्मिक विकास पर भी खासा जोर है। समुदाय इन उद्देश्यों

की संप्राप्ति में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए समुदाय से एक बड़ी भूमिका निर्वहन की हमेशा अपेक्षा रहती है।

(ii) **आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता में भूमिका निर्वहन की अपेक्षा –:**

विद्यालय के मूलभूत संरचना, आवश्यक संसाधन की उपलब्धता यथा–: चहारदीवारी, खेल–मैदान, मरम्मती एवं रख–रखाव सामग्री, पुस्तकालय, प्रयोगशाला निर्माण, खेल–कूद सामग्रियों की व्यवस्था इत्यादि में समुदाय की भूमिका अपेक्षित होती है। इनके सहयोग के बिना विकास की दर धीमी हो सकती है।

(iii) **मेले, प्रदर्शनी व अन्य समारोहों का आयोजन कराने में भूमिका।**
(iv) **विद्यालयों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के व्यवस्था की अपेक्षा।**
(v) **अपने क्षेत्र में पूर्व प्राथमिक शिक्षा हेतु सहयोग एवं जागरूकता प्रसार की अपेक्षा।**
(vi) **स्वास्थ्य एवं स्वच्छता को लागू करा पाने की अपेक्षा।**
(vii) **बच्चो के नैतिक–चारित्रिक विकास के प्रति सचेतता लाने में पूर्ण सकारात्मक सहयोग की अपेक्षा।**
(viii) **सामाजिक विकृतियों को दूर कर शिक्षा के प्रसार में अपेक्षित भूमिका निर्वहन की अपेक्षा।**
(ix) **बेहतर नागरिक निर्माण में सहयोग की अपेक्षा।**
(x) **सामाजिक परिवर्तन लाने एवं नवाचार को लागू किये जाने में विद्यालय के साथ समन्वय बनाते हुए कार्य करने की अपेक्षा।**

समय के साथ विद्यालय समुदाय के रिश्ते में आया बदलाव

यह स्पष्ट है कि विद्यालय तथा समुदाय के बीच घनिष्ट सम्बन्ध होता है। ये दोनों ही अपनी–अपनी उन्नति एवं स्थायित्व के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। समाज स्वयं को जीवित रखने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करता है जिनके द्वारा समाज के विचारों, मान्यताओं, आदर्शों, क्रियाकलापों, मानदण्डों तथा परंपराओं को आनेवाली पीढ़ी को प्रदान किया जा सके।

इस विषय में कोई दो मत नहीं कि समुदाय बच्चों के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं परन्तु, आज यह विकास कैसा हो रहा है, यह भी हमें देख लेना चाहिए।

एक समय था जब समुदाय ही विद्यालयों के निर्माण से उसके विकास तक की पूरी जिम्मेवारी लिये हुए था पर, स्कूलों के राजकीयकृत करने के पश्चात् समुदाय ने भी पूरी जिम्मेवारी सरकारों पर थोप दी। समुदाय, विद्यालय सहयोग से हटने लगे एवं विकास की प्रक्रिया में सरकार को सुझाव मात्र देने लगे। परिणामतः समुदाय से विद्यालय को अपेक्षित सहयोग नहीं मिल पा रहा है।

यदि हम उन्नति करना चाहते हैं, तो हमें अपने समुदाय की दशा में सुधार करना होगा और समाज की शिक्षा का उत्तरदायित्व संभालना होगा। समुदाय के बच्चों के सामने ऐसा सामाजिक वातावरण पेश करना होगा कि बच्चे चारित्रिक एवं नैतिक गुणों को अपना सके एवं विश्व कल्याण में भागीदार बन सके।

समुदाय का विद्यालय पर प्रभाव

'विद्यालय को सामाजिक जीवन का एक आदर्श निचोड़ होना चाहिए। उसे अपने परिवेश में समाज की मुख्य उपयोगी गतिविधियों को स्थान प्राप्त करना चाहिए।' (के0 जी0 सैयदेन)

इस कारण समुदाय का विद्यालय पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। विद्यालय पर समुदाय के प्रभाव को निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है –

i) समुदाय के आदर्शों, मान्यताओं व आवश्यकताओं का प्रभावः–

समुदाय अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं आदि की पूर्ति के लिए विद्यालयों की स्थापना करता है।

ii) समुदाय के आर्थिक दशाओं का प्रभाव –ः

समुदाय विश्व का संक्षिप्त रूप है। यह प्रत्येक मूलभूत क्रिया के लिए अवसर प्रदान करता है, चाहे वह क्रिया अतीत से संबंधित हो या वर्तमान से। समुदाय की छोटी–छोटी दुकानें तथा उसके लघु व्यवसाय, विश्व के आर्थिक व्यवस्था के परिचायक हैं। जहाँ एक ओर आर्थिक सम्पन्न समाज समयानुरूप जरूरतों को पूरा कर पाने में सक्षम होते है, वही दूसरी ओर आर्थिक रूप से विपन्न समुदायों की अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी सरकार/ एन0जी0ओ0 व अन्य पर निर्भरता बनी रहती है। इस प्रकार विद्यालय पर समुदाय की आर्थिक व्यवस्था या दशा पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

iii) समुदाय की राजनीतिक दशाओं का प्रभाव –ः

समुदाय की राजनीतिक दशाओं का विद्यालय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी समुदाय में शिक्षा की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए? इसका उत्तर उस समुदाय की राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर करता है। जैसे– भारतीय समुदाय ने लोकतांत्रिक शिक्षा प्रणाली को अपनाया है।

iv) समुदाय के गुणों व दोषों का प्रभाव –ः

प्रत्येक समुदाय गुण व दोषों से युक्त है। भारतीय समुदाय भी इससे अछूता नहीं है। इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव/कुप्रभाव विद्यालयों पर प्रभाव पड़ता ही है। जहाँ एक ओर समुदाय विद्यालयी नीतियों को लागू करा पाने में अवरोधक होते है, वहीं समुदाय के आपसी ताल–मेल एवं उनके गुणों से सामाजीकरण एवं नीतियों का बेहतर क्रियान्वयन हो पाता है।

विद्यालय का समुदाय पर प्रभाव

i) समुदाय की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण –

प्रत्येक समुदाय के अपने रीति–रिवाज, परम्परायें, विश्वास, नैतिकता, नियम, साहित्य आदि होते हैं जिनको उस समुदाय ने प्राचीन समय से लेकर आज तक अर्जित किया है। शिक्षा, समुदाय की इस सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखने तथा विकसित करने की प्रक्रिया है।

ii) समुदाय की आवश्यकताओं एवं माँगों की पूर्ति –

प्रत्येक समुदाय की अलग– अलग आवश्यकतायें एवं माँगें होती हैं। विद्यालय अपनी योजना तथा कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके समुदाय की माँगों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

iii) समुदाय के भावी स्वरूप का निर्धारण –

विद्यालय, समुदाय की आवश्यकताओं एवं माँगों की पूर्ति ही नहीं वरन् उसके भावी स्वरूप का भी निर्माण करता है। समुदाय की माँगें, आवश्यकतायें, मान्यतायें, आदर्श आदि बदलते रहते हैं। इन्हीं के अनुसार समुदाय को बदलना आवश्यक है अन्यथा वह गतिहीन हो जायेगा।

iv) समुदाय की व्यावसायिक व औद्योगिक प्रगति –

कोई विद्यालय समुदाय की व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रगति को भी प्रभावित करता है। समुदाय के विभिन्न तरह के व्यवसायों को पाठ्यक्रम में किसी–न–किसी रूप में स्थान मिलता है। महात्मा गाँधी ने भारतीय समुदाय की आर्थिक दशा के सुधार के लिए बेसिक शिक्षा पर बल दिया था। बेसिक (बुनियादी) शिक्षा के पाठ्यक्रम ने उस समय के समुदाय को '' कौशल युक्त शिक्षा की ओर मुखातिब किया था। आज विद्यालयों में विभिन्न तरह के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का विद्यालय से जुड़ाव संबंधित समुदायों को प्रशिक्षित करता है, उन्हें कौशल युक्त करते हुए उनके आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहायक होने के साथ–साथ औद्योगिक प्रगति को भी गति देने में मददगार होता है।

समुदाय को विद्यालय के निकट कैसे लाना

i) **समुदाय के सदस्यों को आमन्त्रण –** विद्यालय, सामुदायिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों को आमन्त्रित करें। जैसे– वह सामाजिक कार्यकर्त्ता, धार्मिक कार्यकर्त्ता, डॉक्टर, किसान, वकील, पेन्टर, सम्पादक, व्यापारी, गायक, नर्तक आदि व्यक्तियों को आमन्त्रित करे। ये लोग अपने व्यवसायों तथा अन्य सामाजिक तथ्यों पर प्रकाश डालकर छात्रों को सामुदायिक जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के बारे में ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।

ii) **अभिभावक–शिक्षक संघ –** समुदाय को विद्यालय में लाने के लिए अभिभावक–शिक्षक संघ महत्वपूर्ण कार्य भूमिका अदा कर सकता है। छात्रों के माता–पिता को शिक्षण कार्य में निम्नलिखित प्रकार से सम्बद्ध किया जा सकता है–

जो प्रकरण या इकाई स्थानीय समुदाय से सम्बन्धित हो, उनके प्रतिपादन के समय अभिभावकों को विद्यालय में बुलाया जाये। अभिभावक, छात्रों के समक्ष प्रकरण से सम्बन्धित स्थानीय तथ्यों को प्रस्तुत करेंगे। साथ ही विद्यालय किसी प्रकरण के सम्बन्ध में अभिभावकों से प्रश्नावली के माध्यम से सूचनायें प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः समुदाय को विद्यालय के निकट लाने का यह एक अच्छा माध्यम हो सकता है।

iii) **फिल्म–शो व प्रदर्शनियाँ –** फिल्मों के माध्यम से समुदाय को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है। विभिन्न कार्यों में संलग्न व्यक्तियों को फिल्मों के माध्यम से समुदाय के सम्बन्ध में उपयोगी ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। विद्यालय विभिन्न प्रदर्शनियों का आयोजन करके समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है और उनका सहयोग प्राप्त कर सकता है।

iv) **मेलों, उत्सवों आदि का मनाना –** विद्यालय पोषक क्षेत्र के अधीन विभिन्न स्थानीय मेलों, उत्सवों एवं त्योहारों को मनाकर, उनमें शामिल होकर समुदाय को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है। इनमें भाग लेने तथा देखने के लिए स्थानीय समुदाय को आमन्त्रित किया जाना चाहिये। इससे विद्यालय तथा समुदाय एक दूसरे के निकट आ सकेंगे।

v) **सामुदायिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं का संगठन –** समुदाय को विद्यालय के निकट लाने के लिए विद्यालय में सामुदायिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं का आयोजन किया जाये। इनके आयोजन से छात्र सामुदायिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

vi) **सामुदायिक समस्याओं का समाधान –** विद्यालय जिस समुदाय में स्थित है, उसे उस समुदाय के विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए कार्य करना चाहिए। इन सामुदायिक

समस्याओं के समाधान से छात्र अपने सामुदायिक जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे, जैसे–

यदि विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है तो उसकी अमुक समस्याओं की ओर ध्यान देना चाहिए यथा– सफाई की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए? लघु उद्योगों की स्थिति को किस प्रकार सुधारा जा सकता है? बाजार की समस्या को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है ? आदि।

(vii) प्रौढ़–शिक्षा का केन्द्र – विद्यालय जिस समुदाय में स्थित है, उसके अशिक्षित प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए विद्यालय को प्रौढ़ शिक्षा का केन्द्र बनाया जाय। ऐसे केन्द्र विद्यालय समय अवधि के उपरान्त प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिए व्यवस्था करे। इस व्यवस्था से एक तो वे साक्षर हो जायेंगे, दूसरे वे अपने अनुभवों से छात्रों को अवगत कराने में समर्थ होंगे। इस प्रकार से विद्यालय तथा समुदाय एक–दूसरे के निकट आ सकेंगे।

विद्यालय को समुदाय के निकट लाना

विद्यालय को समुदाय के निकट करने के कुछ प्रयास करने होंगे जो निम्न हो सकते है:–

i) **साक्षात्कार –** प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति के लिए , साक्षात्कार आधार का कार्य करते हैं। छात्र,समुदाय के विभिन्न लोगों से साक्षात्कार करके विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही समुदाय के बहुत से लोग उनको साहित्य प्रकाशित कर तथा श्रव्य–दृश्य सामग्री प्रदान करके महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान कर सकते हैं।

ii) **सामाजिक सर्वेक्षण क्लबों का संगठन –** सैयदेन के अनुसार, विद्यालय को सामाजिक सर्वेक्षण क्लब संगठित करने चाहिए जो अपने आस–पास के सामुदायिक जीवन की कुछ तात्कालिक आवश्यकताओं तथा समस्याओं के बारे में छान–बीन करने का काम करे, जैसे–सड़कों की दशा, नगर/ ग्राम में गन्दे पानी की नालियों की व्यवस्था, आस पास के क्षेत्रों में स्वास्थ्य तथा सफाई से सम्बन्धित परिस्थितियों पर सर्वेक्षण, प्रदूषण को फैलाने के स्त्रोत, उस क्षेत्र की मुख्य उद्योग एवं व्यवसाय आदि के अलावे शैक्षिक उपलब्धि सर्वेक्षणों में उनकी मुख्य भागीदारी हो।

iii) **समाज–सेवा संघों का निर्माण –** सैयदेन के अनुसार– सर्वेक्षण में यह जान लेना ही काफी नहीं है कि हमारे चारों ओर के वातावरण में क्या दोष है? हमें दोषों को दूर करने में अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। अतः विद्यालयों में समाज–सेवा संघों का निर्माण करना चाहिए, जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेवायें समुदाय के लिए अर्पित कर सकें।

iv) **क्षेत्र–पर्यटन –** क्षेत्र पर्यटनों के माध्यम से छात्रों को समुदाय में लाया जा सकता है। पर्यटन का उद्देश्य मन बहलाव के लिए विद्यालय के बाहर जाना नहीं होना चाहिए, वरन् विषय का स्पष्टीकरण या समस्या का समाधान खोजना होना चाहिए। विद्यालय निम्नलिखित प्रकार के पर्यटनों का आयोजन करके छात्रों को आस–पास के वातावरण की वास्तविक स्थितियों से अवगत करा सकते हैं –

- लघु पर्यटन – इस प्रकार के पर्यटन सामान्यतः एक घण्टे के होते हैं। इस निर्धारित अवधि में छात्र कक्षा के बाहर रहकर अपने निकटस्थ वातावरण का अध्ययन कर सकते हैं।
- सामान्य क्षेत्र–पर्यटन – इस प्रकार के पर्यटन का क्षेत्र लघु पर्यटन से व्यापक होता है। इसकी अवधि भी अधिक होती हे।
- वृहत् पर्यटन – इसका क्षेत्र उपर्युक्त दोनों प्रकार के पर्यटनों से अधिक विस्तृत होता है।

इसमें समय भी अधिक लगता है। इसमें छात्रों को पूर्ण तैयारी के साथ बाहर जाना पड़ता है।

v) **सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था –** विद्यालय को नगरों या ग्रामों में जाकर शिक्षाप्रद सांस्कृतिक कार्यक्रमों, बाल मेला आयोजन, नाटक, लोक गीत/नृत्य कार्यक्रम, सामाजिक उत्पादक कार्य (SUPW) संबंधी क्षेत्र अनुभव कार्यक्रम आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे विद्यालय, समुदाय की संस्कृति से अवगत हो सकेगा।

इस प्रकार उक्त माध्यम से हम विद्यालय को समुदाय से जोड़े रखने में सफल हो सकते हैं।

2. शिक्षायी संस्थाएँ :– सामाजिक परिवर्तन एवं पुनर्निमाण के अभिकरण के रूप में

शिक्षा समाज के लिए होती है। अतः, शिक्षा का समाज से घनिष्ट संबंध होता है। कभी तो सामाजिक परिवर्तन के कारण शिक्षा प्रभावित होती है और कभी शिक्षा ही समाज में परिवर्तन लाने का कारण बनती है। वास्तव में शिक्षा को समाज के अनुकूल होना चाहिए। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का अभिकरण भी कहा जाता है। औपचारिक रूप से स्कूल, कॉलेज जैसी शिक्षायी संस्था ही इसके मुख्य अभिकरण होते हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं पुनर्निमाण में इन शिक्षायी संस्थाओं के कार्य निम्नलिखित रूपों में निर्धारित होते हैं –

i) सामाजिक परिवर्तनों को अपनाने में लोगों को तैयार करना।
ii) परिवर्तन के विरोधों को दूर करने में मदद करना
iii) सामाजिक परिवर्तन की समीक्षा करना
iv) सामाजिक परिवर्तनों में नेतृत्व करना :–

शिक्षक और समाज मिलकर किसी भी तरह के परिवर्तन को लाने हेतु नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। अन्य लोगों की अपेक्षा ऐसे विद्वान लोगों के नेतृत्व ज्यादा प्रभावी होते हैं।

v) सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में भूमिका :–

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसलिए शिक्षा का कार्य समाज में कुरीतियों को दूर करना भी है। भारत में बहुत पहले से ही कई तरह की कुरीतियाँ रही है, जिसे दूर करने में शैक्षणिक संस्थाएँ अपनी भूमिका निभाती रहती है। जैसे– बाल विवाह उन्मूलन, दहेज प्रथा विरोध, लड़कियों के पढ़ाई को लेकर भेद–भाव को दूर करना आदि। इस उद्धार के लिए शिक्षायी संस्था सबसे बेहतर अभिकरण के रूप में अपनी भूमिका निर्वाह कर सकते है।

vi) ज्ञान क्षेत्रों में विकास
vii) राष्ट्रीय एकता एवं आर्थिक वृद्वि लाना :–

शिक्षा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। यह सामाजिक कुशलता एवं आर्थिक कुशलता की भावना का विकास करती है। इससे समाज के परिवर्तनों में योगदान मिलता है। ऐसा होने से लोगों का जीवन स्तर बेहतर होता है एवं राष्ट्र की समृद्धि, एकता अखण्डता भी सुनिश्चत होती है।

viii) छात्रों में वैज्ञानिक मूल्यों का विकास करना
ix) छात्रों में जनतांत्रिक मूल्यों का विकास करना।

x) समाज के लोगों में चरित्र निर्माण के प्रति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन।

xi) छात्रों में व्यावसायिक क्षमता का विकास कर पाना।

स्वतंत्रता के पश्चात् वर्तमान भारत के विद्यालयों के कार्यों में काफी अधिक परिवर्तन आ गया है। हमारा देश जनतांत्रिक आदर्शों पर विश्वास करने वाला है। इसके तहत नागरिको पर कुछ उत्तरदायित्व भी लागू होते है। यह प्रेम, सहयोग, सहनशीलता, पक्षपातरहित, सत्यवादिता और समान भावनाओं पर आधारित रहता है। वर्तमान स्कूल/संस्थाएं बच्चों की मानसिक, शारीरिक सौन्दर्यात्मक, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है। भविष्य की संभावनाओं और चुनौतियों के लिए भी यह सक्षम है। इसी कारण हम इसे सामाजिक परिवर्तन का एक अच्छा अभिकरण भी कहते हैं।

3 आर्थिक सुधारों का शिक्षा पर प्रभाव

भारतीय इतिहास में यूँ तो कई महत्वपूर्ण वर्ष रहे हैं, लेकिन जहाँ तक आर्थिक विकास के इतिहास की बात है वर्ष 1991 इसके लिए एक ऐतिहासिक घटना वर्ष के रूप में जाना जाता है। इसमें देश के आर्थिक नीतियों में मूलभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। आर्थिक नीतियों में काफी बड़े बदलाव लाने की आवश्यकता महसूस की गई और यही आर्थिक सुधारों की पहल में सहायक सिद्ध हुआ। ऐसा महसूस किया जाने लगा कि यदि तंत्र (System) की उत्पादकता और कार्य क्षमता में सुधार लाना है तो राज्य एवं बाजार की भूमिकाओं को पुनः परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है। वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों की शुरूआत से ही इन्होंने अनेक क्षेत्रों को आच्छादित किया जिसमें प्रमुख हैं –:

औद्योगिक लाइसेंस को हटाया जाना, विदेशी निवेश पर प्रतिबन्ध हटाना, आयात शुल्क में कमी लाना। आयात शुल्क को चरणबद्ध तरीके से हटाना, बाजार की ताकतों द्वारा विनियम दर का निर्धारण, वित्तीय क्षेत्र में सुधार, पूँजी बाजार का उदारीकरण, सार्वजनिक क्षेत्रों में निजी क्षेत्र का प्रवेश, निजीकरण, रियायत/सब्सिडी में कमी, मूल्य संबर्धित कर (VAT) और सेवा कर लगाया जाना। देश में आर्थिक सुधारों के इस प्रयास से आगे चलकर शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र भी प्रभावित हुए। आईये अब हम इनके जुड़ाव को समझते हैं।

शिक्षा का आर्थिक विकास एवं आर्थिक सुधार से सम्बन्ध

आर्थिक विकास के लिए मानवीय संसाधनों का बहुत महत्व है जिसके द्वारा निरन्तर आर्थिक विकास होता रहता है और देश उन्नति करता है। जितना सक्षम व योग्य मानवीय संसाधन होगा उतना ही विकास होना निश्चित है। अतएव उसकी योग्यता, क्षमता, निपुणता, कौशल का विकास करना आवश्यक है। इन शक्तियों का विकास शिक्षा के द्वारा ही संभव है। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा का आर्थिक विकास से संबंध है और यह इसका एक अभिन्न अंग भी है। शिक्षा द्वारा मानव में कौशल का विकास होता है और कौशल वृद्वि के कारण उत्पादन क्षमता, उत्पादन और उपयोगिता बढ़ने के फलस्वरूप आर्थिक विकास संभव है। इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी कि शिक्षा और आर्थिक विकास एक दूसरे से संबंधित है।

शिक्षा का तात्पर्य साक्षर बनाना ही नहीं बल्कि मानव को कौशल विकास हेतु शिक्षा के सभी स्तरों पर अपव्यय एवं अवरोधों को कम करना है, साथ ही शिक्षा व आर्थिक विकास के मध्य जरूरी संबंध भी बनाना है ताकि हमारी शिक्षा आर्थिक विकास में अपना पूर्ण योगदान दे सके।

आइये जरा आर्थिक गतिविधियों पर विमर्श करें। आर्थिक गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग पर आधारित होती है। इनको क्षेत्रक भी कहते हैं। ये क्षेत्रक तीन तरह के होते हैं–:

(i) प्राथमिक क्षेत्रक :–
जब प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से किसी वस्तु का उत्पादन होता हो। जैसे– कृषि,

डेयरी, मत्स्य पालन और वनों से प्राप्त उत्पाद।

(ii) द्वितीयक क्षेत्रक :–

प्राकृतिक उत्पादों की विनिर्माण प्रणाली द्वारा अन्य रूपों में परिवर्तित किया जाता है। ये प्रकृति से उत्पादित नहीं होते बल्कि निर्मित किये जाते हैं। यह प्रक्रिया किसी कारखाने कार्यशाला या घर में हो सकती है। जैसे – कपास के रेशे से सूत कातना और कपड़ा बुनना।

(iii) तृतीयक क्षेत्रक :–

ये गतिविधियाँ प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्रक के विकास में मदद करती है। ये गतिविधियाँ स्वतः वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती, बल्कि उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग करती है।

जैसे – सूत या बने कपड़ों के भण्डारण हेतु गोदामों की जरूरत, व्यापार में सहूलियत हेतु दूसरों से वार्तालाप या बैंक से कर्ज लेने हेतु सेवाएँ देने की जरूरत।

सेवा क्षेत्र में कुछ ऐसी भी सेवाएँ शामिल होती है, जो प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं के उत्पादन में सहायता नहीं करती है।

उपरोक्त सभी का विकास शिक्षा के योगदान के बिना संभव नहीं है। जैसे– शिक्षक, डॉक्टर, वकील, नाई, मोची आदि व्यक्तिगत सेवाएँ उपलब्ध कराने वाले से लेकर प्रशासनिक और लेखा कार्य करने वाले पेशेवर लोगों की भी जरूरत होती है। वर्तमान में सूचना–प्राद्योगिकी पर आधारित नवीन सेवाएँ – इंटरनेट कैफे, ATM, कॉल सेन्टर, सॉफ्टवेयर कम्पनी इत्यादि भी सेवायें प्रदान करती है। भारत बहुत से उत्पादकों के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक रहा हैं इसमें प्राथमिक एवं विनिर्मित दोनों ही आते हैं। भारत दूध उत्पादन एवं चावल, गेहूँ, चाय, चीनी और मसालों के उत्पादन अग्रणियों में से एक है। यहाँ उच्च शिक्षा के कारण प्रतिभाशाली मानवशक्ति का सबसे बड़ा पूल है। लगभग 2 करोड़ भारतीय विदेशों में काम कर रहे हैं और वे विश्व अर्थव्यवस्था में मदद कर रहे हैं। भारत विश्व में सॉफ्टवेयर अभियन्ताओं के सबसे बड़े आपूर्तिकर्त्ताओं में से एक है और सिलिकॉन वैली में USA में लगभग 30% उद्‌यमी भारतीय मूल के हैं। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा के सुधार का आर्थिक विकास से सीधा संबंध है। संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की एक रिपोर्ट के अनुसार विकास मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं वरन् उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी संबंधित होता है। विकास का आशय केवल आर्थिक वृद्वि ही नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थात्मक तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल है।

यह भी सत्य है कि भारत में आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप आर्थिक विकास दर का बढ़ना संभव हुआ है। इसका अर्थ यह है कि जहाँ आर्थिक सुधार से आर्थिक विकास संभव है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक विकास से शिक्षा का विकास एवं शिक्षा के विकास से आर्थिक विकास का तेज होना संभव हैं, क्योंकि शिक्षा एवं विकास एक दूसरे से परस्पर संबंधित है। कुल मिलाकर शिक्षा का आर्थिक विकास एवं आर्थिक सुधार की प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है।

आइये आगे हम यह समझते हैं कि शिक्षा पर इन आर्थिक सुधारों का क्या प्रभाव दिखता है?

भारत सरकार द्वारा ऐसी नीति आ जाने से आर्थिक सुधार के जो वृहद प्रयास थे जिनमें विदेश व्यापार, उदारीकरण/वित्तीय उदारीकरण, कर सुधार और विदेशी निवेश के प्रति आग्रह शामिल रहा, इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को गति देने में मदद की। तब से भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी आगे बढ़ने में मदद मिली है। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की औसत वृद्वि दर जो 1951–91 के दौरान 4.34% थी,

1991–2011 के दौरान 6.24% के रूप में बढ़ गई। वर्ष 2015 में भारतीय अर्थव्यवस्था 2 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर से आगे निकल गयी। यह बात अलग है कि पिछले कुछ सालों में कतिपय कारणों से इसमें गिरावट भी आई है।

आज भारतीय अर्थव्यवस्था अमेरिका, चीन, जापान, जर्मनी के बाद विश्व की पाँचवी (5वीं) सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है (2019, वर्ल्ड पोपुलेशन रिव्यू)। 2018 में यह 7वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रही।

इस प्रकार से भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधार का अभिप्राय उन नीतियों के प्रभावों से है जहाँ अल्पतर सरकारी नियंत्रण, अल्पतर सरकारी निषेध, निजी क्षेत्रों की भागीदारी, करों की अल्पतर दर और निवेशकों को उदारीकरण के साथ बढ़ावा दिये जाने से है। इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि आर्थिक सुधार की प्रक्रिया एक तरह से आर्थिक विकास की ही प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत कोई देश अपने समस्त उत्पादक साधनों का उचित प्रयोग करके अपने राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि करके प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि करता है, जिससे सामाजिक दशाओं में उन्नति व व्यक्तियों का जीवन–स्तर भी ऊँचा हो जाता है।

भारत में आर्थिक सुधार का शिक्षा पर प्रभाव

भारत में जब कभी भी आर्थिक सुधारों का शिक्षा पर प्रभाव देखने की बात होती है, हमें इनके प्रमुख घटक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) के द्वारा शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों को देखना जरूरी हो जाता है।

आइये, हम इनसे पड़ने वाले प्रभावों का बिन्दुवार अवलोकन करते हैं।

उदारीकरण का शिक्षा पर प्रभाव –:

शिक्षा में उदारीकरण का मुख्य उद्देश्य शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, संचालन एवं शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन, क्रियान्वयन तथा पर्यवेक्षण में उदार दृष्टिकोण अपनाकर उन्हें परंपरागत, रूढ़िवादी दृष्टिकोण से मुक्त करना एवं सभी वर्गों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करना है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के इस युग में सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था, कल्याणकारी राज्य की स्थापना, जनसंख्या की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति, आर्थिक विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्वि, पर्यावरण, प्रदूषण जनित समस्या इत्यादि की दृष्टि से शिक्षा में उदारीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। तो, भारत में 1991 से आगे के वर्षों में जारी आर्थिक सुधार की प्रक्रिया अन्तर्गत उदारीकरण का शिक्षा पर प्रभाव क्या पड़ा है?

देखा जाए तो इसके कुछ सकारात्मक तो कुछ नकारात्मक प्रभाव दिखते हैं।आइये, हम इनके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को देखते हैं।

उदारीकरण का शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव :–

(i) वित्त पोषण में सहायता
(ii) शैक्षिक संस्थानों के मध्य प्रतिस्पर्धा में वृद्वि फलस्वरूप गुणवत्ता में वृद्वि
(iii) भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए शिक्षा एक आर्थिक स्त्रोत के रूप में परिवर्तित।
(iv) कौशल युक्त पेशेवर शिक्षा की व्यवस्था।
(v) शिक्षकों एवं छात्रों के लिए कैरियर चुनने एवं भविष्य में अन्य विकल्पों की सुविधा।
(vi) तकनीकी एवं संप्रेषण के विकास से शिक्षित जनसंख्या में वृद्वि।

राष्ट्रीय हितों एवं प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत में शिक्षा की उपलब्धता, सामर्थ्यता एवं गुणवत्ता में वृद्वि के लिए उदारीकरण आवश्यक है।

निजीकरण का शिक्षा पर प्रभाव –:

जिन क्रियाओं या उद्यमों को पूर्व में सरकार द्वारा संचालित या प्रबंधित किया जा रहा हो, उसे जब किसी निजी उद्यमी या संस्था या कम्पनी को संचालित या प्रबंधित करने के लिए सौंप दिया जाता है तो, हस्तान्तरण की इस प्रक्रिया को निजीकरण की प्रक्रिया कहते हैं।

कुछ साल पहले से भारत में निजीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत हुई है। सामान्य अर्थ में निजीकरण का आशय है – स्वामित्व में परिवर्तन या सरकारी स्वामित्व के स्थान पर निजी व्यक्ति या उद्यमी का स्वामित्व। प्रायः लोगों में यह अवधारणा बन गई है कि निजीकरण से निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होता है। इसके माध्यम से लागत में कमी और गुणवत्ता को उन्नत बनाया जाता है। वस्तुतः निजीकरण का मूल मंत्र होता है – **प्रतिस्पर्धा।** उसका मुख्य उद्देश्य होता है – **मुनाफा।**

इस प्रकार निजीकरण का शिक्षा पर प्रभाव जो देखने को मिल रहा है, वे निम्न है –:

(i) शिक्षा का प्रसार हो रहा है।

(ii) देश का धन सकारात्मक कार्यों में लग रहा है।

(iii) कुछ हद तक बेरोजगारी दूर करने में सहायक ।

(iv) योग्य या कुशल व्यक्ति को उसकी योग्यतानुरूप प्रतिभा विकास के अवसर मिल रहे हैं।

(v) प्रतिस्पर्धा भाव के कारण अध्येताओं को वांछित शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकारिक विकल्पों की उपलब्धता

(vi) शिक्षण संस्थाओं की स्थापना से संबंधित रोजगार, छात्रावास, स्टेशनरी, कैण्टीन सुविधाएँ, प्रकाशक ,नवाचारी उपस्करों के उत्पाद आदि को बढ़ने के अवसर मिल रहे हैं।

(vii) निजीकरण से कार्य क्षमता में वृद्वि, गुणवत्तायुक्त शिक्षकों की उपलब्धता, प्रयोगशाला और पुस्तकालयों के साथ साथ ICT प्रयोगशाला का उपयोग बेहतर हो रहा है।

निजीकरण के नकारात्मक प्रभाव :–

- यह समर्थ एवं असमर्थ लोगों के बीच एक बड़ी खाई उत्पन्न करता है।
- इस पद्धति का छिपा हुआ उद्देश्य आर्थिक मुनाफा कमाना रहता है।
- शुल्क के नाम पर आर्थिक दोहन की संभावना बनी रहती है।
- कर्मचारियों का शोशण होता है।

वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव –:

एक तरफ जहाँ वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला है वहीं दूसरी तरफ इसका प्रभाव शिक्षा पर भी दिखा है।

i) शिक्षा आज हरेक राष्ट्र की आवश्यकता है। हरेक राष्ट्र की यह सोच बनी है कि उनके बच्चे एक अच्छे जिम्मेवार नागरिक बनें, ताकि राष्ट्र की उन्नति हो सके। बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए सभी तरह की सुविधाएँ एवं विकास के अवसर प्रदान हो सके, इसके लिए हर राष्ट्र का अपना प्रयास रहता है। वैश्वीरकरण के प्रभाव से ही आज विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनेस्को तथा यूनीसेफ आदि संस्थाएँ विश्व में बच्चों को रोगमुक्त बचपन की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु कार्यों एवं योजनाओं का संचालन करते हैं।

ii) शिक्षा के माध्यम से पूरे विश्व की गतिविधियों से अवगत होना वैश्वीकरण के कारण ही संभव हो पाया है। अतः, कह सकते हैं कि वैश्वीकरण ने ज्ञान की सीमाओं का विस्तार किया है।

iii) वैश्विक शांति स्थापित करने की नियत से ही शिक्षा पर इसका प्रभाव दिखने लगा है। विश्व के लगभग सभी देशों ने प्राथमिक स्तर से ही आदर्शों, मूल्यों, सांस्कृतिक संरक्षण हेतु विमर्श

शुरू कर दिया है। विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान जैसे मुद्दे को इस रूप से पढ़ाये जाने की जरूरत महसूस हो रही है जो शांति, सहयोग, अहिंसावादी एवं एक आदर्श समाज की स्थापना में सहायक हो सके।

iv) वैश्वीकरण के कारण सर्वजन हिताय की विचारधारा का जन्म हुआ, जिससे सभी देशों को एक–दूसरे के लिए सामाजिक सहयोग की भावना विकसित हुई। अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास हुआ।

v) विकासशील देशों को वैश्विक सहयोग मिलने से शिक्षा स्तर में तेजी से सुधार हुआ है एवं उनका जीवन–स्तर भी बढ़ा है।

vi) शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभाव से ही आज बाल–अधिकारों, मानवाधिकारों की सुरक्षा संभव हो पाई है, जिसके प्रभाव से बाल श्रम, मानव–तस्करी जैसे प्रवृत्तियों को गंभीर अपराध घोषित किया गया।

vii) वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय चिन्ताओं का निराकरण, आपसी सद्भाव एवं सहयोग की भावना, आंतकवाद से निपटने में, व्यापार संबंध बढ़ाने में, शैक्षिक अवसरों को बढ़ाने में, तकनीकी आदान–प्रदान में वैश्वीकरण का काफी बड़ा प्रभाव हमारे देश एवं यहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर पड़ा है।

हालाँकि इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं, जैसे –:

–शक्ति का केन्द्रीकरण।
–विकसित देशों का एकाधिकार ।
–अविकसित देशों की उपेक्षा।
–समानता के दृष्टिकोण का अभाव।

विकसित देशों पर निर्भरता का बढ़ना, उनके तानाशाही रवैयों को बर्दाश्त करना, प्रजातांत्रिक मूल्यों का दुरूपयोग आदि भी इनके नकारात्मक प्रभाव के रूप में दिख जाते हैं।
इस प्रकार से हम पाते हैं कि आर्थिक सुधारों के तहत उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का व्यापक प्रभाव हमारी शिक्षा–व्यवस्था पर पड़ा है।

4. शिक्षा के माध्यम भाषा की समस्या का समाधान

विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिए जिस भाषा का प्रयोग होता है, उसे शिक्षण की माध्यम भाषा कहते हैं। शिक्षा की यह माध्यम भाषा मातृभाषा भी हो सकती है और कोई दूसरी भाषा भी। इसलिए भाषा किसी न किसी प्रयोजन/उद्देश्य सन्दर्भ में सीखी या सिखाई जाती है, लेकिन मातृभाषा के शिक्षा का माध्यम बनाने का मुख्य उद्देश्य अपने समाज में संप्रेषण प्रक्रिया को सुदृढ, व्यापक और सशक्त बनाना होता है। वस्तुतः मातृभाषा एक सामाजिक यथार्थ है जो व्यक्ति को अपने भाषायी समाज के अनेक सामाजिक सन्दर्भों से जोड़ती है और उसकी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करती है। इसी के आधार पर व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के साथ जुड़ा रहता है। क्योंकि वह उसकी संस्कृति और संस्कारों की संवाहक होती है। मातृभाषा ही वह भाषा है जिसके आधार पर व्यक्ति का सशक्त सामाजीकरण संभव हो पाता है। इससे प्रयोक्ता की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान और बौद्दिक विकास के साथ–साथ उसकी संवेदनाओं और अनुभूतियों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी होती है और बच्चा अपनी भाषा में धारा–प्रवाह बोलने में समर्थ और सक्षम होता है। शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा स्वयं–साध्य की भूमिका निभाती है। और अन्य विषयों के शिक्षण के लिए साधन अर्थात् माध्यम के रूप में सिखाई जाती है। साध्य के रूप में मातृभाषा को स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। इसमें भाषा के साहित्य और भाषाई विशिष्टता का ज्ञान कराया जाता है। शिक्षार्थी बचपन में अपनी मातृभाषा बोलता और समझता तो है ही, उसकी बौद्दिक चेतना में वृद्दि करने के लिए विद्यालय में मातृभाषा के

पढ़ने और लिखने के कौशलों को भी सिखाया जाता है। इसलिए वह साक्षर होकर अपने रोजमर्रे के कार्य सुचारू रूप से करने में सक्षम और समर्थ हो जाता है। भारत में मातृभाषा को विषय रूप में अधिकतर पढ़ाया जाता है, किन्तु इसके लगभग सभी राज्यों में (एकाध छोड़कर) माध्यम की भाषा के रूप में अपनी मातृभाषा का प्रयोग नहीं हो रहा है।

विदेशों में अंग्रेजी बच्चों को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है, लेकिन शिक्षा के माध्यम के रूप में वहाँ अपनी भाषा का ही इस्तेमाल होता है। उनकी अपनी भाषा जीवन्त और सशक्त होती है। इससे वे नए ज्ञान–विज्ञान तथा साहित्य का सृजन करते हैं। विश्व के अधिकतर देशों में शिक्षा के क्षेत्र में अपनी मातृभाषा को माध्यम की भाषा के रूप में प्रयुक्त करने पर बल दिया जाता है, जैसे– जापान में जापानी, दक्षिणी कोरिया में कोरियन, स्वीडन में स्वीडीश, फ्रांस में फ्रेंच, अमेरिका में इंगलिश आदि। इनमें से अधिकतर देशों में प्राथमिक स्तर से स्नातक स्तर तक मातृभाषा 'शिक्षा–माध्यम' के रूप में प्रयुक्त होती है और कुछ ही ऐसे देश हैं जहाँ प्राथमिक स्तर तक।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के माध्यम भाषा को लेकर समय–समय पर विभिन्न समिति/आयोगों की अनुशंसा कुछ इस प्रकार से रही है –

a) ताराचन्द समिति (1948) –:

इनका सुझाव था कि उच्च प्राथमिक स्तर के बाद मातृभाषा के अतिरिक्त संघीय भाषा या अंग्रेजी को अनिवार्य बना दिया जाए।

(b) राधाकृष्णन आयोग (1948–49) –:

इनका सुझाव छात्रों को तीन भाषा के ज्ञान कराने का था –

- मातृभाषा/प्रान्तीय भाषा
- राज्य की भाषा
- अंग्रेजी

(c) मुदालियर आयोग (1952)

इस आयोग ने छात्रों के लिए माध्यमिक स्तर पर दो भाषाओं के अध्ययन पर अपना सुझाव दिया।

(d) कोठारी आयोग (1964) –:

इस आयोग ने निम्नलिखित त्रिभाषा सूत्र प्रतिपादित किया।

- मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा
- संघ की राज भाषा या सह–राजभाषा
- एक आधुनिक भारतीय भाषा/विदेशी भाषा जो उक्त दोनों के अलावे हो।

उपर्युक्त सुझावों से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भारत में भाषाओं की उलझन को सुलझाने के लिए द्विभाषा सूत्र से त्रिभाषा सूत्र को ही अपनाया है।

अभी हाल ही में **नई शिक्षा नीति 2020** में माध्यम भाषा को लेकर कुछ बातें सामने आई हैं जो इस प्रकार से हैं –

बच्चों द्वारा भाषा सीखने के मामले में डॉ0 के0 कस्तूरीरंगन समिति (नई शिक्षा समिति ड्राफ्ट, 2019) और भारत सरकार को **नई शिक्षा नीति 2020** में पिछली दो शिक्षा नीतियों (1968,1986) में अपनाए गए त्रिभाषा–सूत्र को जारी रखने की सिफारिश करने के लिए प्रेरित किया लेकिन साथ ही दो महत्वपूर्ण बदलाव भी किए गए –:

a) यह कि त्रिभाषाओं को ज्यादा शुरूआती दौर में ही शामिल किया जाए और इसे आगे ले जाया जाए– जिससे कि छोटे बच्चे कई भाषाओं में महारत हासिल कर सके।

दूसरा यह कि तीन भाषाओं का विकल्प पूरी तरह से माता–पिता और विद्यार्थियों पर छोड़ दी जाए। नई शिक्षा नीति 2020 में यह भी सुझाव दिया गया है कि अंग्रेजी को सभी बच्चों को तीन भाषा में से एक के रूप में अच्छी तरह से पढ़ाया जाना चाहिए, क्योंकि अंग्रेजी के प्रति लोगों का लगाव बढ़ता दिख रहा है। यह भी सिफारिश की गई है कि विज्ञान और गणित जैसे विषयों को अंग्रेजी और घरेलू दोनों भाषाओं में पढ़ाया जाए। इस तरह, राज्य सरकारों पर जिम्मेदारी डाली गई है कि वह राज्य के सरकारी स्कूलों में अलग–अलग समुदायों की जरूरतों को पूरा करने वाले हर स्कूल के हिसाब से शिक्षा के माध्यम को अलग–अलग करे और यह भी सुनिश्चत करें कि सभी स्कूलों में अंग्रेजी अच्छी तरह से पढ़ाई जा रही हो। यह सचमुच राज्य सरकारों द्वारा लागू किया जाने वाला बड़े सुधार के तौर पर देखना होगा। बिहार राज्य में न केवल भोजपुरी, मैथिली, मगही, वज्जिका, अंगिका के अलावे कई भाषाओं में पढ़ाने के लिए शिक्षक जुटाने होंगे बल्कि, हिन्दी के साथ द्वि–भाषी पढ़ाई भी करनी होगी, जो कि फिलहाल पढ़ाई का माध्यम है। अगर राज्य सरकारें अलग भाषाओं में शिक्षा के माध्यम के रूप में शिक्षण प्रदान करने में सक्षम हों, तो भी देश की भाषाई विविधता को देखते हुए बहुत मुमकिन है कि लाखों बच्चे ऐसी भाषाओं में दी जानी वाली कक्षाओं में शामिल होते रहेंगे, जो उन्हें समझ में ही नहीं आती है। शहरी क्षेत्रों में चुनौती और बड़ी होगी, जहाँ कोई प्राथमिक स्कूल, चाहे व निजी हो या सरकारी, ऐसे बच्चों का दाखिला ले रहा होगा, जिनकी घरेलू भाषाएं अलग–अलग है। इन हालात में अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना बेहतर हो सकता है, क्योंकि ऐसे बच्चों में अलग–अलग क्षेत्रीय माध्यम भाषा के बच्चों के लिए क्षेत्रीय भाषा भी अंग्रेजी की ही तरह विदेशी (भिन्न) लगती है। माता–पिता/अभिभावकों द्वारा अंग्रेजी चयन के पक्ष में यही तर्क दिया जाता है, और इसी तर्क को केन्द्रीय विद्यालय व दूसरे विद्यालयों द्वारा अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा देने के लिए आगे बढ़ाया जा रहा है। ऐसे सभी मामलों में बच्चों को कुछ भी सिखाने की कोशिश करने से पहले, बच्चों को लगातार बातचीत के माध्यम से भाषा सीखने में मदद करने के लिए अतिरिक्त प्रयासों की जरूरत होगी।

5. समाज में नवाचार एवं विकास के लिए शिक्षा

आईये सबसे पहले हम नवाचार' (नव + आचार) को जानने का प्रयास करते हैं। इसका सामान्य अर्थ है–नवीनता लाना, परिवर्तन लाना। वास्तव में 'नवाचार' का अर्थ किसी उत्पाद प्रक्रिया या सेवा में थोड़ा या बहुत बड़ा परिवर्तन लाने से है।

नवाचार के अन्तर्गत कुछ नया और उपयोगी तरीका अपनाया जाता है, जैसे–नई विधि–प्रविधि, नई तकनीक, नई कार्य–पद्धति, नई सेवा, नया उत्पाद आदि।

किसी वस्तु में, क्रिया व विचार में परिवर्तन होना प्रकृति का नियम है। परिवर्तन से ही किसी भी क्षेत्र में विकास के चरण आगे बढ़ते हैं। यही परिवर्तन किसी व्यक्ति और समाज को स्फूर्ति, चेतना, उर्जा एवं नवीनता प्रदान करता है। नवाचार नव प्रवर्तन ही है, पर, ''नवाचार हमेशा कोई नया कार्य करना ही नहीं है, बल्कि किसी भी कार्य को नये तरीके से करना भी नवाचार है।''

वारनेट के अनुसारः–

> ''नवाचार एक विचार है, व्यवहार है या पदार्थों का नया रुप है जो कि वर्तमान स्वरुप से नकारात्मक दृष्टि से भिन्न है।''

नवाचार की कुछ विशेषताएँ होती है, :–

– नवाचार किसी भी चीज में परिवर्तन लाता है।

- नवाचार एक ऐसा विचार है, जिसमें कुछ नया किया जाता है।
- नवाचार के बाद किसी चीज/प्रक्रिया/उत्पाद की गुणवत्ता एवं उपयोगिता बढ़ जाती है।
- यह प्रक्रियागत सुधार की बात करता है।
- नवाचार का प्रचलन में आना सामाजिक स्वीकृति करने को दिखाता है, क्योंकि तमाम नवाचार समाज के ही अनुरुप किये जाते हैं।

आईये नवाचार एवं नवाचारी विशेषताओं को निम्न कुछ उदाहरणों से समझने का प्रयास करते हैं उदाहरणार्थ :–

पहिया (Wheel):- 3500 इ०पू० (BC) में खोजा गया था। इसने लोगों के जीवन में बड़े बदलाव ला दिये। प्रारंभिक दौर में यह लकड़ी का बना हुआ था, जिससे लोग सामानों को इधर–उधर किया करते, परन्तु आगे–आगे इस पहिये ने अविश्वसनीय तरीकों से दुनिया को बदल दिया है। विशेषकर मशीनीकरण में, तेज वाहनों में, उसके उपयोग दिखते हैं, हालांकि इसके उपयोग क्षेत्र और भी व्यापक हैं।

जहाँ तक इस खोज में नवाचार की बात है, समय के साथ–साथ मानव ने अपनी जरुरत अनुरुप कई नवाचार कर डाले। पहले धातु के भारी पहिये जो भार सह सकने में सक्षम थे, से लेकर आज के समय तक प्रचलित मिश्र धातु के बने हल्के, मजबूत और संतुलन बनाये रखने में सक्षम पहिये भी नवाचारी प्रयोग ही हैं, जिसे समय अनुरुप स्वीकृति भी मिलती गई है।

इलेक्ट्रीक वाहनों के रुप में दिखता नवाचारः–

कार/ बाईक तो बहुत पहले ही बन चुके थे, परन्तु समय के साथ–साथ मानवीय जरुरतों के अनुरुप इसमें कई प्रयोग हुए। जहाँ पहले किक स्टार्ट था, वहाँ अब रिमोट स्टार्ट प्रणाली है। जहाँ ईंधन के रुप में सामान्यतः पेट्रोल/डीजल था, वहीं इलेक्ट्रीक कार/बाईक के रुप में नवाचारी उत्पाद उपभोक्ता के पसंद की वस्तु है।

मोबाईल फोन/ आई–फोन के रुप में नवाचार :–

आधुनिक समाज में मोबाईल फोन के जो उपयोग देखे जा रहे हैं, उससे हर व्यक्ति जिससे चाहें उसके सम्पर्क में लगातार बने रह सकते हैं। न केवल बातचीत बल्कि GPS से लोकेशन, वाट्सअप से संदेश आदान–प्रदान करना एवं महत्वपूर्ण सूचनाओं को साझा किये जाने से लेकर मनोरंजन के साधन के रुप में भी इसका उपयोग जगजाहिर है। इसी कड़ी में आई–फोन और भी परिष्कृत गैजेट्स के रुप में लाया गया है। इससे हम नवाचारी उत्पाद के रुप में देख सकते हैं।

इसके नवाचारी उपयोग ने प्रबंधक–सहायक, शिक्षक/अभिभावक–विद्यार्थी, नियोक्ता–कर्मी के संबंधों को नजदीक कर सुविधाओं का विस्तार किया गया है।

इंटरनेट उपलब्धताः–

इस समय के सबसे सफल नवाचार/नव–प्रवर्तन के रुप में देखे जाने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पुराने समय के लोग जो सिर्फ अखबारों, पुस्तकालयों एवं पत्राचारों के माध्यम से सूचना प्राप्त करते रहे, अब उन्हें ''उँगलियों पर जानकारी'' उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सूचना एवं उसके सम्प्रेषण के तकनीक (ICT) विकसित कर ली गयी है, जो हमारे नवाचार के अन्तर्गत बेहद ही महत्वपूर्ण हिस्सा है।

प्रिंटिग में दिखता नवाचारः—

प्रिंटिंग प्रेस ने जहाँ लिखित दस्तावेजों को बड़े पैमाने पर उत्पादन की सुविधा दी, वह भी कम समय में एवं थकान रहित, परन्तु, अब और भी स्पष्ट, आकर्षक, रंगीन, शुद्ध वर्तनी, ग्राफिक्स के साथ अपेक्षाकृत कम समय में डिजीटल प्रिंटिंग का प्रचलन नवाचार के रुप में बढ़ा है।

रोशनी हेतु विभिन्न बल्वों में दिखता नवाचारः—

आज हम उर्जा संरक्षण को लेकर चिंतित हैं, तो ऐसे में हमने CFL/LED के कम उर्जा खपत वाले बल्वों/ बत्तियों को बढ़ावा दिया है, जो कि पुराने उत्पादों की तुलना में अपेक्षाकृत सस्ती भी है एवं सुविधाजनक भी है।

सेवा क्षेत्रों में प्रचलित नवाचारः—

बैंक, डाकघर, बाजारों में क्रय—विक्रय, रुपयों का लेन—देन, अनाजों/खाने—पीने के समान/दवाई/शुल्क भुगतान/पर्यटन, यात्रा पर खर्च आदि, आम आदमी पहले भी किया करते थे, परन्तु बदलते हुए जरुरतों के मुताबिक व्यक्तियों ने इनके प्रक्रियाओं में थोड़ा या ज्यादा बदलाव किया। इस बदलाव ने लोगों को काफी आकर्षित किया और लोगों ने इस नये प्रचलन को अन्ततः सामाजिक स्वीकृति भी प्रदान कर दी है।

प्रचलित नवाचार कुछ इस प्रकार हैः—

– ऑनलाईन बैंकिंग ATM से राशि निकासी एवं जमा किये जाने का बढ़ता प्रचलन।

– ग्राहक स्वयं सेवा।

– ऑनलाईन मार्केटिंग के अन्तर्गत सामानों का ऑर्डर लेना/देना, क्रय—विक्रय, दवा किराना/खाने—पीने के सामानों की होम डिलेवरी जैसी सेवाओं का प्रचलन, बुकिंग करने का प्रचलन बहुत सामान्य हो चला है।

तो अब तक विभिन्न उदाहरणों से हम नवाचारों को जानने का प्रयास कर रहे थे। हमारे समाज में जो भी प्रचलित नवाचार है उसके पीछे बदलते सामाजिक स्वरुप और उसकी परिवर्तित आवश्यकता व जिज्ञासा ही रही है एवं इन्हीं आवश्यकताओं, जिज्ञासाओं की पूर्ति में वह अपनी बुद्धिमता का उपयोग कर पूर्व की स्थितियों को सुधारते हुए सामाजिक नवाचार को अंजाम देते हैं।

'सामाजिक नवाचार' का अर्थ नये विचार, उपाय, नीतियाँ, प्रक्रमों एवं संगठनों की पुनः—व्यवस्था से है। इसमें कार्य करने की स्थितियाँ, शिक्षा, सामुदायिक विकास और स्वास्थ्य आदि को श्रेष्ठतर बनाने के लिए किये गये सभी नवाचार आ जाते हैं।

निष्कर्षतः, हम इसमें ऐसे भी कह सकते हैं किः—

''नवाचार वह विचार है जिनको मानने या स्वीकार करने वाला उसे नवीन विचार के रुप में देखता और अनुभव करता है।''

आईये अब नवाचार एवं विकास के परस्पर संबंधों को जानते हैं।

क्या समाज में हो रहे नवाचार से विकास संबंधित है?

निःसंदेह–'हाँ'। हम जान चुके हैं कि नवाचार के पीछे समाज की प्रतीक्षित माँग होती है, जिसकी पूर्ति होते ही उसके पूर्व के चीजों की स्थितियाँ बदल जाती है एवं उनके नई स्थिति को सामाजिक सहमति प्रदान कर दी जाती है। यदि पूर्व के स्थितियों में बदलाव नहीं होता, तो कहा जा सकता था कि हालात नहीं सुधरे यानि गुणात्मक वृद्धि या विकास नहीं हो सका। अतः, यह तो स्पष्ट है कि नवाचार से विकास का सीधा संबंध है। दूसरे शब्दों में नवाचार विकास को गति प्रदान करता है।

नवाचार के उक्त स्पष्ट अवधारणा के साथ अब हमें अपने पेशे से संबंधित नवाचार पर विचार करना भी अपेक्षित होगा। हमारी शिक्षा समय के अनुकूल हो, इस हेतु तकनीकी व सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से नवाचार की अत्यन्त आवश्यकता है। इन नवाचारों को शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करके तकनीकी व सामाजिक उन्नति की जा सकती है।

शैक्षिक नवाचार क्या ?

शिक्षाविदों के आधुनिक चिन्तन के फलस्वरुप और आज की जरुरतों के अनुरुप नये विचारों, अवधारणाओं, विधियों, प्रयोगों, सिद्वांतों और सूचनाओं को शामिल किये जाने को लेकर प्रचलित व्यवहारों का संग्रह ही शैक्षिक नवाचार है। यह नवाचार शैक्षिक तकनीकी के रुप में शिक्षा दर्शन, मनोविज्ञान और विज्ञान आदि शिक्षा के समस्त पहलुओं को प्रभावित करता है।

शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र (Scope):-

शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान होते रहते हैं। जमीनी स्तर पर काम कर रहे शिक्षकों के अनुभव, समाज में रह रहे अभिभावकों के अनुभवों, सभी तरह के हित धारकों की राय, इन सबों के सुझावों के अनुरुप सरकार नीतियों का पुनरीक्षण या नवनिर्माण करती रही है। 1986 की शिक्षा नीति के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 को हाल ही में मंजूरी भी मिल गयी है। इस प्रकार से शिक्षा–नीति में कई नवाचारी विचारों का समावेश हुआ है।

जहाँ तक शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र (Scope) की बात है, सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन कराना तो हित धारकों के लिए एक क्षेत्र है ही, पर कई ऐच्छिक प्रस्तावों पर भी नीति–निर्धारकों व हित धारकों को नवाचार की जरुरत महसूस होती है।

इस तरह से शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र व्यापक है, जिन्हें निम्न रुप में वर्णित किया जा सकता है:–

- अनिवार्य सरकारी नीतियों के अन्तर्गत आने वाले शैक्षिक नवाचारों को लागू करना।
- प्रबंधक एवं शिक्षक–समन्वय पर पहल।
- नये व्यावसायिक पाठ्यक्रम को लागू करने की संभावना।
- नवाचारी शिक्षक विधियों पर विमर्श एवं योजना निर्माण करना।
- कठिन अधिगम बिन्दुओं को सहज बनाने पर कार्य करना।
- राष्ट्रीय/ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और वैश्वीकरण से संबंधित सूचनाओं तथा ज्ञान का प्रसार करना/ कराना।
- सूचना तकनीकी का प्रयोग करना/ कराना।

– अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक मानकों पर विचार करना।

– शैक्षिक पर्यटन, सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजन व खेल–कूद जैसे सह–शैक्षिक कार्यों में प्रोत्साहन हेतु काम करना।

– ऑनलाईन कक्षा/ सम्पर्क कक्षा सत्र को आयोजित करा पाना।

– पाठ्य–पुस्तकों के सॉफ्ट कॉपी/ डिजिटल प्रति की उपलब्धता को बढ़ावा देना।

शैक्षिक नवाचार को बढ़ावा मिल पाने के लिए उक्त बिन्दु इनके कार्यक्षेत्र (Scope) के रुप में मौजूद है।

शैक्षिक नवाचार के महत्वः–

(i) नवाचार द्वारा एक शिक्षक बच्चों को बोझ रहित, उबाऊ रहित, रुचिकर शिक्षा देने में समर्थ हो पाते हैं।

(ii) शिक्षक पाठ–शिक्षण की नई विधि–प्रविधि की तैयारी करते हैं, जिससे उनका पेशेवर विकास होता है।

(iii) यह शिक्षक को अपने काम के प्रति रचनात्मक, जिम्मेदार एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने में सहयोग करता है।

(iv) शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों ही सृजनशील एवं अध्ययनशील बनते हैं।

(v) अभिव्यक्ति क्षमता एवं शिक्षक दक्षता में निखार लाने में शैक्षिक नवाचार के महत्व है।

(vi) विद्यालय एवं समुदाय के उपलब्ध संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग में शैक्षिक नवाचार महत्वपूर्ण है।

(vii) वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति हेतु शैक्षिक नवाचार बहुत ही महत्वपूर्ण है।

(viii) सामाजिक परिवर्तन लाने में, देश की आर्थिक स्थिति को विकसित करने हेतु, रोजगार के नये अवसर सृजन करने में भी शैक्षिक नवाचार के महत्व है।

समाज में नवाचार एवं विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता क्यों?

समकालीन आवश्यकताओं के अनुरुप हो रहे नवाचारों का देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरुपों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है और शैक्षिक व्यवस्था पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यही वजह है कि शिक्षा–व्यवस्था/प्रणाली को सुदृढ़ करने की जरुरत है। नवाचार एवं विकास भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। अब प्रश्न उठता है कि समाज में होने वाले नवाचार एवं उससे होने वाले विकास में शिक्षा/स्कूली शिक्षा (प्रारंभिक) को बेहतर करने की आवश्यकता क्यों है?

आईये हम बिन्दुवार इसे जानने का प्रयास करते हैं। यहाँ हम यह जान पायेंगे किः–

(a) समाज के विकास में शिक्षा की आवश्यकता क्यों पड़ी है?

(b) नवाचार हेतु शिक्षा की क्या जरुरत है?

(a) समाज के विकास में शिक्षा की आवश्यकता क्यों पड़ी है?

मानव जीवन में शिक्षा के कार्यः–

भारतीय समाज की वर्तमान आवश्यकताओं, मूल्यों, गुणों, समस्याओं तथा उद्देश्य ों को ध्यान में रखते हुए मानव जीवन के निम्न कार्य हैः–

– वातावरण से समायोजन करने एवं उन्हें परिवर्तन योग्य बनाने में।

– व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति कर राष्ट्रीय आय और उत्पादकता वृद्धि करने में।

– आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में शिक्षा सहायक बन व्यक्ति को उसके जीवन–यापन के लायक सक्षमता प्रदान करती है।

– अच्छी शिक्षा द्वारा बच्चों को विभिन्न कार्य क्षेत्रों का व्यावहारिक ज्ञान, नैतिक–चारित्रिक, सामाजिक ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे व्यक्तिगत विकास के साथ ही सामाजिक विकास भी हो पाता है।

अतः, हम कह सकते हैं कि समाज विकास में शिक्षा का कार्य मानवीय क्षमताओं, गुणों व उनकी शक्तियों को विकसित करना है।

सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्यः–

चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज के साथ निर्वाह करने के लिए शिक्षा को अनेक कार्य करने पड़ते हैं यथा–समाज के साथ अनुकूलन

- सामाजिक कर्तव्यों/दायित्वों की पूर्ति
- सभ्यता विकास अनुरुप संस्कृति विकास
- सामाजिक भावना/सामाजिक गुणों का विकास
- शिक्षा समाज को दिशा देती है। निःसंदेह यह सत्य है कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है।

राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्यः–

एक राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके नागरिक श्रेष्ठ हों। उनको ऐसा बनाना ही राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा का कार्य है। इसमें शिक्षा निम्न रुप से सहायक है–

– राष्ट्रीय मूल्यों को विकसित कर एक जिम्मेवार नागरिक के निर्माण में।

– शिक्षा राष्ट्रीय नेतृत्व हेतु मानव संसाधन को विकसित करती है और इससे कुशल, प्रशिक्षित एवं अलग–अलग पेशे से संबंधित मानव संसाधन विकसित होते हैं।

– उन्नत सोच एवं राष्ट्र विकास में शिक्षा सहायक है। शिक्षा का कार्य राष्ट्रीय हितों की रक्षा है। शिक्षित व्यक्ति अधिकार सम्पन्न एवं कर्तव्यों के प्रति जवाबदेह होता है। उसकी सोच का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। वह जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अंधविश्वास, क्षेत्रीयता आदि से दूर रहकर भाईचारे को बढ़ावा दे सकने में सक्षम होता है।

सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की अहम भूमिका के फलस्वरुप विकासः–

शिक्षा समाज में व्याप्त कुरीतियों, रुढ़िवादिता, भेद–भाव, धार्मिक कट्टरता, जातिगत व लैंगिक विषमता को बहुत हद तक दूर कर पाने में या कम कर पाने में सहायक रही है। यदि विसंगति दूर होती है, तो विकास दर का तेज होना स्वाभाविक है।

"शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है, जिसका उपयोग आप दुनिया को बदलने के लिए कर सकते हैं।"(नेल्सन मंडेला)। यह किसी व्यक्ति की मानसिक क्षमता को बढ़ाने में हमारी मदद करता है जो बदले में व्यक्ति के सोचने के तरीकों को बदल देता है। इसके परिणामस्वरुप सामाजिक संबंधों के पैटर्न में बदलाव होता है और इसलिए यह सामाजिक परिवर्तन का कारण बन सकता है। यहाँ शिक्षा का मुख्य प्रोत्साहन व्यक्ति के दृष्टिकोण, सोच और जीवन–शैली को बदलना है।

(b) नवाचार हेतु शिक्षा की जरुरतः–

विकासशील से विकसित भारत की ओर जाने में हमें कई नवाचारों पर काम करने की जरुरत होगी। चाहे यह तकनीकी नवाचार हो, सामाजिक नवाचार, उत्पाद नवाचार, प्रक्रिया नवाचार हो, सेवा क्षेत्रों में नवाचार हो या फिर शैक्षिक नवाचार हो, यह आज की अनिवार्यता है। सामाजिक–आर्थिक विकास की नई जमीन तैयार कर रही भारतीय अर्थ व्यवस्था को सक्षम व कुशल पेशेवरों की आवश्यकता है, जो कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अपने बेहतरीन प्रदर्शन के लिए जरुरी शर्त है।

मूल प्रश्न यही आता है कि, क्या बिना उत्कृष्ट शिक्षा के ये हासिल कर पाना संभव होगा? क्या बिना तकनीक, बिना विज्ञान, बिना नवाचार यह हासिल हो सकेगा? उत्तर होगा–नहीं। तो आम सहमति इसी बात पर बनती दिखेगी कि भारत में नव–प्रवर्तन/ नवाचार, शोध का वातावरण विकसित करना न केवल शैक्षिक उन्नयन के लिए आवश्यक है, बल्कि नव भारत के निर्माण के लिए भी यह एक जरुरी शर्त है। तो ऐसे में नवाचार को बढ़ावा देने में शिक्षा/शिक्षण संस्थानों/शिक्षकों/शिक्षा तंत्र की निम्न भूमिका हो सकती हैः–

शिक्षकों की भूमिका को सशक्त बनाने हेतु अध्यापक शिक्षा संस्थानों को तैयार करनाः–

यह इसलिए जरुरी होगा कि राज्य के लाखों शिक्षकों में उनके जिम्मेवारियों का एहसास कराया जा सके। हरेक शिक्षक में नवाचार की संभावनायें मौजूद होती है, लेकिन औसत शिक्षक यह मानकर चलते हैं कि उनका काम पाठ्यक्रम पढ़ा देना और बच्चों को परीक्षा के लिए तैयार करना भर है, जबकि उसका असल काम बच्चे में उत्सुकता का विकास करना है।

सीखने के लिए उत्साहित कर नवाचार को बढ़ावाः–

शिक्षकों को नवाचार प्रोन्नत करने के लिए बच्चों में सीखने की भावना को सर्वाधिक उत्साहित करने की जरुरत है न कि उनके प्रति नकारात्मक, निराशावादी सोचने की। ऐसा करने हेतु शिक्षक को ऐसे माहौल का निर्माण करना पड़ेगा, जिसमें बच्चे प्रश्नों को पूछ सके एवं शिक्षक उन्हें प्रश्न पूछने हेतु उत्साहित करे।

गलतियों से सीखने के अवसर देनाः–

बच्चे सीखने के दौरान गलतियाँ करते हैं, यानि वे प्रक्रिया में शामिल हैं। सीखने की इस प्रक्रिया में बच्चों को शिक्षक द्वारा समय दिये जाने की जरुरत है, ताकि वैसे बच्चे अनुभव लेकर सीख सके।

पठन–पाठन प्रक्रिया में प्रायोगिक कार्यों /खोजी कार्यों को बढ़ावा देकर नवाचार में सहायताः–

अधिकतर कक्षाओं में पठन–पाठन की प्रक्रिया जानकारी के हस्तांतरण तक सीमित रहती है। हमें अध्ययन–अध्यापन को प्रयोग, अनुसंधान, अवलोकन तक ले जाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने से नवाचार को बढ़ावा मिलेगा।

प्रौद्योगिकी/ विज्ञान को बढ़ावा दिया जानाः–

प्राथमिक व प्रारंभिक स्तर से ही हमें दैनिक जीवन में नई प्रौद्योगिकी, नये ज्ञान–विज्ञान से यथा उम्र/ योग्यता, इन्हें परिचित कराया जाना चाहिए। बच्चों को कम्प्यूटर, लैप–टॉप, स्मार्ट फोन के दैनिक जीवन में अनुप्रयोगों को बताया जाना चाहिए। स्कूल के स्मार्ट बोर्ड पर उन्हें फिल्म, स्लाईड आदि दिखाते हुए इनके उपयोगों से अवगत कराया जाना चाहिए।

पाठ्य–पुस्तकों की डिजिटल प्रति का उपयोग, कार्टून फिल्म दिखाना, ऑनलाईन कक्षा से जुड़ना, ऑनलाईन शॉपिंग की प्रक्रिया बताना, टिकट कटाने में तकनीक का उपयोग, वीडियो बनाना, फोटो लेना, मैसेज/ वाट्सअप मैसेज करने की प्रक्रिया जैसे सामान्य व्यवहार सिखाना चाहिए। साथ ही शिक्षकों को भी कौशल विकास कराया जाना चाहिए। खासकर उनके एन्ड्रॉयड फोन से बहुत तरह के ऐप पर उन्हें काम करने, प्रश्न बनाने, मूल्यांकन करने, क्विज कराने, जैसे काम को बढ़ावा देकर नवाचार को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

– शिक्षक–शिक्षा संस्थानों (TEI) में शिक्षकों के साथ शिक्षक के कठिन अधिगम बिन्दुओं, विद्यार्थियों के मूल्यांकन के तरीकों, (e-content) विषय–वस्तु के विकास, अधिगम प्रतिफल अनुरुप प्रश्नों का निर्माण, नवाचारी शिक्षण–अधिगम सामग्री का निर्माण, क्रियाशील शोध को बढ़ावा देने जैसे कार्यों को शैक्षिक नवाचार के अन्तर्गत कराने की आवश्यकता होगी।

– स्कूलों में सामाजिक उत्पादक कार्यों/ स्थानीय कृषि संबंधी ज्ञान को बढ़ावा देते हुए काम कराकर, समुदाय के सम्पर्क में किये जाने वाले कुछ प्रोजेक्ट कार्यों को बढ़ावा देकर, समाज में जागरुकता अभियान चलाकर, कुछ प्रदर्शनी लगाकर, नाटक, गीत–नृत्य, वाद–विवाद, पेटिंग/ चित्रकारी को कराकर, खेलों को बढ़ावा देकर भी शैक्षिक नवाचार को बढ़ावा मिल सकता है।

इस प्रकार शिक्षा में नवाचार द्वारा छात्रों एवं शिक्षकों में सामुदायिक सहभागिता, शिक्षकों में अभिनव शिक्षण, तकनीकी क्षमता का सम्वर्द्धन, छात्रों में रोचक एवं अनुभव आधारित व्यावहारिक शिक्षा पा सकेंगे जिससे कि उनमें गुणात्मक उन्नयन हो सकेगा। इससे शिक्षा को नई दिशा मिल सकेगी और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं शिक्षक–शिक्षा में नवाचार की महत्ता स्वीकार की जा सकेगी।

_____:o:_____

–ः प्रश्न संग्रह ः–

–ः लघु उत्तरीय प्रश्न ः–

1. विद्यालय समुदाय सहभागिता क्यों आवश्यक है ?
2. समय के साथ विद्यालय–समुदाय के रिश्ते में आए बदलाव को बतायें।
3. समुदाय के सहयोग से हम राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में क्या मदद ले सकते हैं?

4. शासनतन्त्र एवं सुसभ्य नागरिक बनाने हेतु शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय की क्या भूमिका हो सकती है ?
5. निजीकरण' के शिक्षा पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का वर्णन करें।
6. 'त्रिभाषा सूत्र' को लेकर नई शिक्षा नीति 2020 में क्या सिफारिशें की गई है?

–: दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –:

1- शिक्षायी संस्थाओं को आप सामाजिक परिवर्तन एवं पुनर्निमाण के अभिकरण के रूप में किस प्रकार से मानते हैं?

2- भारत में आर्थिक सुधार नीतियों का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा है? बतायें।

3- आर्थिक सुधार नीतियों के तहत् 'वैश्वीकरण' के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करें।

4- 'उदारीकरण' का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करें।

5- शिक्षा क्षेत्र में 'निजीकरण' के प्रभावों की समीक्षा करें।

6- शिक्षा के 'माध्यम' भाषा की समस्या का समाधान आप कैसे करना चाहेंगे ?

7- शिक्षा क्षेत्र में नवाचार की जरूरतों पर प्रकाश डालें।

ICT आधारित गतिविधि –:

1- पिछले 5 वर्षों में प्रारंभिक विद्यालयों में हुए नामांकन से संबंधित के आँकड़ों को ढूढ़ें। (बिहार एवं भारत के सन्दर्भ में)

2- बिहार में 2015 से 2020 के बीच विभिन्न स्तरों के अध्यापक–शिक्षा संस्थानों (D.El.Ed, B.Ed) का निजी एवं सरकारी तौर पर संख्याओं की जानकारी हासिल करें।

3- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की प्रति डाउनलोड कर उनके महत्त्वपूर्ण अनुशंसाओं को एक फाईल में Save करें।

इकाई–5

विद्यालय और शिक्षा नीतियाँ : शिक्षा की समकालीन समझ के संदर्भ में

वर्तमान में विद्यालयी शिक्षा का जो स्वरूप है उसके विकास में अतीत एवं समकालीन कई शिक्षा नीतियों की अहम भूमिका है। चाहे स्वतंत्रता से पहले बनी शैक्षिक नीतियां हो या आज की राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, इन सब का गहरा प्रभाव हमारे विद्यालयों पर पड़ना तय है। इसलिए ऐसी नीतियों की एक साझी समझ शिक्षकों में अवश्य होनी चाहिए। डी.एल.एड. के प्रशिक्षुओं के लिए खासकर, उन नीतियों को जानना–समझना जरूरी है, जिनका प्रभाव प्रारम्भिक विद्यालयों के विभिन्न घटकों पर पड़ता है। परन्तु, शिक्षा नीतियों को समझने की एक आम प्रवृति है कि उनके संस्तुतियों को जान भर लेना। लेकिन, इससे कोई खास समझ नहीं बन पाती है क्योंकि नीतियों के अंतर्गत दिए गए तथ्य वास्तविक संदर्भ से नहीं जुड़ पाते हैं। इसलिए, प्रस्तुत इकाई में प्रासंगिक शिक्षा नीतियों की समझ बनाने के लिए विद्यालय के विभिन्न आयामों को आधार के तौर पर लिया गया है। इससे विद्यालय जैसी संस्था को केन्द्र में रखकर देश की प्रमुख शिक्षा नीतियों तथा उनके विकासक्रम का सार्थक ज्ञान प्रशिक्षुओं को मिल सकेगा। इस इकाई की शुरूआत, भारत में शैक्षिक विकास के सामान्य समझ से की गई है जहां विशेष तौर पर देशज शिक्षा, फिर औपनिवेशिक शिक्षा को लेते हुए स्वतंत्रता बाद तक के शैक्षिक विकास की एक सामान्य समझ दी गई है। आगे के खण्डों में विद्यालय के नाम, भवन, शिक्षक, पाठ्यचर्या और मूल्यांकन व्यवस्था को केन्द्र में रखकर विभिन्न नीतियों का विश्लेषण एवं व्याख्या को प्रस्तुत किया गया है। ताकि विद्यालय और शिक्षा नीतियों को आपसी जुड़ाव को समझा जा सके। इसके लिए विभिन्न नीति दस्तावेजों से प्रासंगिक संदर्भों को भी दिया गया है। हालांकि इस इकाई की यह विशेष अपेक्षा है कि प्रशिक्षुगण उन संदर्भों से सम्बंधित मौलिक नीति दस्तावेजों की स्वयं से पड़ताल करें, उनके अध्यायों में से अपने काम लायक सामग्री को निकालें, उनका अध्ययन करें। क्योंकि अतीत से लेकर अब तक तमाम नीतियां आयी हैं जिनका सम्बंध विद्यालयी शिक्षा से है। इस इकाई में उन सब की चर्चा कर पाना कठिन है। इसलिए, प्रस्तुत इकाई को नीति अध्ययन का प्रस्थान बिन्दु मात्र माना जाना चाहिए।

उद्देश्य

- विद्यालयी शिक्षा के ऐतिहासिक विकास की सामान्य समझ विकसित करना।
- विद्यालयी शिक्षा को लेकर अतीत में हुए महत्वपूर्ण नीतिगत बदलावों की समझ बनाना।
- विद्यालयों के नाम, व्यवस्था तथा अधिसंरचना में आए निरन्तर बदलावों के आलोक में संबंधित नीतियों का विश्लेषण करना।
- शिक्षक के निर्माण में शिक्षा नीतियों की गहन भूमिका को समझना।
- विद्यालयी पाठ्यचर्या और मूल्यांकन प्रक्रिया के माध्यम से सम्बंधित नीतियों का विश्लेषण करना।
- उपरोक्त सभी के माध्यम से विद्यालय और शिक्षा नीतियों के समकालीन जुड़ाव को समझना।

1. विद्यालयी शिक्षा का विकास : ऐतिहासिक एवं समकालीन नीतिगत परिप्रेक्ष्य

यदि देखें तो 'विद्यालय' शब्द उस संस्था को दिया गया नाम है जिसे समाज में सीखने–सिखाने का एक महत्वपूर्ण औपचारिक केन्द्र माना जाता है। हम इसे स्कूल, पाठशाला, मकतब, आदि भी कहते हैं। हमारे जीवन को यह संस्था किसी न किसी रूप में जरूर प्रभावित करती है। लेकिन, शिक्षा के केन्द्र अथवा एक संस्था के रूप में विद्यालय अचानक ही अस्तित्व में नहीं आ गया

होगा, उसका अपने विकास का एक इतिहास है और इस इतिहास की कड़ी अतीत में गुरूकूल शिक्षा, देशज शिक्षा, औपनिवेशिक शिक्षा, स्वतंत्रता उपरान्त शिक्षा से होते हुए आज यहां तक पहुंची है।

हमारे देश में प्राचीन काल से हीं गुरूकुल शिक्षा प्रणाली की एक गौरवशाली परम्परा रही है। इस परम्परा के कई तत्व हमारे विद्यालयी व्यवस्था में आज भी अंतर्निहित हैं। यह परम्परा कई सदियों तक विकसित होती रही, जिसकी छाप देशज शिक्षा पर भी पड़ी। देशज शिक्षा व्यवस्था मूलतः औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के आने से तुरन्त पहले की व्यवस्था रही है। इसकी अठारहवीं एवं उन्नीसवी शताब्दी की स्थिति का विश्लेषण कुछ साहित्यों में किया गया है। उनसे यह ज्ञात होता है कि देशज शिक्षा व्यवस्था में विद्यालयों को बाहर से नियंत्रण करनेवाली कोई केन्द्रीय संस्था नहीं थी। मूलतः ग्रामीण समुदाय के द्वारा ही विद्यालयों को संचालित किया जाता था। देशज शिक्षा के अंतर्गत मूलतः चार प्रकार के विद्यालय यथा–पाठशाला, टोल, मकतब और मदरसे की व्यवस्था थी। प्रारंभिक शिक्षा के छोटे विद्यालय यथा पाठशाला और मकतब व्यापारी तथा खेतिहर वर्ग के लिए थे, वहीं टोल और मदरसे, उच्चतर शिक्षा के केन्द्र, धार्मिक तथा पढ़े–लिखे वर्गों के लिए थे (एडम, 1868; आचार्य, 2000)।

उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में फ्रांसिस बुकानन हैविलटन का अवलोकन है कि ''हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रारंभिक शिक्षा छोटे स्कूलों में देते हैं जिन्हें पाठशाला कहा जाता है; इनमें पढ़ानेवाले को गुरू कहा जाता है जो किसी भी जाति या धर्म के हो सकते हैं... समाज के इन उपयोगी सदस्यों के लिए जीवनयापन की कोई सार्वजनिक व्यवस्था नहीं है और वे अपनी जीविका के लिए पूरी तरह अपने छात्रों पर निर्भर होते हैं'' (आचार्य, 2000)। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समय ग्रामीण अध्यापकों का गाँव के समुदाय के साथ एक गहरा सम्बंध स्वाभाविक था क्योंकि दोनों की आवश्यकताएँ एक–दूसरे पर प्रत्यक्ष तौर पर टिकी हुई थीं। परमेश आचार्य के अनुसार, ग्रामीण अध्यापकों ने निम्नतम जातियों के लोगों को पाठशालाओं में लाने में बड़ी भूमिका अदा की। चूंकि अध्यापकों की आजीविका छात्रों द्वारा दी जानेवाली फीस पर ही निर्भर थी, इसलिए यह स्वाभाविक भी था कि वे छात्रों की संख्या को बढ़ाना चाहते थे। हालांकि, उनके विश्लेषण से यह भी निकल कर आता है कि उस समय शिक्षा और अध्यापक के व्यवसाय पर उच्च जातियों का ही आधिपत्य था। इस प्रकार, देशज शिक्षा के काल में गाँव के विद्यालयों की स्थिति दिखाई देती है।

देशज शिक्षा के बाद यदि औपिनिवेशिक शिक्षा की बात करें तो आधुनिक शैक्षिक व्यवस्था का जो वर्तमान स्वरूप है, उसके विकास की शुरूआत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान उन्नीसवीं शताब्दी में हुई, जिसने पहले से चले आ रहे देशज व्यवस्था को बुनियादी तौर पर प्रभावित किया। जब शिक्षा की औपनिवेशिक व्यवस्था शुरू हुई तो इसने शिक्षा की संरचना को केन्द्रिकृत करने पर जोर दिया। ब्रिटिश राज की नीति ने स्कूलों के लिए एक नियंत्रण प्रणाली विकसित की जिसके आधार पर वे गाँव–गाँव तक फैले स्कूलों पर नियंत्रण रख सके। इस नियंत्रण प्रणाली में शिक्षा की दिशा केन्द्र से परिधि की ओर थी। केन्द्र में शहर व राजधानियां थी और परिधि पर थे–गाँव। औपनिवेशिक व्यवस्था के आने से शिक्षा के नियंत्रण की कमान गाँव के बाहर चली गई। इससे गाँव के शैक्षिक व्यवस्था में कई नए बदलावों की शुरूआत हुई। इस बदलाव का प्रभाव गाँवों और उनके स्कूलों पर भी पड़ा। यदि गौर करें तो देशज शिक्षा में मूलतः एक अध्यापक वाले स्कूल ही विद्यमान थे (आचार्य, 2004), जबकि औपनिवेशिक व्यवस्था में बहुअध्यापकीय स्कूलों की पहल शुरू हुई। इससे उन स्कूलों की कार्य संस्कृति भी प्रभावित हुई। उदाहरण के तौर पर, 1881–82 में 50,000 निम्न प्राइमरी स्कूलों को विभागीय स्कूलों का दर्जा दिया गया था। वे मूल रूप से वही स्थानीय ग्रामीण स्कूल थे, जिन्हें सहायता और जाँच के जरिए शिक्षा विभाग द्वारा विभागीय प्रणाली में शामिल कर दिया गया था। इसके फलस्वरूप ग्रामीण विद्यालय औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के अधीन हो गये। औपनिवेशिक काल में प्राथमिक स्तर से ऊपर के स्कूल– माध्यमिक व उच्चतर, मूलतः शहरों या कस्बों में ही उपलब्ध थे। गाँवों में अधिकतर प्राथमिक स्कूलों की स्थापना पर ही जोर दिया गया।

ब्रिटिश शासन में बींसवी शताब्दी की शुरूआत में विद्यालयी शिक्षा को लेकर कुछ नीतियाँ बनी। लार्ड कर्जन ने शैक्षिक सुधार की व्यापक मुहिम चलाई। 11 मार्च, 1904 के शैक्षिक नीति संकल्प में यह विशेष निर्देश निकाला गया कि गाँव के प्राथमिक स्कूलों का पाठ्यक्रम गैर–ग्रामीण पाठ्यक्रम से भिन्न होगा। बम्बई प्रांत ने इस दिशा में अपना पाठ्यक्रम बनाने का सिलसिला

पहले ही शुरू कर चुका था और मध्य प्रान्त ने भी गाँवों में अर्धकालिक स्कूलों की स्थापना करना शुरू कर दिया था। लेकिन ग्रामीण पाठ्यचर्या को संदर्भ आधारित बनाने का कार्य इतना सरल न था। इस क्रम में अब ग्रामीण पाठ्यक्रम के प्रति ग्रामीण अध्यापकों की समझ को भी परखने की बात कही गयी। भारत में शैक्षिक विकास की पंचवर्षीय समीक्षा 1902–07 के अनुसार, वैसे हर प्रांत जिनको पाठ्यक्रम बनाने की स्वतंत्रता दी गई थी, उनके अध्यापकों से यह पूछा जाना चाहिए कि वे ग्रामीण और गैर–ग्रामीण स्कूलों में किन आधार बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए फर्क को समझते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कर्जन के काल में दो–तीन वर्षों के लिए ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में कुछ मजबूत पहल हुई। लेकिन 1913 में सरकार ने शैक्षिक नीति के संकल्प में विरोधी सिद्धांतों को अपना लिया। इसके अनुसार, ''वर्तमान में भारत के अधिकतर क्षेत्रों में यह व्यवहारिक नहीं है कि ग्रामीण और गैर–ग्रामीण प्राथमिक स्कूलों की पाठ्यचर्या में कोई बड़ा अंतर किया जा सके। अब तात्कालीन ग्रामीण समाज की रूचि भी शहरी स्कूलों के समान शिक्षा में थी। साथ ही, अंग्रेजी पढ़ने की तरफ आकर्षण भी बढ़ रहा था। वैसे बच्चे जो ग्रामीण कोर्स को पढ़े हुए थे, स्वयं को माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी पढ़ने में असमर्थ पाते थे। इसके कारण ग्रामीण समुदाय में ग्रामीण कोर्स के प्रति दूरी बढ़ती गई (भारत में शिक्षा का विकास, 1912–17)।

उपरोक्त चर्चाओं के संदर्भ में विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि देशज शिक्षा से औपनिवेशिक शिक्षा की व्यवस्था तक आते–आते विद्यालयों की स्थिति में कई बुनियादी परिवर्तन हुए जिसके अंतर्गत उन पर नियंत्रण, शिक्षण वृत्ति की शर्तें, पाठ्यचर्या का स्वरूप, आदि तमाम घटकों में बदलाव शामिल है। इन बदलावों का प्रभाव औपनिवेशिक काल के बाद की शिक्षा पर पड़ा। स्वतंत्रता पूर्व की नीति, कोठारी आयोग तथा तमान शिक्षा नीतियों के साथ विद्यालयी शिक्षा में निरंतर बदलाव होते रहें। जहां पहले अलग अलग प्रांतों में विद्यालयों में कई प्रकार के कक्षायी स्तर थें वहीं कोठारी आयोग की अनुशंसा पर उसे मानकीकृत करके 10+2 की प्रणाली में लाया गया। यह प्रणाली पिछली सदी के अस्सी के दशक से अब तक चली आ रही है। अभी हाल ही में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के माध्यम से जिसे '5+3+3+4' प्रणाली में पुनर्संरचित करने की संस्तुति की गई है। इस तरह हम देखते हैं कि पिछले लगभग ढ़ाई सौ सालों में विद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था में कई बुनियादी बदलाव हुए हैं जिसमें तात्कालीन संदर्भ एवं नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

2. विद्यालयों के नाम, व्यवस्था तथा भवन संरचनाओं के नीतिगत संदर्भ :

यदि हम अपने शैक्षिक इतिहास को देखें तो पाएंगे कि समय–समय पर कई ऐसी शिक्षा नीतियों को बनाया गया जिनके कारण विद्यालय के नाम में बुनियादी बदलाव हुए। उन नीतियों का विश्लेषण करें तो निम्नलिखित तीन तरह के प्रावधानों को चिन्हित किया जा सकता है जिसके कारण कई तरह के नाम वाले विद्यालयों की स्थापना हुई या फिर पुराने विद्यालयों के नाम में कुछ परिवर्तन हुआ :

- विद्यालय के स्वामित्व से संबंधित नीतियों के प्रावधान
- विद्यालय के प्रकार से संबंधित नीतियों के प्रावधान
- विद्यालय के स्वरूप से संबंधित नीतियों के प्रावधान

उदाहरण

राजकीय कन्या मध्य विद्यालय

स्वामित्व ← राजकीय; कन्या मध्य → प्रकार एवं स्वरूप

विद्यालय के नाम को विश्लेषित करने का एक महत्वपूर्ण आधार यह हो सकता है कि विद्यालय का स्वामित्व किसके पास है। इसी के आधार पर हम अक्सर किसी विद्यालय के नाम के साथ–साथ 'सरकारी' अथवा 'निजी' विद्यालय वाली पहचान को भी जोड़कर देखते हैं। यदि निजी विद्यालयों की चर्चा करें तो उनके नाम में कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो कहीं और से लिए गए है। उदाहरण के तौर पर, आज भारत में निजी विद्यालयों के नाम में 'पब्लिक' शब्द को

स्थान दिए जाने का चलन आम है। इसे ब्रिटेन के विद्यालयों से लिया गया है जहां पर सरकारी विद्यालयों के नाम में 'पब्लिक' शब्द जुड़ा हुआ करता है। पर, यहां पर इस शब्द को निजी विद्यालयों ने अपना लिया। इसके साथ–साथ, हाल के वर्षों में कई निजी विद्यालयों के नाम में 'वर्ल्ड स्कूल', 'इन्टर–नेशनल स्कूल' तथा 'ग्लोबल स्कूल' जैसे शब्दों का प्रयोग भी देखा गया है। इस प्रकार की कई विविधताएं निजी विद्यालयों के नामों में देखी जा सकती हैं। जरा सोंचिए कि ऐसे विशेषण शब्दों को अपने नाम में जोड़कर वे क्या प्रदर्शित करना चाहते हैं। आगे समान स्कूल प्रणाली आयोग 2007 के अनुसार बिहार में विद्यालयों के प्रकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

वित्तिय स्रोत एवं प्रबंधन के आधार पर बिहार में तीन प्रकार के विद्यालय हैं

(क) सरकारी विद्यालय के रूप में विदित सरकार द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित सरकारी विद्यालय

(ख) सामान्यतः सहायता प्राप्त विद्यालय के रूप में विदित सरकार द्वारा अंशतः वित्तपोषित निजी विद्यालय

(ग) सामान्यतः सहायतारहित विद्यालय के रूप में विदित सरकार से कोई वित्तीय मदद न लेनेवाले विद्यालय

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007, बिहार सरकार, पृष्ठ संख्या 61–62)

बिहार में कई विद्यालयों के नाम में 'राजकीयकृत' शब्द जुड़ा होता है। इसके पीछे भी नीतिगत इतिहास है। बिहार सरकार ने 1976 में प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों का औपचारिक अधिग्रहण कर लिया। यह अधिग्रहण 1 जनवरी 1971 से ही प्रभावी माना गया। परिणामस्वरूप बिहार मे सभी प्राथमिक और मध्य विद्यालयों का नियंत्रण और प्रबंधन सरकार के शिक्षा विभाग को प्राप्त हो गया और इससे समाज की सीधी भागीदारी समाप्त हो गई। इस निर्णय ने जहाँ राज्य के प्राथमिक और मध्य विद्यालय को राजकीयकृत बना दिया।

विद्यालय पर स्वामित्व के कारण उसके नाम पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा के बाद अब हम विद्यालय के विभिन्न प्रकारों एवं स्वरूपों का विश्लेषण करेंगे जिनका प्रभाव भी विद्यालय के नाम पर पड़ता है। प्रकार और स्वरूप के कारण भी हम सरकारी विद्यालयों के नामों में बहुत सारी विविधताओं को देख सकते हैं। यह देखा गया है कि ये विविधताएं केवल विद्यालयों के नाम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विद्यालय के नाम की विविधता उसके उद्देश्य, दर्शन और यहां तक की वहां शिक्षा की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती हैं। सरकारी विद्यालयों के विविध प्रकारों व स्वरूपों की विविधता उसके नाम पर कितना प्रभाव डालती है, यह जानने से पहले सरकारी विद्यालयों के कुछ नामों की निम्नलिखित सूची से अवगत होते हैं।

राजकीय कन्या मध्य विद्यालय	केन्द्रीय विद्यालय
बुनियादी विद्यालय	नवोदय विद्यालय
संस्कृत विद्यालय	सर्वोदय विद्यालय
प्रोजेक्ट कन्या विद्यालय	राजकीय मदरसा
राजकीय विद्यालय	राजकीय उत्क्रमित उच्च विद्यालय
राजकीयकृत विद्यालय	अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आवसीय कल्याण विद्यालय
राजकीय मध्य विद्यालय	सैनिक विद्यालय
नेतरहाट आवासीय विद्यालय	बहुद्देशीय राजकीय उच्च विद्यालय / जिला स्कूल
सिमुलतला आवसीय विद्यालय	अल्पसंख्यक विद्यालय

दिए गए सरकारी विद्यालयों के नामों में जहाँ बहुत से अन्य नामों के जोड़े जाने का मार्ग खुला छोड़ा गया है। लेकिन अगर आपके सरकारी विद्यालयों के नामों के बारे में और सूचना देकर आपके आश्चर्य को और बढ़ा दिया जाए तो कैसा रहेगा? आपने निजी विद्यालयों के नामों में तो किसी व्यक्ति विशेष के नाम का समावेश देखा ही होगा मगर क्या आपने कभी सरकारी

विद्यालयों के नामों में किसी व्यक्ति के नाम के प्रयोग पर ध्यान दिया है ? आइए हम आपको ऐसे कुछ नामों से अवगत करायें–

ऐसे नाम भी हैं सरकारी विद्यालयों के
● कस्तुरबा गाँधी कन्या विद्यालय ● राजा राम मोहन राय सेमिनरी स्कूल ● देवी पद चौधरी उच्च विद्यालय ● हादी हाशमी मध्य विद्यालय ● टी के घोष एकेडेमी ● कासमी मध्य विद्यालय

इन नामों का इतिहास विद्यालय के इतिहास और उसके साथ जुड़े व्यक्ति के इतिहास को जोड़ देता है । लेकिन इन इतिहासों के मिलन बिन्दु को पहचानना और उसके आधारों को समझने की चुनौती आपको एक प्रशिक्षु होने के साथ एक खोजकर्ता होने का भी अनुभव देगी। इस चुनौती का अगला चरण होगा उन सरकारी नियमों एवं नीतियों की पहचान करना जो ऐसे नामों के अस्तित्व में आने का कारण ही हैं अथवा उनका योगदान ऐसे नामों को किसी समय में परिवर्तित कर देने में रहा।

अब तक आपने मुख्य रूप से तरह–तरह के विद्यालयों के नाम तथा उनसे संबंधित कुछ ऐतिहासिक जानकारियों से स्वयं को अवगत कराया। पर अभी यह समझना बाकि है कि इन विद्यालयों के बनने तथा उनके नामों को निर्धारित करने के पीछे शिक्षा नीतियों की क्या भूमिका रही। उदाहरण के लिए 'नवोदय विद्यालय' की स्थापना का श्रेय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने ऐसे विशेष प्रतिभा या अभिरूचि वाले बालक–बालिकाओं को, जो आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों से आते हैं, ध्यान में रखकर देश के विभिन्न भागों में गति–निर्धारक (पेस सेटिंग) विद्यालयों के स्थापना की अनुशंसा की। आइए, इस अनुशंसा के कुछ मौलिक अंशों को पढ़े।

गति–निर्धारक स्कूल

यह सर्वमान्य धारणा है कि विशेष प्रतिभा या योग्यता वाले बच्चों को तेज गति से आगे बढ़ाने के अवसर दिये जाने चाहिए। इसके लिये उन्हें उच्च स्तर की शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए। वे उसकी कीमत दे सकें अथवा नहीं।

इस उद्देश्य को पूरा करने वाले गति–निर्धारक स्कूल एक निश्चित नमूने के अनुसर देश के विभिन्न भागों में खाले जायेंगे और इनमें नवाचार और प्रयोगों की पूरी गुंजाइश होगी। उनका मुख्य उद्देश्य उत्कृष्टता का लक्ष्य पूरा करना, समानता और सामाजिक न्याय (अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण सहित) लाना, देश के विभिन्न भागों, मुख्यतः ग्रामीण भागों के प्रतिभाशाली बच्चों को एक साथ रहने और सीखने का अवसर देकर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना, उनकी पूरी क्षमता को विकसित करना और सबसे महत्वपूर्ण–स्कूल सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम में उत्प्रेरक होना है। ये स्कूल आवासी और निःशुल्क होंगे।

कार्य योजना में नवोदय विद्यालयों की योजना का ब्योरा इस प्रकार दिया गया है :

योग्य बच्चों के लिए कार्यक्रम के दो भाग हैंः–

यह विशेष रूप से उन प्रतिभाशाली बच्चों के लिए है जो मौजूदा प्रणाली के अन्दर नहीं आते।

इन प्रतिभाशाली बच्चों की आवश्यकता पूरी करने के लिए नवोदय विद्यालय योजना के अन्तर्गत सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक जिले में ऐसा एक स्कूल खोला जाएगा। बच्चों के माता–पिता की आर्थिक स्थिति और सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का विचार किए बिना, यह स्कूल उच्च स्तर

की शिक्षा प्रदान करेंगे। इन स्कूलों में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए 75% स्थान सुरक्षित होंगे। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए जिले में उनकी जनसंख्या के मुताबिक आरक्षण होगा लेकिन राष्ट्रीय आरक्षण के अनुसार यह क्रमशः 15% व 7.5% से कम नहीं होगा। लड़कियों की संख्या, स्कूल के कुल विद्यार्थियों की संख्या का 1/3 रखने की कोशिश की जाएगी। इन स्कूलों में आवास और भोजन सहित शिक्षा निःशुल्क होगी। यें स्कूल केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध होंगे।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990, पृष्ठ सं0 85)

नवोदय विद्यालय से मिलती जुलती एक नई योजना का आरम्भ अभी हाल में ही हुआ है जिन्हें 'मॉडल स्कूल' के नाम से जाना जाएगा। ऐसे विद्यालयों का नाम 'मॉडल स्कूल' होने के पीछे क्या नीतिगत कारण है, इसके लिए शिक्षा मंत्रालय की वेबसाइट से लिया गया निम्नलिखित अंश को पढ़े :

मॉडल स्कूल

प्रधानमंत्री द्वारा 2007 के स्वतंत्रता दिवस के अपने भाषण में की गई घोषणा के अनुपालन में मॉडल स्कूल योजना का प्रारंभ नवम्बर, 2008 में किया गया था। योजना का उद्देश्य एक स्कूल प्रति ब्लॉक की दर से ब्लॉक स्तर पर उत्कृष्टता के बैंचमार्क के रूप में 6000 मॉडल स्कूलों की स्थापना के माध्यम से प्रतिभावान ग्रामीण बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध कराना है। इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य है :

- प्रत्येक ब्लॉक में अच्छे स्तर का कम–से–कम एक उच्च माध्यमिक स्कूल होना।
- प्रगति निर्धारण भूमिका।
- नवाचारी पाठ्यचर्या और शिक्षण का प्रयोग।
- अवसंरचना, पाठ्यचर्या, मूल्यांकन और स्कूल अभिशासन का आदर्श होना।

योजना के कार्यान्वयन के दो रूप हैं– अर्थात (1) राज्य/संघ राज्य सरकारों के माध्यम से शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉकों (ईबीबी) में 3,500 स्कूलों की स्थापना की जानी है तथा (2) शेष 2,500 स्कूल उन ब्लॉकों, जो शैक्षिक रूप से पिछड़े नहीं हैं, में सार्वजनिक–निजी भागीदारी (पीपीपी) पद्धति के तहत स्थापित किए जाएंगे। राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों के माध्यम से ईबीबी में मॉडल स्कूलों की स्थापना के लिए राज्य क्षेत्र घटक 2009–10 से कार्यान्वित किया जा रहा है तथा उन ब्लॉकों, जो शैक्षिक रूप से पिछड़े नहीं हैं, में मॉडल स्कूलों की स्थापना के लिए पीपीपी घटक का कार्यान्वयन 2012–13 से शुरू किया गया है।

(स्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय का वेबसाइट, भारत सरकार)

जब हम नीतियों के प्रभाव की बात करते हैं तो उसमें विद्यालय के विभिन्न स्तरों की चर्चा करनी आवश्यक है। यदि विद्यालयों के स्तरीकरण के इतिहास में और पीछे जाएं तो हम पाएंगे कि इस प्रकार के कक्षावार स्तरीकरण की पहली झलक 1854 के वुड्स डिसपैच नीति में मिलती है। इससे पहले के देशज स्कूलों में ज्ञान का कक्षावार स्पष्ट वर्गीकरण नहीं मिलता है। आपने अपने आस–पास अलग–अलग स्तर वाले विद्यालयों को देखा होगा। एक प्रकार से विद्यालयों का स्तरीकरण शिक्षा की निरंतरता को भी प्रदर्शित करता है और दो स्तरों की शिक्षा के बीच में अंतर को भी। आइए विद्यालयों के कुछ स्तरों के उदाहरणों को देखें जो उनके नाम में भी शामिल होते हैं। इसमें आप अन्य उदाहरणों को भी जोड़ लें।

विद्यालय के विभिन्न स्तर		
स्तर		**कक्षा विवरण**
प्राथमिक स्तर	Primary Level	कक्षा–1 से 5
प्रारम्भिक स्तर	Elementary Level	कक्षा–1 से 8
उच्च प्राथमिक स्तर	Upper Primary Level	कक्षा–6 से 8

माध्यमिक स्तर	Secondary Level	कक्षा–9 से 10
उच्च माध्यमिक	Higher Secondary Level	कक्षा–11 से 12

उपरोक्त संदर्भ में 1968 की शिक्षा नीति के 10+2+3 मॉडल को समझना आवश्यक है। इसके अनुसार 10 वर्ष तक के प्राथमिक अवस्था की सामान्य शिक्षा, फिर दो साल की विशेष शिक्षा (व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी) और फिर तीनवर्षीय विश्वविद्यालयी शिक्षा की बात की गई है। इस नीति को आगे अपनाया गया। अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 द्वारा एक नई विद्यालयी संरचना को सुझाया गया है जिसमें नीचे दिए गए चित्र के अनुसार विद्यालयी शिक्षा को पंद्रह वर्षों का किया गया है।

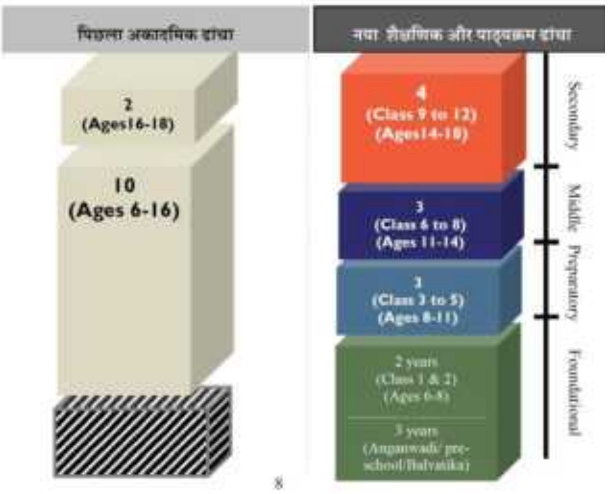

आजादी से लगभग एक दशक पहले जाते हैं तो बुनियादी विद्यालयों के नाम से स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयों का संदर्भ आता है। इन विद्यालयों के पीछे के इतिहास को समझना जरूरी है तभी हम यह समझ पाएंगे कि इसका नाम या स्वरूप उस समय के अन्य विद्यालयों से अलग क्यों था। ये विद्यालय यह भी इंगित करते है कि विद्यालयों का चरित्र सिर्फ शैक्षिक न होकर राजनैतिक भी होता है। इन विद्यालयों ने आजादी के आंदोलन में देश की शिक्षा के राष्ट्रीय चरित्र को स्थापित करने में विशेष भूमिका निभाई। इसकी शुरूआत अक्तूबर, 1937 में गांधी जी के सभापतित्व में वर्धा में शिक्षा–क्षेत्र के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें नई तालीम के मसौदे को तैयार किया गया। इसमें यह प्रस्तावित किया गया कि राष्ट्र भर में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए जिसकी अवधि सात वर्ष हो, यह शिक्षा मातृ–भाषा के माध्यम से दी जाए और इस पूरी अवधि की शिक्षा का केन्द्र एक ऐसा शिल्प हो जो उत्पादक एवं बच्चे के वातावरण के अनुकूल हो। सम्मेलन ने डॉ0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में शिक्षा–विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जिसे बुनियादी शिक्षा का एक पूरा पाठ्यक्रम बनाने का काम सौंपा गया। इस समिति की रिपोर्ट 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से मार्च, 1938 में प्रकाशित हुई। साथ ही अप्रैल, 1938 में 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' के नाम से एक बोर्ड की स्थापना हुई, जिसे बुनियादी विद्यालयों को खोलने तथा उनके लिए शिक्षाकर्मियों को तैयार करने का जिम्मा दिया गया। फिर, तात्कालीन बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बम्बई, आसाम, आदि प्रांतों में बुनियादी विद्यालयों को सामुदायिक सहयोग से प्रयोगात्मक रूप में खोला गया। इन विद्यालयों ने औपनिवेशिक मानसिकता की गुलामी से मुग्ध तात्कालीन समाज को यह आईना दिखाया कि हमारे देश की हमारी शिक्षा और उस शिक्षा के लिए हमारे विद्यालय भी हो सकते हैं। उस समय, बुनियादी विद्यालयों ने भारतीय जनता के समक्ष विद्यालयी शिक्षा के लिए एक नया विकल्प प्रस्तुत किया, जिसमें खुद का इज़ाद किया हुआ पढ़ने–लिखने का अपना एक अनुठा तरीका था। एक प्रकार से, इन विद्यालयों के द्वारा शिक्षा के राष्ट्रीय चरित्र को प्रस्तुत किया गया, जिसने देश के गांवों को केन्द्र में रखा और गाँव के हर कारीगर व्यक्ति के हुनर को विद्यालय से जोड़ने का प्रयास किया।

प्राचीन काल के विद्यालयों की बात करें तो मैसूर के खुदे हुए शिलालेख में प्राचीन काल में तीन प्रकार के विद्यालयों के होने का उल्लेख मिलता है– घटिका, अग्रहार तथा ब्रह्मपुरी। घटिका ज्ञान

एवं धर्म के केन्द्र थे। इनका आकार बहुत सीमित होता था। अग्रहार का स्वरूप काफी विस्तृत होता था। ये वस्तुतः ऐसे गाँव थे जहाँ विद्वान ब्रह्मणों का निवास होता था और सैकडों छात्र दूर दूर से वहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। ब्रह्मपुरी ऐसे शिक्षा केन्द्र थे जो आकार के आधार पर घटिका एवं अग्रहार से बड़े थे। शिक्षा के प्राचीन व्यवस्था में गुरूकुल व्यवस्था अति महत्वपूर्ण है। इस व्यवस्था से प्रभावित कई विद्यालय आज के संदर्भ में भी हैं। कई विद्यालय अपने नाम में 'गुरूकूल' शब्द को जोड़े हुए भी हैं।

साथ हीं, किसी भी विद्यालय के प्रति कोई धारणा बनाने में उस विद्यालय के भौतिक अवसंरचना की अहम भूमिका होती है। प्रत्यक्ष दिखनेवाला विद्यालय का भवन, कक्षाओं की स्थिति तथा अन्य ढ़ांचागत सुविधाओं के आधार पर हमें यह अनुमान लगाने में आसानी होती है कि उस विद्यालय में शिक्षा की क्या गुणवत्ता होगी। यदि आज के संदर्भ को देखें तो हमें अपने आस–पास विद्यालय भवन के कई स्वरूप नज़र आएंगे। कुछ भवनों में भरपूर व्यवस्था होगी तो कुछ भवनों में सुविधाओं की कमी। कुछ पक्के भवन होंगे तो कुछ कच्चे। कुछ नए भवन होंगे तो कुछ बहुत पुराने। कई विद्यालयों के भवनों की स्थिति, डिजाइन, बनाने में इस्तेमाल की गई सामग्री, आदि को देखकर हीं हम यह कह सकते हैं कि उन विद्यालयों का ऐतिहासिक विकास क्या रहा होगा। इस प्रकार, विद्यालय का भवन स्वयं में विद्यालय के विकास की कहानी समेटे रहता है। विद्यालय की भूमि का स्वामित्व, विद्यालय की इमारत का शिल्प विन्यास, कमरों की संख्या, पेयजल की व्यवस्था, शौचालय, खेल का मैदान, प्रार्थना स्थल, बगीचा, भण्डार गृह, चारदीवारी, रसोईघर, आदि ऐसे कई तथ्य है जिनपर गौर किया जाना चाहिए। निर्माण कब हुआ, उसे कब जोड़ा गया, ऐसे काल–संदर्भ भवन के विकास को शिक्षा–नीति के इतिहास से जोड़ने में मदद कर सकते हैं। विद्यालय भवन निर्माण में प्रयुक्त वित्तीय योगदान आदि को भी जाना जाना चाहिए। विद्यालय भवनों के बदलते हुए स्वरूप, उनमें उपलब्ध होने वाली भौतिक सुविधाएँ और उनके स्वामित्व में होने वाले परिवर्तन किन शिक्षा नीतियों और सामाजिक बदलाव से प्रभावित हुए हैं। यहां हम उन नीतियों और परिस्थितियों को समझने की कोशिश करेंगे।

इक्कीसवीं सदी की बात करें तो इसके पहले दशक में ही बच्चों की शिक्षा के संदर्भ कई नीतिगत दस्तावेजों को लाया गया जिसमें महत्वपूर्ण है– निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम–2009 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005। इन दोनों दस्तावेजों ने आज की अपेक्षाओं के अनुसार विद्यालय की अवसंरचना में परिवर्तनों की जरूरत पर जोर दिया। शिक्षा को हर बच्चे का अधिकार बन जाने के कारण अब सभी बच्चों के लिए संसाधनपूर्ण विद्यालय मुहैया कराना अनिवार्य हो गया। इसलिए, सरकार ने विद्यालयों की संख्या को बढ़ाने तथा कई विद्यालयों को उत्क्रमित करने पर जोर दिया। यदि बिहार की स्थिति का जायजा लें तो यहां पर विद्यालयों की अपेक्षित मांग को निम्नलिखित सारणी की मदद से समझा जा सकता है। यहां यह समझना आवश्यक है कि इस मांग के पीछे शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 की नीति की अहम भूमिका है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम नीति के कारण न सिर्फ विद्यालय भवनों के बनने में तेजी आई बल्कि इस नियम के कारण विद्यालय भवनों की किसी क्षेत्र में सघनता पर भी प्रभाव पड़ा। यह कई अध्ययनों जैसे –प्रोब रिपोर्ट में निकल कर आया कि विद्यालय से दूरी के कारण भी कई बच्चे विद्यालय नहीं जाते हैं। अतः, अधिनियम के मानकों में विद्यालय भवन की स्थिति का भी जिक्र किया। अधिनियम के कुछ अंशों को नीचे दिया जा रहा है जिन्होंने विद्यालय के संदर्भ में विशेष प्रावधान किए।

जहाँ शिक्षा अधिकार अधिनियम–2009 और समान विद्यालय प्रणाली आयोग–2007 ने विद्यालय भवन से संबंधित भौतिक सुविधाओं के संवर्द्धन पर जोर दिया वहीं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005(एन.सी.एफ. 2005) तथा बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 ने विद्यालय भवन के शैक्षिक उपयोगिता को रेखांकित करते हुए इसमें परिवर्तन पर जोर दिया। एन.सी.एफ 2005 ने विद्यालय भवन को लेकर कई महत्वपूर्ण और आवश्यक दिशा निर्देश तय किए। यदि बिहार की बात करें तो नई सदी में सरकार स्कूल भवनों के निर्माण को लेकर ज्यादा सक्रिय दिखी। ''मुख्यमंत्री विद्यालय समग्र विकास योजना'' के तहत विद्यालयों के लिए चहारदिवारी के लिए राशि का बजटीय प्रावधान किया गया। विद्यालयों को बाल सुलभ बनाने हेतु स्थायी निर्माण यथा झूला, फिसलनपट्टी, शी–शा, त्रिभुजीय, षट्कोणीय चबूतरे का निर्माण करवाया गया। ''विद्यालय जीर्णोद्धार विकास राशि'' द्वारा विद्यालय में समुदाय की भूमिका को पुरर्स्थापित करने की कोशिश की गई, जिसमें समुदाय द्वारा 10 प्रतिशत राशि दी जाने पर 90 प्रतिशत राशि की सहायता

सरकार देती थी। वर्त्तमान में यह राशि सरकार की ओर से 50 प्रतिशत है।

यदि पिछली सदी के अंतिम दशक की बात करें तो विद्यालय भवन को लेकर प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में डी.पी.ई.पी योजना का विशेष हस्तक्षेप रहा। डी.पी.ई.पी ने शिक्षाशास्त्रीय तकनीक में बदलाव के तहत कक्षा कक्ष का भौतिक खाका बदला। विद्यालय भवनों के निर्माण की शैली 1997 से बदल गई जो 2005 तक अपनाई जाती रही। दो कमरों और बरामदे का शिल्प षट्कोणीय (Hexagonal) हो गया। इन कमरों में वृत्ताकार बैठने की ऐसी व्यवस्था थी कि सब को सामने खड़े शिक्षक बराबरी से दिखाई पड़े। साथ ही कक्षा की दीवारों पर आकर्षक चित्रों, अंकों, स्वर– व्यंजनों आदि से उकेरा गया। कक्षा के निचले हिस्से पर लेखनपट बनाए गए ताकि छात्रों की पहुंच हो सके। इन कमरों के फर्श पर रेखागणित की आकृतियाँ फर्श पर बनी होती। बच्चों को रंग–रंगीला, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे वाले शांत कक्षा चाहिए जहाँ वह मन के मुताबिक गतिविधि कर सके। कम जगह घेरना एवं कम लागत के लिए खोखली दीवारें 'रैट ट्रैप बॉन्ड' तकनीक से बनने लगीं, छते गुम्बदनुमा होती थीं। हाँ उसके निर्माण की सम्पूर्ण जिम्मेवारी ग्रामीण शिक्षा समिति को दी गई जो स्थानीय समुदाय था। षट्कोणीय भवन में कम लम्बाई–चौड़ाई के बावजूद ज्यादा क्षेत्रफल उभरता था। ऐसे भवनों में गर्मी के दिनों में ताप कम और जाड़े में तापमान थोड़ा ज्यादा महसूस होता था। लेकिन, ऐसे विद्यालयों की सबसे बड़ी समस्या यह रही कि उनमें कमरों के कमी की समस्या बनी रही। एक ही कमरे में अपेक्षा से कई गुणा अधिक बच्चों को बैठाया जाता था जिसके कारण षट्कोणीय कमरें में बच्चों के बैठने की आदर्श स्थिति मुश्किल से हीं कही बन पाती थी। इसी दौरान किसी–किसी विद्यालय भवन के साथ एक कमरे का एक नया भवन भी दिखाई पड़ने लगा था जिसे संकूल कहा गया। 10–15 स्कूल के एक समूह की शैक्षिक गतिविधियों के आपसी विमर्श के लिए यह भवन अस्तित्व में आ गया था। नई शिक्षा नीति ने ऐसे संकूलों की स्थापना पर जोर भी दिया था। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रयास में बालिका शिक्षा की हिस्सेदारी बढ़ी फलतः स्कूलों में शौचालयों की माँग बढ़ती चली गई। विद्यालय स्वच्छता एवं स्वास्थ शिक्षा योजना के तहत स्कूलों में शौचालय, मूत्रालय एवं पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चत की जाने लगी। कई गैरसरकारी संस्थाएं जैसे– यूनिसेफ ने भी इस कार्य में अपनी भागीदारी निभाई। उल्लेखनीय यह रहा कि बालिकाओं और बालकों के लिए अलग–अलग शौचालय एवं मूत्रालय की व्यवस्था होने लगी। विद्यालय भवनों के रख–रखाव के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि विद्यालय को प्राप्त होने लगी। इसके कारण विद्यालय भवन के स्वरूप में कई संशोधन हुए।

पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक में चलें तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 द्वारा भी विद्यालय भवन के संदर्भ में कुछ प्रावधानों को सुझाया गया। उसके कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है :

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अलग–अलग चरणों में एक आंदोलन आरंभ करने की सिफारिश की है जिसे ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड कहा गया है। केन्द्र द्वारा समर्थित इस योजना का उद्देश्य सरकार, स्थानीय संस्थाओं और पंचायत राज तथा मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे प्राथमिक स्कूलों में उपलब्ध सुविधाओं मे सुधार करना है। इसके एक दूसरे पर निर्भर निम्नलिखित तीन घटक हो

- एक इमारत की व्यवस्था, जिसमें दो बड़े कमरे हो, जो पूरे वर्ष काम आ सके, एक बरामदा और बालकों तथा बालिकाओं के लिये पृथक शौचालय हो ।
- प्रत्येक स्कूल में कम से कम दो शिक्षक हो और जहां तक संभव हो, उनमें एक महिला हो ।
- ब्लैक बोर्ड, नक्शे, चार्ट, खिलौने आदि कार्य–अनुभव के उपस्कर आदि आवश्यक शिक्षण–सामग्री की व्यवस्था हो।

(वार्षिक रिपोर्ट, 1989–90, भाग–1, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग)

एक शिक्षक वाले स्कूलों में दूसरे शिक्षक की नियुक्ति करने और शिक्षण सामग्री को खरीदने के लिये 100% केन्द्रीय सहायता दी जाती है किन्तु इमारत की व्यवस्था राज्य सरकारों को अपने स्रोतों से करनी होगी। इमारतों के निर्माण में होनेवाले व्यय के बारे में कार्य योजना में सिफारिश की है, इसके लिये राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (एन.आर.ई.पी.) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार

गारन्टी योजना (आर.एल.ई.जी.पी.) जिसे अब जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) कहते हैं, के लिये उपलब्ध निधि का इस्तेमाल किया जाय।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट, 1990)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के द्वारा सुझाए गए उपरोक्त प्रावधानों के आलोक में कच्चे भवनवाले विद्यालयों को दो कमरेवाले पक्के भवन के रूप में निर्मित किया जाने लगा। विद्यालय में शौचालयों की व्यवस्था पर भी ध्यान देना शुरू हुआ। लेकिन इसके प्रावधानों को गौर से पढ़ने पर परोक्ष रूप से यह भी स्पष्ट होता है कि इस नीति ने सामान्य विद्यालयों के आधारभूत आवश्यकता में पूरी कटौती की और पाँच कक्षाओं के शिक्षण के लिए सिर्फ दो कमरों की व्यवस्था की सिफारिश की। आगे चलकर उसने कमरों की संख्या तीन कर दिया गया। इसके उलट इसी नीति ने नवोदय विद्यालय के नाम से संसाधनयुक्त विद्यालयों को खोलने की भी सिफारिश की। इन दानों सिफारिशों के आधार पर आप नीतियों के चरित्र के विषय में कई विश्लेषण कर सकते हैं। साफ तौर पर आप यह कर सकते हैं कि नीतियां निरपेक्ष नहीं होती हैं बल्कि अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक संदर्भ से बहुत प्रभावित होती हैं।

यदि स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति को देखें तो 1882 में हंटर आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को विधिवत समुदाय/पंचायतों को सौंपने की बात कही तो विद्यालय भवनों के निर्माण की बात सोची जाने लगी जिसकी बागडोर पंचायतों के हाथों में दायित्वपूर्ण ढंग में आने लगा। इसके पीछे के काल में जाएं तो 1854 के वुड्स डिसपैच नीति के तहत पहली बार अनुदान (Grant-in-Aid) के तहत विद्यालय भवनों के लिए कुछ राशि निर्धारित किया गया। इसके साथ ही भवन निर्माण के कुछ मानक भी तय किए गए। यदि देशज शिक्षा के पाठशालाओं या मकतबों की चर्चा करें तो उनमें स्थायी और अस्थायी दोनो प्रकार के भवन होने की बात की जाती है। उसके विद्यालय का भवन समुदाय की ही सम्पत्ति थी। भवनों का कोई मानक होने का साक्ष्य नहीं मिलता है। समुदाय की प्राथमिक शाला में सिर्फ एक या दो कमरे और बरामदे मात्र ही हुआ करते थें जहाँ शौचालय, पेयजल की सुविधा, चहारदीवारी, रसोईघर, भंडारगृह का अस्तित्व दूर–दूर तक नहीं था। क्रीड़ा स्थल भूमि की उपलब्धता के अनुसार छात्र शिक्षक जरूर बना लेते थे लेकिन इस दिशा में कोई विधिवत नीति नहीं थी जो विद्यालय भवनों को भौतिक संसाधनों से युक्त करता। इन विद्यालयों का निर्माण, रख–रखाव समुदाय के जिम्मे ही था। इसप्रकार विद्यालय के नाम, भवन एवं व्यवस्था का एक ऐतिहासिक विकास हुआ।

गतिविधि

शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 में कुछ विद्यालयों के प्रकार का उल्लेख किया गया है, उनको सूचीबद्ध करें तथा उनके विषय में और जानकारी एकत्र करें।

3. शिक्षक और शिक्षा नीतियाँ :

विद्यालय में आये परिवर्तनों के साथ–साथ शिक्षक की वृत्ति व अपेक्षित भूमिका में भी कई महत्वपूर्ण बदलाव होते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर, शिक्षक की योग्यता, नियुक्ति, प्रशिक्षण व वृत्तिक विकास (सेवापूर्व व सेवाकालीन), पदोन्नति, स्थानांतरण, प्रधान–शिक्षक अथवा प्रधानाचार्य की व्यवस्था, विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात, इत्यादि से संबंधित समय–समय पर निर्धारित नियमों, प्रावधानों व अनुशंसाओं ने विद्यालय में शिक्षक की भूमिका को बड़ी गहराई से प्रभावित किया है। अतः इस संदर्भ में शिक्षक के जीवन से संबंधित नीतिगत पहलूओं को भी समझना चाहिए। आज जब शिक्षा की दशा को लेकर कोई बात होती है तो सबसे पहले शिक्षकों का ध्यान आता है जिसमें उनकी गुणवत्ता, शिक्षण पेशे के प्रति लगन, आदि मुद्दों पर सवाल खड़े किए जाते हैं और इन सबके उत्तर की अपेक्षा शिक्षक से ही की जाती है। शिक्षक किसी भी शिक्षायी व्यवस्था का एक मौलिक अंग है, जिसके माध्यम से शैक्षिक क्रियाकलापों का क्रियान्वयन होता है। पारम्परिक तौर पर, शिक्षक को समाज के भावी पीढ़ी का निर्माता भी कहा जाता रहा है, जो अपने शिक्षण के माध्यम से सामाजिक मुल्यों एवं उद्देश्य को आगे बढ़ाने का कार्य करता है। लेकिन शिक्षक के इस छवि में कई ऐतिहासिक परिवर्तन आए जिसमें विभिन्न शिक्षा नीतियों एवं बदलते समाज की अहम भूमिका रही। आज के परिदृश्य में शिक्षक के पारम्परिक स्वरूप एवं भूमिका में कई

परिवर्तन हुए हैं जिनके विकास क्रम को हम शिक्षा नीतियों से जोड़कर समझने की कोशिश करेंगे। समकालीन संदर्भ में आपने शिक्षक से संबंधित कई मुद्दों को सुना होगा। वे मुद्दे राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर या स्थानीय, कोई भी हो सकते हैं। उनमें से कुछ मुद्दों को नीचे सारणी में दिया जा रहा है।

शिक्षक से संबंधित समकालीन मुद्दे	
	शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता में संवर्द्धन पर जोर
	केवल प्रशिक्षित शिक्षकों की विद्यालय में नियुक्ति
	शिक्षक दक्षता
	शिक्षकों के वेतन, पदोन्नति आदि से सम्बंधित मुद्दे
	गुणवत्ताहीन शिक्षकों के कारण शिक्षण पर पड़ता प्रभाव
	बालकेन्द्रित शिक्षा के अनुरूप शिक्षकों की तैयारी का प्रश्न
	समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों की तैयारी
	विद्यालय में शिक्षकों के गैरहाजिरी का मुद्दा, आदि।

यदि अब से लेकर देश की आजादी तक की अवधि को देखें तो शिक्षकों के विषय में लगभग सभी नीतिगत शैक्षिक दस्तावेजों ने कुछ न कुछ जरूर कहा है। उनमें से कुछ प्रमुख राष्ट्रीय व राज्यस्तरीय दस्तावेजों की सूची आपके संदर्भ के लिए नीचे दी जा रही है।

शिक्षक के मुद्दों सें संबंधित प्रमुख नीतिगत दस्तावेज	
चयनित दस्तावेज	**प्रकाशन वर्ष**
Justice Verma Commission Report	2012
National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE)	2010
निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम	2009
समान स्कूल प्रणाली आयोग रिपोर्ट	2007
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा	2005
शिक्षा नीति की रिपोर्ट	1986
राष्ट्रीय शिक्षक आयोग की रिपोर्ट	1985
शिक्षा आयोग की रिपोर्ट	1964
राष्ट्रीय शिक्षा नीति	2020

यदि जस्टिस वर्मा आयोग की बात करें तो इसने पूरी अध्यापक–शिक्षा व्यवस्था को पुनर्संरचित करने की बात कही है। इस आयोग की पृष्ठभूमि को बनाने में 'अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2010' (एन.सी.एफ.टी.ई. 2010) और 'निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम–2009' की विशेष भूमिका रही है। इन दो नीतिगत दस्तावेजों के आलोक में इस

आयोग को अपनी सिफारिशे देनी थीं जो एक रिपोर्ट के रूप में 2012 में प्रकाशित हुई। शिक्षकों के गुणवत्ता के दृष्टिकोण से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करने का सुझाव दिया गया। इसके कारण शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था में कई परिवर्तनों के होने की दिशा तय हुई। जस्टिस वर्मा आयोग के सिफारिशों का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि उन सबका गहरा असर आगामी शिक्षकों पर पड़ा। जैसे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह होगा कि शिक्षक बिना नियमित प्रशिक्षण के विद्यालय में नहीं पढ़ा पायेंगे, अर्थात शिक्षक की पहली तैयारी के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम करना अनिवार्य होगा। आयोग ने शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम की अवधि को भी बढ़ाने पर जोर दिया। इसके साथ हीं, 'अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2010' (एन.सी.एफ.टी.ई. 2010) ने भी भावी शिक्षकों की तैयारी के लिए प्रशिक्षण पाठ्यचर्या से संबंधित कई महत्वपूर्ण सिफारिशें की। उनमें शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या के पूर्ववर्ती स्वरूप को बदलने की बात कही गयी। साथ ही प्रशिक्षण के तरीके में नवाचारी परिवर्तन और अवधि में भी वृद्धि की अनुशंसा की गई।

इसी के साथ, यदि शिक्षकों के प्रशिक्षण की अनिवार्यता होने की बात करें तो 2009 में आए 'निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम' के प्रावधानों की अहम भूमिका रही है। शिक्षकों से संबंधित कई और प्रावधानों को इसमें दर्ज किया गया जो शिक्षक के कार्य, उसकी प्रशिक्षण, आदि को अवश्य प्रभावित करेंगे। शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 से थोड़ा पीछे चले तो बिहार के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण आयोग की अनुशंसाओं की चर्चा करनी होगी जिसे 'समान विद्यालय प्रणाली आयोग–2007' कहा जाता है। इस आयोग का गठन बिहार सरकार के द्वारा किया गया था ताकि बिहार की शिक्षा व्यवस्था में समान स्कूल प्रणाली को लागू करने की संभावनाओं का अध्ययन किया जा सके। इस आयोग ने बिहार के शिक्षकों की स्थिति का भी अध्ययन किया और कई अनुशंसाओं को प्रस्तुत किया। अब यदि 2007 से थोड़ा पीछे के काल में जाते हैं तो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता पर जोर देने की बात कही। इस दस्तावेज के कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है, जिसमें शिक्षकों के कार्य संबंधी कुछ नीतियों को सुझाया गया है। आप अपने विद्यालय के संदर्भ में यह समीक्षा करें कि वहां पर आपकी स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता की क्या स्थिति है।

शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता

शैक्षिक माहौल बनाने के लिए शिक्षकों की स्वायत्तता आवश्यक है ताकि वे बच्चों की विविध ज़रूरतों का ध्यान रख सकें। जितनी आज़ादी, इज्ज़त और लचीलापन शिक्षार्थी को चाहिए उतना ही शिक्षक को भी। फिलहाल तो प्रशासनिक ऊँच–नीच एवं नियंत्रण, परीक्षाएँ, पाठ्यचर्या सुधार का केंद्रीकृत नियोजन ये सभी शिक्षक और मुख्य शिक्षक की स्वायत्तता पर तमाम प्रतिबन्ध लगाते हैं। अगर कहीं पाठ्यचर्या में खुलेपन का अवसर मिलता भी है तब भी शिक्षक इतने आत्मविश्वासी नहीं हो पाते कि वे अपनी स्वायत्तता का ऐसे उपयोग कर लें कि प्रशासन भी अलग तरह से काम करने के कारण खफा न हो। इसीलिए यह ज़रूरी है कि उनको विकल्प चुनने में और स्वायत्तता को महसूस करने में समर्थन दिया जाए। जितनी कक्षा को एक लोकतांत्रिक नम्य और स्वीकृति देने वाली संस्कृति को पोषण देने की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत स्कूल की संस्था और कार्यालयी संरचनाओं द्वारा ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देने की है। शिक्षक न केवल आदेश और सूचना प्राप्त करें बल्कि ऊपर बैठे लोगों द्वारा उन निर्णयों को लेते समय शिक्षकों की आवाज़ भी सुनी जाए, जिनसे कक्षा का तात्कालिक जीवन और स्कूल की संस्कृति प्रभावित होते हैं।

(स्रोत : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृष्ठ संख्या 111–113)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में सुझाए गए उपरोक्त नीतियों एक आदर्श विद्यालय के आदर्श शिक्षक की कल्पना पर आधारित हैं। पर, इस नीति का इसके बाद आई शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 के नीति से तुलना करें तो कई मामलों में आप विरोधाभास महसूस करेंगे। शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता के मुद्दे को उस दस्तावेज में विशेष महत्व नहीं दिया गया है। आज के संदर्भ में हम शिक्षक से संबंधित जिन मुद्दों की चर्चा कर रहे हैं, वे हमारी शिक्षा व्यवस्था में बहुत पहले से विद्यमान हैं। पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक में आए शिक्षक आयोग की रिपोर्ट में शिक्षक से संबंधित कई ऐसी चुनौतियों का वर्णन किया गया है

जो आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं।

अध्यापक की प्रतिष्ठा

इनमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षकों के गुण, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अध्यापन व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, उनके लिए सर्वोत्तम व्यावसायिक साधनों की उपलब्धि और पूर्ण प्रभावी ढंग से काम कर सकने के लिए संतोषप्रद स्थितियां पैदा करने से अधिक बात दूसरी नहीं है। आगामी तीन योजनाओं में शिक्षा के अनुमानित द्रुत विकास और विशेष रूप से शिक्षा के स्तर की अधिक–से–अधिक ऊंचा उठाने तथा निरन्तर ऊंचा उठाए जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि आज इन समस्याओं ने अभूतपूर्व महत्व और वरीयता प्राप्त कर ली है।
(स्रोत : शिक्षा आयोग रिपोर्ट, 1964–66)

यदि स्वतंत्रता पूर्व के लगभग पचास साल के काल को देखें तो बिहार में शिक्षकों के प्रशिक्षण की कुछ व्यवस्थाओं के विकास की झलक मिलती है। बिहार में शिक्षक प्रशिक्षण की शुरूआत पटना में नॉर्मल स्कूल की स्थापना के साथ शुरू होती है।1895–96 में मुंशी हसन अली के प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति के साथ पटना नॉर्मल स्कूल ने अपना कार्य शुरू किया। 1912 में बिहार से बंगाल अलग होने के बाद पटना ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना हुई। तत्कालीन वार्षिक प्रतिवेदन, 1912–13 के पृष्ठ 11 से पता चलता है कि तब निम्न प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना का प्रावधान किया गया था–

1. द ट्रेनिंग कॉलेज फॉर इंगलिश टीचर्स फॉर बांकीपुर
2. द फर्स्ट ग्रेड ट्रेनिंग स्कूल
3. द ट्रेनिंग कॉलेज फॉर वीमेंस एट बांकीपुर
4. द गुरू ट्रेनिंग स्कूल
5. द एडेड ट्रेनिंग क्लासेस

उक्त में से पटना ट्रेनिंग कॉलेज, जिसकी स्थापना 1908 में हुई थी, उसमें बैचलर ऑफ टीचिंग के अतिरिक्त लाइसेंसिएट इन टीचिंग (एल.टी) की भी व्यवस्था की गई। जे. एच. थिकेट जो इस कॉलेज के 1908 से 1931 तक प्राचार्य थे, के जाने के बाद एफ. ऑर. ब्लेयर ने प्राचार्य का पद ग्रहण किया एवं उनकी देख–रेख में पहली बार प्राथमिक शिक्षा में डिप्लोमा कोर्स (1931–32)की शुरूआत हुई, जो दो वर्षीय था। 1935–36 में यहाँ बैचलर ऑफ एजुकेशन की डिग्री के साथ मास्टर ऑफ एजुकेशन का पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया। एलिमेंट्री ट्रेनिंग स्कूल जिन्हें 1926–27 तक गुरू ट्रेनिंग स्कूल के नाम से जाना जाता था, उनकी संख्या उड़ीसा के बिहार से अलग होने के बाद 1936 से 1942 के बीच निम्न तालिका में प्रस्तुत है। ये प्रशिक्षण संस्थान सरकार द्वारा प्रबंधित थे।

वर्ष	विद्यालयों की संख्या	प्रशिक्षणार्थियों की संख्या	कुल
1936–37	55	1077	1077
1940–41	55	1083	1083
1941–42	55	1081	1081
(स्रोत : बिहार में शिक्षा के सौ वर्ष, बिहार विधान परिषद् प्रकाशन)			

उक्त सारणियों से ज्ञात होता है कि उस समय सरकार प्रबंधित, अनुदान प्राप्त एवं गैरअनुदानित तीन तरह के Elementary Training School थे। इसी बीच सितम्बर 1938 में पटना ट्रेनिंग स्कूल

को बेसिक ट्रेनिंग स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया। ज्ञातव्य है कि 1937 से बिहार में बुनियादी शिक्षा की शुरूआत हो चुकी थी।1942 से 1947 के बीच क्रमशः बिक्रम (पटना) एवं कुमारबाग(चम्पारण) में दो अन्य बेसिक ट्रेनिंग स्कूल स्थापित हुए। 1949–50 तक इनकी संख्या बढ़कर 19 हो गई थी। इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का विकास हुआ, जिसका कुछ स्वरूप अभी भी विद्यमान है।

गतिविधि

अपने डी.एल.एड. पाठ्यक्रम के उद्देश्यों और एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 के उद्देश्यों का तुलनात्मक अध्ययन करें। यह भी देखें कि आपके पाठ्यक्रम में एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 के उद्देश्यों का जिक्र कहां प्रत्यक्ष रूप से है।

4. विद्यालयी पाठ्यचर्या और मूल्यांकन प्रकिया पर नीतियों का प्रभाव :

विद्यालयों में क्या पढ़ाया जाए, इस बात को लेकर चलने वाली बहस उतनी ही पुरानी है जितना पुराना विद्यालय का अतीत है या ऐसे कहें कि विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम को लेकर हुए विकास का भी अपना एक इतिहास है, जो कि भारत में औपचारिक स्कूली शिक्षा की शुरूआत के साथ और व्यवस्थित होता गया। आज पाठ्यक्रम का जो स्वरूप हमारे विद्यालयों में है उसके माध्यम से शिक्षा के विकासात्मक इतिहास के कई पक्षों को प्रभावी तरीके से समझा जा सकता है। विद्यालय में पढ़ाए जा रहे पाठ्यक्रम के अंतर्गत विषयों की संख्या, उनके नाम तथा विषयों के बीच के अन्तर्संबंध की छानबीन प्रशिक्षुओं को शिक्षा के विकास को समझने में मददगार साबित होगी, विशेष तौर पर विद्यालयी पाठ्यक्रम के विकास को समझने में। विद्यालय में पढ़ाए जा रहे विषयों का समूहीकरण अथवा विभाजन किस आधार पर किया गया है, उन विषयों को पाठ्यक्रम में कब और क्यों जोड़ा गया, आदि प्रश्नों की समझ के लिए नीतियों का सराहा लेना अपरिहार्य है। अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम के नीतिगत विश्लेषण से आप उन विषयों से कहीं गहरे रूप से जुड़ पाएंगे जिन्हें आप कक्षाओं में रोज पढ़ाते हैं। इससे उन विषयों को पढ़ाए जाने के उद्देश्य भी कहीं अधिक स्पष्ट होंगे।

जब पाठ्यक्रम बनाने की बात आती है तो सबसे पहले यह चर्चा होती है कि इसके लिए आधार क्या लें, इस विषय में बिहार सरकार का दस्तावेज 'किशोर मन की समझ' से निम्नखिलित उद्धरण लिए गए हैं जो पाठ्यक्रम के विषय में कुछ आधारों को तय कर रहा है। किसी भी पाठ्यक्रम को बनाने के लिए उसके लक्ष्यों को तय करना जरूरी होता है ताकि उसकी विषयवस्तु में उन्हे समाहित किया जा सके। बिहार के विद्यालयी शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम के दस्तावेज में दिए गए प्राक्कथन से उन्हीं लक्ष्यों का बोध होता है, जिन्हें आगे दिया जा रहा है :

प्राक्कथन

मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार द्वारा राज्य की स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर नवीन पाठ्यक्रम लागू किया गया है। निर्देशानुसार, पाठ्यक्रम विकास का कार्य राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किया गया। ज्ञातव्य है कि बिहार राज्य में पहली बार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आलोक में बिहार पाठ्चर्या की रूपरेखा 2008 का विकास परिषद् द्वारा किया गया। इस पाठ्यचर्या के आधार पर कक्षा I से XII तक का पाठ्यक्रम नवीन शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं के आलोक में विकसित किया गया।

हमारे प्रदेश की पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं नवीन पाठ्यक्रम में कई नवीनताएँ एवं कई विशेषताएँ हैं, यथा :

	पहले हम मानते थे	**आज हमारा मानना है**
1	शिक्षार्थियों को क्या पढ़ाएंगे?	बच्चे/किशोर क्या सीखेंगे?
2	रटने पर बल	अधिगम पर बल
3	शिक्षक केन्द्रित	शिक्षार्थी केन्द्रित
4	ज्ञान ठूसने की प्रवृत्ति	ज्ञान की स्वतंत्र रचना
5	विद्यालयः ज्ञान की दुकान	ज्ञानः हमारे चारों ओर

6	आंचलिकता की उपेक्षा	आंचलिकता : प्रमुख संसाधन
7	भाषागत रूढ़ियाँ	बहुभाषिकता का संसाधन के रूप में प्रयोग

उक्त मान्यताओं के आधार पर यह माना जा सकता है कि पुरानी अवधारणा जहाँ हम यह तय करते थे कि बच्चा खाली स्लेट की तरह होता है उसपर शिक्षक जो चाहें दर्ज कर लें से प्रस्थान का समय है। बच्चा या किशोर/किशोरी स्कूल आने के पूर्व अपने जीवन के विविध अनुभवों से लैस होकर आते हैं, जिन अनुभवों का शिक्षण अधिगम में भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। लिहाजा यह नया पाठ्यक्रम स्कूली बच्चों को सीखने का एक माहौल प्रदान करने का पक्षधर है जिसमें हर बच्चे को प्रश्न पूछने और ज्ञान सृजन की पूरी छूट होगी। शिक्षकों से यह अपेक्षा है कि वे नई दृष्टि के साथ इस पाठ्यक्रम को आत्मसात करेंगे एवं सार्थक तथा प्रभावी ढ़ंग से कक्षा में इसे रूपायित करेंगे।

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया एक साझी समझ पर आधारित रही है। परिषद् की यह कोशिश थी कि अधिकाधिक स्कूल शिक्षकों के सहयोग से इसका विकास किया जाए और ऐसा हुआ भी। कई कार्यशालाओं में शिक्षकों ने अपनी लगातार उपस्थिति दर्ज कर इस पाठ्यक्रम को यह स्वरूप प्रदान किया है।

(स्रोत : बिहार के विद्यालयी शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम, एस.सी.ई.आर.टी.)

साथ ही, इस दस्तावेज में पाठ्यक्रम के शिक्षाशास्त्रीय आधारों को भी प्रस्तुत किया है ताकि पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के माध्यम से क्या सीखना है और कैसे सीखना है, इसकी समझ बन सके। वास्तव में, ये वैसे नीतिगत पहलू हैं जो आज के विद्यालयों की कक्षाओं के स्वरूप में बदलाव लाने के लिए प्रयासरत हैं। आपने बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के उल्लेख को देखा है। ये वैसे नीतिगत दस्तावेज हैं जिनके आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 से लिया गया निम्नलिखित विवरण पाठ्यक्रम निर्माण की विकास यात्रा के कुछ महत्वपूर्ण बातों को बताते हुए आपको आज के संदर्भ में उसके स्वरूप से परिचय कराता है तथा बिहार में पाठ्यक्रम का स्वरूप वैसा क्यों है, इसकी भी चर्चा करता है :

बिहार के लिए पृथक पाठ्यचर्या क्यों?

बिहार में पाठ्यक्रम का निर्माण और संशोधन तो समय–समय पर होता रहा है, लेकिन अतीत में अपनी खुद की पाठ्यचर्या बनाने पर कभी भी गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया। यहाँ तक कि बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में भी, जो चंपारण में गांधी जी के शैक्षिक प्रयोग के विचार की उत्पत्ति के समय से ही बिहार में अत्यंत जीवंत रहा था, शिक्षाशास्त्रीय बहसें पाठ्यचर्या निमार्ण के प्रयास से असंपृक्त बनी रहीं। बहरहाल यह गौरतलब है कि बुनियादी शिक्षा की प्रणाली में अत्यंत विशिष्ट और सुविचारित पाठ्चर्या रणनीति समाविष्ट थी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2000 को लेकर उठे विवादों और उसके बाद राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 के बारे में व्यापक सलाह–मशविरों और बहसों के बाद, अब बिहार में अपनी खुद की पाठ्यचर्या बनाने की जरूरत महसूस हुई है।

बहरहाल, यहाँ इस आवश्यकता के पीछे मौजूद मूल कारणों को बताना उचित होगा, खास कर तब, जब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने एक बड़े प्रयास के बाद पाठ्चर्या के बारे में काफी ज्ञानवर्धक दस्तावेज तैयार किया है। ज्ञातव्य है कि इस कार्यभार के लिए 21 राष्ट्रीय फोकस ग्रुप बनाए गए थे, जिनमें अनेक बड़ी हस्तियों को लेकर गठित 35 सदस्यीय राष्ट्रीय संचालन समिति के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के और भी कई विशेषज्ञ शामिल थे।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारणों में एक है पाठ्यसंदर्भ की प्रासंगिकता का मुद्दा। बिहार अपनी सांस्कृतिक विविधता के अर्थ में भारत का एक छोटा प्रतिरूप प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसकी पाठ्यचर्या में यहाँ की सांस्कृतिक विशिष्टता अवश्य प्रतिबिंबित होनी चाहिए। ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस राज्य में शहरीकरण का स्तर मात्र 10.47 % है (2001 की जनगणना) जो राष्ट्रीय औसत 27.78 % से काफी नीचे है और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 जैसा दस्तावेज शहरी मध्यवर्गीय बच्चों को ध्यान में रखकर बनाया गया प्रतीत होता है। सबसे बड़ी शहरी आबादी होने के बावजूद राजधानी पटना अभी तक महानगरों में शुमार नहीं हो पाया है। छोटे शहरों के बारे में तो कहना ही क्या। आज जिन बच्चों को विद्यालयों के दायरे में लाने की

कोशिशें हो रही हैं उनमें बड़ी तादाद में पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं जो अपने घरों में बोली जाने वाली स्थानीय बोली बोलते हैं। विद्यालयों में अधिसंरचनात्मक सुविधाओं का स्तर समान्यता अत्यंत निम्न है, जो अध्यापकों की दीर्घकालिक किल्लत के चलते और नीचे गिर गया है। इसके अलावा, बिहार की अन्य दूसरी समस्याएं भी हैं, जैसे कि उत्तर बिहार में बाढ़ की विभीषिका तथा बिहार के अनेक हिस्सों, खास कर दक्षिण बिहार में हिंसा और अंतःसंघर्ष, जो समाजिक जीवन की लाक्षणिकता बन गए हैं। समाज का सामंती चरित्र भिन्न किस्म की शिक्षाशास्त्रीय चुनौती खड़ी करने में रोड़े अटका रहा है। कुल मिलाकर बिहार में पाठ्यचर्या निर्माताओं के समक्ष मौजूद चुनौतियाँ अनेक रूपों में अनूठी और जटिल हैं और इसीलिए वे बिल्कुल केन्द्रित प्रयास की मांग करती हैं। बहरहाल, राज्य के लिए पाठ्यचर्या निर्माण के उसूल सूत्रबद्ध करने से पहले राज्य के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक परिदृश्य पर गहरी दृष्टि डाल देना आवश्यक होगा।

(स्रोत : बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008)

यदि बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 से थोड़ा पीछे चलें तो आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 को पाएंगे जिसने बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 के लिए एक आधारभूत दस्तावेज का काम किया। आगे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 से कुछ अंशों को दिया जा रहा है जो पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के संदर्भ में कुछ मूलभूत बातों की चर्चा करते हैं। बीच बीच में कुछ प्रश्नों को भी उठाया गया है ताकि आप इस दस्तावेज के नीतिगत पहलूओं को अपने विद्यालय के संदर्भ में समझ सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005

मार्गदर्शक सिद्धांत

हमें व्यवस्थागत मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है जिससे हम उन अनेक अच्छे विचारों को कार्यान्वित कर सकें जिनके बारे में पहले भी बात की जा चुकी है। इनमें सबसे अहम हैं :

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना,
- पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चत करना,
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक–केंद्रित बन कर रह जाए,
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य–व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हों।

वर्तमान संदर्भ मे कुछ नए बदलाव, नए सरोकार पैदा हुए हैं जिन्हें पाठ्यचर्या को संबोधित करना ही चाहिए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है, सभी बच्चों को एक ऐसे कार्यक्रम के ज़रिए स्कूलों से जोड़ना तथा उन्हें वहाँ टिकाए रखना जो हर बच्चे की महत्ता को फिर से दृढ़ करने को महत्त्वपूर्ण समझे और सभी बच्चों को उनकी गरिमा का एहसास कराए तथा उनमें सीखने का विश्वास जगाए। पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (यू.ई.ई.) के लिए प्रतिबद्धता भी दिखनी चाहिए, केवल सांस्कृतिक विविधता के प्रतिनिधित्व के रूप में ही नहीं बल्कि यह सुनिश्चत करके भी कि विभिन्न सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमियों से आए विभिन्न शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व बौद्धिक विशेषताओं वाले बच्चे स्कूल में सीखने व सफलता प्राप्त करने में समर्थ हों। इस संदर्भ में लिंग, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म या असमर्थता से जनित असमानताओं के परिणामस्वरूप शिक्षा में आई प्रतिकूलताओं को सीधे संबोधित करने की आवश्यकता है, नीतियों व योजनाओं के माध्यम से ही नहीं बल्कि आरंभिक बाल्यावस्था से ही अधिगम कार्य की रूपरेखा बनाने एवं चुनने तथा शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास के ज़रिए भी।

अभी तक जिन नीतिगत दस्तावेजों की हमने चर्चा की, उनका यह मानना है कि तमाम सामाजिक अपेक्षाओं और विभिन्न विषयों के अध्ययन में आए बड़े बदलावों के बावजूद, पाठ्यचर्या योजना के लिए प्रासंगिक प्रमुख क्षेत्र बहुत लंबे समय तक स्थिर ही रहे हैं जिनका हमारी शिक्षा व्यवस्था पर गहरा प्रभाव है। तभी हम पाते हैं कि शिक्षा के बालकेन्द्रित स्वरूप पर बल देने के बावजूद हमारी कक्षाओं में पारम्परिक शिक्षण स्वरूप अभी भी व्याप्त है। शायद अब से पहले के

पाठ्यक्रमों में वैसे उद्देश्यों पर विशेष बल नहीं था, जिन्हें आज महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

गतिविधि

जरा पता करें कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 और बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 के विषयवस्तु में क्या अंतर है। दोनो दस्तावेजों के विषय सारणी का अवलोकन करके बताएं।

पाठ्यचर्या के साथ–साथ, हमारे विद्यालय में जिस प्रकार से अभी परीक्षा की व्यवस्था चल रही है, एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि वह अब तक के नीतिगत विमर्शों एवं शैक्षिक विकास का प्रतिफल है। वह इसका द्योतक है कि हमारी शैक्षिक नीतियों के माध्यम से शिक्षा के विकास में कितनी सफलता मिली है और कहाँ–कहाँ हम विफल रहे हैं। अतः शुरूआत में यह समझ लेना जरूरी है कि आज की शैक्षिक व्यवस्था में परीक्षा का स्वरूप क्या है। साथ ही, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ परीक्षा व्यवस्था से मूलतः तात्पर्य है– स्कूली व्यवस्था में परीक्षा का स्वरूप, विशेषरूप से प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में। विद्यालय के समकालीन परीक्षा व्यवस्था को समझने के लिए उस व्यवस्था का बच्चों पर पड़नेवाले प्रभाव को जानना जरूरी है। मौजूदा व्यवस्था में बच्चे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में किस प्रकार प्रवेश पाते हैं, उन्हे किस आधार पर आगे की कक्षा में जाने के लिए सफल घोषित किया जाता है। इन सब की समझ के लिए आपको समय–समय पर लायी गई शिक्षा नीतियों का सहारा लेना होगा। कुछ चुनिन्दा नीतिगत दस्तावेजों के परीक्षा संबंधी कुछ महत्वपूर्ण अंशों को आगे ज्यों का त्यों दिया जा रहा है ताकि आप उनके मौलिक चिंतन से परिचित हो सकें। आप इन अंशों में दिए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं को चिन्हित करें तथा उसे अपने विद्यालय के परीक्षा संबंधी आंकड़ों से जोड़ने का प्रयास करें। अंशों के बीच–बीच में आपकी सहायता के लिए कुछ विश्लेषण के बिन्दुओं को भी साथ में दिया गया है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि आगे दिए गए दस्तावेजों के अंश अनंतिम नहीं हैं। आप स्वयं भी इसमें अन्य उपयोगी दस्तावेजों को कालक्रम के अनुसार अवश्य जोड़े ताकि विश्लेषण में और गहनता व निरंतरता आ सके।
आज जब हम परीक्षा की बात करते हैं तो सबसे पहले 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन' का ध्यान आता है। इस व्यवस्था के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' नामक दस्तावेज में उल्लेखित किया गया है तथा विद्यालयों में इसे अपनाने पर जोर दिया गया है। आगे उसी दस्तावेज़ से कुछ अंशों को दिया गया है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.)

स्कूलों में सी.सी.ई. को एक प्रभावी और व्यवस्थित रीति से शामिल किए जाने की जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही है। चूंकि स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा संचालित परीक्षाओं में कुछ कमियाँ हैं, इसलिए अब स्कूल स्तर पर सी.सी.ई. को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ एक बोर्डों ने स्कूलों में लागू करने के लिए सी.सी.ई. की योजना का विकास किया है। कुछ मामलों में पब्लिक स्कूलों के प्राचार्यों ने अपने स्तर पर परीक्षण की आवधिक व्यवस्था को प्रारंभ करने के लिए कदम उठाए हैं। कुछ राज्यों में सरकार ने शैक्षिक क्षेत्रा में आवधिक परीक्षण के लिए प्रयास शुरू किए हैं, लेकिन सह–शैक्षिक क्षेत्र को ऐसे ही छोड़ दिया गया है। सी.सी.ई. को स्कूली शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर संस्थागत रूप दिए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान स्वरूप में, बोर्ड द्वारा किए गए मूल्यांकन को ज्यादा महत्व दिया जाता है और स्कूल–आधारित मूल्यांकन को पीछे धकेल दिया गया है। यह परिदृश्य अब बदल रहा है। कई स्कूल–बोर्ड सी.सी.ई. के महत्व पर बल दे रहे हैं और राज्य शिक्षा विभाग के सहयोग से इसे स्कूलों में लागू करने हेतु उपाय कर रहे हैं। सी.सी.ई. को बोर्ड मूल्यांकन के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि पूरक के रूप में देखा जाना चाहिए।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) की विशेषताएँ

1. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) का अर्थ विद्यार्थी के स्कूल–आधारित मूल्यांकन व्यवस्था से है, जो विद्यार्थी के विकास के सभी पक्षों पर ध्यान देता है।
2. सी.सी.ई. का 'सतत' पक्ष मूल्यांकन की 'निरंतरता' और आवर्तन पर ध्यान देता है।

3. सतत का अर्थ है—अनुदेशन के प्रारंभ में विद्यार्थी का आकलन (स्थापन मूल्यांकन) और अनुदेशन प्रक्रियाओं के दौरान अनौपचारिक रूप से मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए आकलन (निर्माणात्मक मूल्यांकन)।
4. आवर्तन का अर्थ है—कसौटी संदर्भित परीक्षणों का तथा मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए बहुधा इकाई/अवधि के अंत में निष्पत्ति का आकलन (योगात्मक)।
5. सी.सी.ई. का 'व्यापक' अवयव बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के मूल्यांकन पर ध्यान देता है।
6. शैक्षिक क्षेत्र के अंतर्गत पाठ्यचर्या क्षेत्र या विषय—विशेष क्षेत्र आते हैं, जबकि सह—शैक्षिक पक्ष में पाठ्य सहगामी और व्यक्तिगत सामाजिक गुण, रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य समाहित हैं।
7. शैक्षिक क्षेत्रों में जाँच की विविध तकनीकों का औपचारिक और अनौपचारिक उपयोग करते हुए नियत कालिक और निरंतर मूल्यांकन किया जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन इकाई/अवधि परीक्षण के अंत में होता है। कुछ इकाइयों में खराब प्रदर्शन के कारणों की जाँच निदानात्मक परीक्षण के द्वारा की जाती है। इन सबका सोद्देश्य समाधान मध्यस्थता के पश्चात् पुनः परीक्षण द्वारा किया जाता है।
8. सह—शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन पहचानी गई कसौटियों के आधार पर विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत सामाजिक गुणों में मूल्यांकन विभिन्न अभिरुचियों, नैतिक मूल्यों, प्रवृत्तियों इत्यादि के व्यवहार सूचकों का उपयोग करते हुए किया जाता है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर, आप अपने विद्यालय में लागू सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की वर्तमान परीक्षा प्रणाली की संरचना और प्रयोजन को समझ सकते हैं। इस प्रणाली के लागू होने से पहले, परीक्षा की पारंपरिक व्यवस्था थी जिसमें लिखित परीक्षाओं का वर्चस्व था। धीरे—धीरे मूल्यांकन के स्वरूप को बदलने के लिए कई नीतिगत अनुशंसाएं आयीं। राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार—पत्र 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' ने परीक्षा के तरीके में बदलाव पर विशेष बल दिया। मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन के लिए राज्य के नीतिगत दस्तावेजों के माध्यम से भी कई सुझाव प्रस्तुत किए गए। यदि थोड़ा पीछे चलें तो 2005 में आयी 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' में परीक्षा के नए स्वरूप के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है जिसका जिक्र इसके आगे के दस्तावेजों में होता रहा। परीक्षा शब्द के स्थान पर दो नए शब्दों का प्रयोग होना शुरू हो गया— आकलन और मूल्यांकन। आइए इसके कुछ अंशों को पढ़कर उन्हें अपने विद्यालय से जोड़कर विश्लेषित करें :

आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जड़ें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने—सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व—स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल है।
एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने—सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं। परीक्षा तंत्र और खासकर बोर्ड की परीक्षाओं से जुड़े मुद्दों को अध्याय 5 में अलग से संबोधित किया गया है।

आकलन का उद्देश्य

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी, अकादमिक और शैक्षिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला, तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों का नियमित परीक्षण कतई नहीं है। बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

सुनियोजित आकलन और नियमित प्रगति रपट शिक्षार्थियों को उनके काम की प्रतिपुष्टि देते हैं और साथ ही वे मानक भी स्थापित करते हैं जिनको पाने के लिए विद्यार्थी प्रयासरत रहते हैं। वे अभिभावकों को उनके बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता और उनके विकास के बारे में भी जानकारी देते हैं। ऐसा आकलन प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने का तरीका बिलकुल नहीं है; अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए तो बिलकुल नहीं होना चाहिए। अंतिम बिंदु है कि विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है, या अध्यापन के एक कोर्स के खत्म होने का प्रमाण देता है या जिससे दूसरे स्कूलों, शैक्षिक संस्थानों, समुदाय और भावी मालिकों (रोज़गार देने वालों) को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उन ज़रूरतों को पहचानने में मदद मिलती है, जिन ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाता है। इस धारणा ने पाठ्यचर्या की योजना बनाने में बड़ी समस्याएँ पैदा की हैं। इस 'उपचारात्मक' शब्द को उन विशिष्ट/विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखने की ज़रूरत है जो उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं जिनको पठन/साक्षरता (पठन में असफलता जिससे बाद में बोध पर फर्क पड़ता है) या अंक ज्ञान (खासकर गणित के संकेतों वाले पहलू, स्थानीय मान और संगणना संबंधी) में समस्याएँ आती हैं। शिक्षकों को अच्छे निदानकारी परीक्षणों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत है, जो उन्हें उपचार के प्रयासों में मदद करेगा। ठीक इसी तरह, निदानात्मक कार्य के लिए भी विशिष्ट रूप से विकसित सामग्री और नियोजन की ज़रूरत है ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से काम कर पाएँ। इस उपचारात्मक काम की शुरुआत उन चीज़ों से होगी जो बच्चे को पहले से आती हैं और उन चीज़ों तक जाएगी जिन्हें बच्चे को सीखने की ज़रूरत है। यह आकलन और सतर्क अवलोकन की सतत प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शब्दों का बिना सोचे–विचारे किया गया उपयोग, प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र की आम समस्याओं से हमारा ध्यान हटा देता है और अधिगम एवं असफलता की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से बच्चे पर डाल देता है।

शिक्षार्थियों का आकलन

बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो। तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुनः परिभाषित करने

और उनके नए मानक ढूँढ़ने की ज़रूरत है। विशिष्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा।

शिक्षण के क्रम में आकलन

प्रगति–पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती हैं। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश – ''किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है''। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जाँचे जा सकते; बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने की प्रकृति के विपरीत होगा। इनमें काम, स्वास्थ्य, योग, शारीरिक शिक्षा, संगीत एवं कला शामिल हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा और योग के कौशल आधारित पक्षों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों को सतत और गुणात्मक आकलन की ज़रूरत होती है। वर्तमान में इन्हें पाठ्यचर्या में कम महत्व देने का चलन है। इन क्षेत्रों के लिए न ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है, और न ही पाठ्यचर्या के लिए ढंग से योजना बनाई जाती है और आगे बढ़ें तो इन विषयों को दिए गए समय को 'विशेष पढ़ाई' के लिए हमेशा बलिदान कर दिया जाता है। पाठ्यचर्या के इन भागों के साथ यह बहुत ही बड़ा समझौता है, जबकि इन भागों की गहरी शैक्षिक महत्ता और संभावनाएँ होती हैं।

'अंक' बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे।

(स्रोत : एन.सी.एफ.–2005, 5.3 परीक्षा सुधार : 5.3.1 से 5.3.4, पृष्ठ संख्या 127–130)

थोड़ा और पीछे चलें तो परीक्षा के संदर्भ में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990' और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986' ने भी कई सिफारिशें पेश की। यदि परीक्षा के संदर्भ में स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति को देखें तो 1858 से 1917 तक बिहार के माध्यमिक बोर्ड की परीक्षा जिसे पहले 'एंट्रेन्स' एवं बाद में मेट्रीकुलेशन परीक्षा कहा जाने लगा, का संचालन कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता था। 1918 के बाद यह परीक्षा पटना विश्वविद्यालय द्वारा ली जाने लगी। वर्तमान बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के 1952 में अस्तित्व में आने के वर्ष तक पटना विश्वविद्यालय ही इस परीक्षा को संचालित करती रही। उसके पहले की व्यवस्था को

देखें तो पटना स्कूल का एक उदाहरण प्रस्तुत होता है। पता चलता है कि 1835 में पटना स्कूल की स्थापना पटना के आलमगंज में हुई। इस विद्यालय में अंग्रेजी, साहित्य और विज्ञान की पढ़ाई पर विशेष ध्यान था। आगे चलकर 1839, में इस स्कूल में तीन अलग–अलग विभाग अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू के बनाए गये। उस वक्त कोई बोर्ड नहीं था। सार्वजनिक परीक्षा स्थानीय जज की कचहरी में लोकल कमेटी सदस्यों तथा गणमान्य भारतीयों की उपस्थिति में संचालित की जाती थी। यह परीक्षा मौखिक एवं लिखित दोनों रूप में ली जाती थी। (स्रोतः किशोर मन की समझ, पृष्ठ संख्या 22)

गतिविधि

विद्यालय की मूल्यांकन प्रणाली में ग्रेड आधारित व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जा रहा है? आपके अनुसार, पहले के मूल्यांकन व्यवस्था से यह किस प्रकार अलग है। इसपर कक्षा में चर्चा करें।

क्या ग्रेडिंग सिस्टम में मूल्यांकन अधिक लचीला हो जाता है? अपने विद्यालय के अन्य शिक्षकों से बात करे और उनके अनुभवों के विश्लेषण के आधार पर कहें।

इस इकाई में हमने विद्यालय और शिक्षा नीतियों के जुड़ाव को विभिन्न संदर्भों के द्वारा देखा। हमने यह जाना कि किसी विद्यालय का नाम उसके अतीत को किस प्रकार से समेटे हुए है तथा उसके नाम का हरेक शब्द किसी न किसी नीतिगत या ऐतिहासिक परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं। हमने यह भी समझा कि किसी विद्यालय का नाम तथा उसकी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक उसके नाम एवं स्वरूप जैसे– भवन में किया गया परिवर्तन, अपने आप में देश की शिक्षा नीति के विकास क्रम का संकेत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षक के आज की स्थिति के पीछे का इतिहास कितना व्यापक है। शिक्षक से संबंधित विभिन्न मुद्दों जैसे उनका प्रशिक्षण, प्रोन्नति, सम्मान आदि के बारे में हमने नीतियों के कुछ प्रमुख भागों को पढ़ा। इससे हमने यह समझा कि शिक्षक से संबंधित कई समस्याए बहुत पहले से हमारी शिक्षा व्यवस्था में हैं। उन समस्याओं के प्रति अलग–अलग नीतियों ने क्या नजरिया रखा, इसकी भी मोटी–मोटी समझ हमने बनाई। इस इकाई में हमने वर्तमान पाठ्यक्रम के स्वरूप और इसके ऐतिहासिक विकास पर ध्यान देते हुए स्कूली शिक्षा की समझ बनाने की कोशिश की। हमने जाना कि किन–किन स्तरों पर किसी पाठ्यक्रम का विकास निर्भर करता है, इसमें शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों की क्या भूमिका होती है। परीक्षा या मूल्यांकन की एक नीतिगत समझ भी हमें इस इकाई में मिली। कैसे होती है विद्यालय में परीक्षा की पूरी प्रकिया और आज जिस प्रकार से विद्यालयी परीक्षा की प्रणाली को समझा जा रहा है, वैसी समझ बनने के पीछे का शैक्षिक इतिहास क्या है? इन सब सवालों पर हमने चर्चा की।

_____:o:_____

प्रश्न संग्रहः–

1. पिछले साठ दशक की उन नीतियों की सूची बनाए जिनके कारण विद्यालय के नामों में बदलाव आए या फिर नए नाम वाले विद्यालय अस्तित्व में आए।
2. विद्यालय के नाम को राष्ट्रीय नीतियों का अधिक प्रभाव पड़ा या फिर राजकीय नीतियों का या फिर दोनों का। कुछ उदाहरणों को देकर समझाएं।
3. किन्हीं पांच विद्यालय के नामों को लेकर उनका विश्लेषण करें और यह बताएं कि उनके नाम के आधार पर क्या–क्या अनुमान लगाया जा सकता है।
4. विद्यालय के भवन की पड़ताल करके आप किसी विद्यालय के इतिहास के बारे में क्या–क्या पता लगा सकते हैं?
5. शिक्षा के अधिकार अधिनियम का विद्यालयों के भवन निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ा?

आज हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा के कितने अंश को विद्यालय भवन के निर्माण पर खर्च किया जा रहा है, इस वर्ष के राष्ट्रीय योजना के आंकड़ों का विश्लेषण करके पता लगाएं।

6. शिक्षकों के प्रशिक्षण को लेकर विभिन्न नीतियों ने क्या कहा, उसका विश्लेषण करें।
7. आज के संदर्भ में शिक्षक से संबंधित कौन कौन से मुद्दे प्रमुख हैं, उनकी चर्चा करें।
8. आज के पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के प्रमुख आधार क्या हैं और ये पहले के उद्देश्यों से किस प्रकार अलग या समान हैं? उदाहरण देकर समझाएं।
9. क्या पूरे देश में एक पाठ्यक्रम का होना सही है? क्यों या क्यों नहीं? नीतियों का उल्लेख करते हुए इस विषय में तर्क प्रस्तुत करें।
10. परीक्षा की प्रणाली में क्या–क्या ऐतिहासिक बदलाव हुए हैं, उनकी एक सूची बनाएं।
11. आज के संदर्भ में आपके विद्यालय में जो परीक्षा की प्रणाली है, वह कब से शुरू की गई है, उसके कारण कौन कौन से नए काम शिक्षकों को करने पड़े।
12. आधुनिक नीतियों का परीक्षा के विषय में क्या मत है, इसका विश्लेषण करें।
13. आप जिस परीक्षा प्रणाली से गुजर कर आए हैं और आज विद्यालयों में जिस प्रकार की परीक्षा प्रणाली है, उसका तुलनात्मक विश्लेषण करे।

संदर्भ सूची :

- एन.सी.ई.आर.टी. भारत में विद्यालयी शिक्षा वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताएँ. नई दिल्ली।
- त्रिपाठी, डॉ. ज्ञानदेव मणि एवं कुमार, डॉ. खगेन्द्र (2011). बिहार में शिक्षा के सौ वर्ष. पटना : बिहार विधान परिषद्.
  - बिहार सरकार (2007). समान विद्यालय प्रणाली आयोग प्रतिवेदन. पटना : शिक्षा विभाग.
- शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयोगों व समितियों के रिपोर्ट.
- भारत सरकार, (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
  - भारत सरकार, (2009). शिक्षा का अधिकार अधिनियम. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- नायक जे.पी. (1976). भारतीय शिक्षा का इतिहास. मैक मिलन कम्पनी, दिल्ली
- आचार्य, परमेश (2000). देशज शिक्षा, औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी
- श्रीवास्तव, चन्दन (2017). ग्रामीण समाज और शिक्षा : ऐतिहासिक विकास की समझ. आयुषी इन्टरनेशनल इन्टरडिसिप्लीनरी रिसर्च जर्नल, अंक 04(9).

ई–संसाधन :

- इकाइयों के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. ⁄ ऑडियो–विजुअल ⁄ एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इकाइयों से सम्बंधित हों।
- इकाइयों के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

संदर्भ

1. J.C. Agrawal :- Develpment of Education
2- J.S. Rajput :- Indian Education in times of global change.
3. एन0आर0 स्वरूप सक्सेना–: शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत
4 एस0गुप्ता, जे0सी0अग्रवाल :–उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा।
5. डॉ0 एस0 माथुर :– शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार।
6- संजीव कुमार, (2017), अधिगम एवं शिक्षण, समीक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली
7- संजीव कुमार, (2017), ज्ञानानुशासन एवं विषयों की समझ, समीक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली

e- संदर्भ :–

ncert. nic. in > pdf > khsy 202 Pdf
wikipeida . org/ lkekftd ifjoZru
necrt.nic.in>ncert>khec103pdf
scert.cg.gov.in